ओ३म्

ऋग्वेद

भाषा भाष्य

पुस्तक नं. ९८२

विद्यालय
९८६

O11
152L2:4

प्रकाशक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१

[४]

ऋग्वेद (आर्यभाषा-भाष्य)

(सप्तम-अष्टम मण्डल)

आर्यसंवत् १९७२९४९०७४
विक्रमाब्द २०३१
दयानन्दाब्द १५०

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक...... 1466
दिनांक......... 18/12/80

मूल्य ३० रुपये

मुद्रक
सार्वदेशिक प्रेस
पटौदी हाऊस, दरियागंज, दिल्ली-६

प्राक्कथन

श्रीमती सार्वदेशिक आ० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी-वेदभाष्य-ग्रन्थमाला का यह चतुर्थ भाग पाठकों के हाथों में आ रहा है। इस ग्रन्थमाला के इस चौथे भाग में महर्षिदयानन्दकृत ऋग्भाष्य (मण्डल ७, सूक्त ६१ मंत्र २) से आगे शेष ७वें मण्डल का तथा ८वें मण्डल का भाषा-भाष्य दिया गया है। स्व० पं० आर्यमुनिजीकृत वेदभाष्य ७वें मण्डल तथा ८वें मंण्डल के २९वें सूक्त तक उपलब्ध है; इससे आगे ८१वें सूक्त तक (कुछ सूक्तों व मंत्रों को छोड़कर) का भाष्य स्व० पं० शिवशङ्कर जी का उपलब्ध है; इन स्वर्गीय आर्य पण्डितों के उपलब्ध भाष्यों में से इन मंत्रों का भाषाभाष्य लिया गया है। ८वें मण्डल के शेष ५०० मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद श्री पं० हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार को सौंपा गया था। इस संग्रह में पं० हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार-कृत जिन मन्त्रों का भाषानुवाद प्रकाशित किया गया है वे इस प्रकार हैं:—सम्पूर्ण सूक्त—३०, ३२—३४, ३६—३८, ४०, ४९—५९ तथा ८२—१०३। विविध मन्त्र—सूक्त ३१ मं० सं० १; सू० ४६ मं० सं० २७ से ३३ तक; सूक्त ६९ मं० सं० १० से १८ तक; तथा सूक्त ७२ मं० सं० ४—१८ तक। सभा माननीय पण्डितजी के इस सहयोग के लिये आभारी है।

आर्यजनों से विशेष निवेदन है कि वे महर्षि दयानन्द की इस कल्पना को कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, इसका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है" साकार रूप देने में सार्वदेशिक सभा को सक्रिय सहयोग देते हुए, वेदों को प्रत्येक आर्य परिवार, स्कूल-कालेज पुस्तकालय आदि में पहुँचाये और वेदों के नित्य स्वाध्याय में रुचि उत्पन्न करने के निमित्त प्रत्येक आर्यसमाज अपने यहां संस्कृत भाषा के अध्ययन तथा वेदोपदेश की समुचित व्यवस्था करे। सभा अपने परिश्रम को तभी सफल अनुभव करेगी जब कि आर्य ही नहीं अपितु अन्य जन भी अपने हितार्थ वेदों का नित्य स्वाध्याय करने को अपना परम धर्म समझने लगें।

ओम्प्रकाश त्यागी

मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली—१

* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम् ॥

—:०❀:❀:०❀०❀०:—

सप्तमं मण्डलम् ॥

—: ❀ :—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।

यद्भद्रं तन्न आसुव ॥१॥

अब परमात्मा अध्यापक तथा उपदेशकों के कर्तव्य कर्मों का उपदेश करते हैं ॥

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्रदिव ऋष्वादूबृहतः सुदानू ।

स्पशों दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

पदार्थः—(मित्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम (प्रोरोः) विस्तृत (पृथिव्याः) पृथिवी और (ऋष्वात्) बड़े (प्रदिवः) द्युलोक की विद्याओं का वर्णन करो (यतः) क्योंकि आप लोग (बृहतः) बड़े-बड़े (सुदानू, स्पशः) दानी महाशयों के भावों को (दधाथे) धारण किये हुए हो, और (ओषधीषु) ओषधियों द्वारा (अनिमिषं) निरन्तर (विक्षु) संपूर्ण संसार की (रक्षमाणा) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम सत्य का प्रचार तथा ओषधियों=अन्नादि द्वारा प्रजा का भले प्रकार रक्षण करो अर्थात् अपने सदुपदेश द्वारा मानस रोगों की और ओषधियों द्वारा शारीरिक रोगों की चिकित्सा करके संसार में सर्वथा सुख फैलाने का उद्योग करो ॥३॥

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।

अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्रयज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (मित्रस्य, वरुणस्य, धाम) अध्यापक तथा उपदेशकों

के पदों को (शंस) प्रशंसित करो। (शुष्मः) जिनका बल (रोदसी) द्युलोक तथा पृथ्वीलोक में (महित्वा) महत्त्व के लिए (ववृधे) संसार की मर्य्यादा बांधे (अयज्वनां) अयज्ञशील=अकर्मी (अवीराः) वीर सन्तानों से रहित होकर (मासाः) दिन (अयन्) व्यतीत करें और (प्रयज्ञमन्मा) विशेषता से यज्ञशील सत्कर्मी पुरुष (वृजनं) सब विपत्तियों से मुक्त होकर (तिराते) जगत् का उद्धार करें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! संसार में सबसे उच्च पद अध्यापक तथा उपदेशकों का है, तुम लोग इनके पद की रक्षा के लिए यत्नवान् होओ ताकि इनका बल बढ़कर संसार के सब अज्ञानादि पापों का नाशक हो, और संसार मर्यादा में स्थिर रहे ॥४॥

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।

द्रुहः सचंते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥५॥

पदार्थः—(यासु) जिन उपदेशक तथा अध्यापकों की क्रिया में (चित्रं) विचित्र शक्तियें (न, ददृशे) नहीं देखी जातीं (न, यक्षं) न जिनमें श्रद्धा का भाव है वे (विश्वा) सम्पूर्ण संसार में (इमाः, वृषणौ) अपनी वाणी की वृष्टि (न) नहीं कर सकते, और जो (वां) तुम्हारे उपदेशक तथा अध्यापक (जनानां) मनुष्यों की (अनृता, द्रुहः, सचंते) निन्दा वा दुश्चरित्र कहते हैं उनकी (निण्यानि) वाणियें (अचिते, अभूवन्) अज्ञान की नाशक नहीं होतीं, इसलिये (अमूरा) तुम लोग पूर्वोक्त दोषों से रहित होओ, यह परमात्मा का उपदेश है ॥५॥

भावार्थः—जिन अध्यापक वा उपदेशकों में वाणी की विचित्रता नहीं पाई जाती और जिनकी वेदादि सच्छास्त्रों में श्रद्धा नहीं है उनके अज्ञान-निवृत्तिविषयक भाव संसार में कभी नहीं फैल सकते और न उनकी वाणी वृष्टि के समान सद्गुणरूप अंकुर उत्पन्न कर सकती है, इसी प्रकार जो अध्यापक वा उपदेशक रात्रि दिन निन्दास्तुति में तत्पर रहते हैं वह भी दूसरों की अज्ञानग्रन्थियों का छेदन नहीं कर सकते, इसलिए उचित है कि उपदेष्टा लोगों को निन्दास्तुति के भावों से सर्वथा वर्जित रहकर अपने हृदय में श्रद्धा के अंकुर दृढ़तापूर्वक जमाने चाहियें, ताकि सारा संसार आस्तिक भावों से विभूषित हो ॥५॥

अब परमात्मा उपदेशकों के वेदवाणीयुक्त होने का उपदेश करते हैं ॥

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।

प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥६॥

पदार्थः—(मित्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको (सबाधः) मैं जिज्ञासु (वां) तुम्हारे (मह्यं, यज्ञं) प्रशंसनीय यज्ञ को (सं, उ) भले प्रकार (नमोभिः) सत्कारपूर्वक (हुवे) ग्रहण करता हूँ। (वां) आपके (नवानि) नये (मन्मानि) व्याख्यान (प्र ऋचसे) पदार्थ ज्ञान के बढ़ाने वाले हैं, और (वां) आपके (कृतानि) दिये हुए (इमानि) ये व्याख्यान (ब्रह्म,जुजुषन्) परमात्मा के साथ जोड़ते हैं ॥६॥

भावार्थः—हे अध्यापक तथा उपदेशको ! मैं जिज्ञासु तुम्हारे यज्ञों को सत्कारपूर्वक स्वीकार करता हुआ प्रार्थना करता हूँ कि आपके उपदेश मुझे ब्रह्म की प्राप्ति करायें ॥६॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(मित्रावरुणौ, युवभ्यां) अध्यापक और उपदेशक आप दोनों (यज्ञेषु) यज्ञों में (इयं, देव, पुरोहितिः) सब विद्वानों के हित करने वाली वाणी (अकारि) कथन करें और (नः) हमारी (विश्वानि, दुर्गा) सब प्रकार की विषमता को (तिरः) तिरस्कार करके (पिपृतं) नष्ट करें, (यूयं) आप लोग (नः) हमको (सदा) नित्यप्रति (स्वस्तिभिः) अपनी मंगलप्रद वाणियों से (पात) कल्याणदायक उपदेश करते रहें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि कर्म, उपासना तथा ज्ञान इन तीनों प्रकार के यज्ञों में अध्यापक तथा उपदेशक ही पुरोहित का कार्य करते और यही जनता=जनसमूह को सब विघ्नों से बचाकर उसकी रक्षा करते हैं, इसलिए जनता को समष्टिरूप से इनसे स्वस्ति की प्रार्थना करनी चाहिए ॥७॥

सप्तम मण्डल में इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३ सूर्यः । ४-६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,२,६ विराट्त्रिष्टुप् । ३,४,५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त में सर्वप्रकाशक परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

पदार्थः—(सूर्यः) सब के उत्पादक परमात्मा का (बृहत्, अर्चींषि) बड़ी ज्योतियां (अश्रेत्) आश्रय करती हैं जो (विश्वा, मानुषाणां) निखिल ब्रह्माण्ड में

स्थित मनुष्यों के (पुरु, जनिम) अनन्त जन्मों को (दद्दशे) जानता और (समः, दिवा) सदा ही (रोचमानः) स्वतःप्रकाश है, वही (क्रत्वा कृतः) यज्ञरूप है और (कर्तृभिः) इस चराचर ब्रह्माण्ड की रचना ने जिसको (सुकृतः, भूत्) सर्वोपरि रचयिता वर्णन किया है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम उसी एकमात्र परमात्मा का आश्रयण करो जो सब मनुष्यों के भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमान जन्मों को जानता, सदा एकरस रहता और जिसको इस चराचर ब्रह्माण्ड की रचना प्रतिदिन वर्णन करती है, वही स्वतःप्रकाश परमात्मा मनुष्यमात्र का उपास्यदेव है। इसी भाव से "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च०" यजु० १३।४६ में परमात्मा का सूर्य नाम से वर्णन किया है ॥१॥

अब परमात्मप्राप्ति के साधन कथन करते हैं ॥

स सूर्य प्रति पुरो न उद्‌गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥२॥

पदार्थः—(सूर्य) हे परमात्मन् (सः) आप (एभिः, स्तोमेभिः) इन यज्ञों से (नः) हमारे (प्रति, पुरः) हृदय में (उद्‌गाः) प्रकट हों। (एतशेभिः) जो निष्काम कर्म द्वारा साधन किये जाते हैं उनका (एवैः) निश्चय करके (नः) हमारे (मित्राय, वरुणाय) अध्यापक, उपदेशक (अर्यम्णे) न्यायकारी (च) और (अग्नये) विज्ञानी पुरुषों के लिये (प्र, वोचः) उपदेश करें कि तुम (अनागसः) संसार में निष्कामता का प्रचार करो जिससे विद्वानों के समक्ष निर्दोष सिद्ध हो ॥२॥

भावार्थः—जपयज्ञ, योगयज्ञ तथा ध्यानयज्ञ इत्यादि यज्ञ परमात्म-प्राप्ति के साधन हैं जिनके द्वारा निष्कामकर्मी को परमात्मा की प्राप्ति होती है, इस मन्त्र में परमात्मा अध्यापक, उपदेशक तथा विज्ञानी पुरुषों को उपदेश करते हैं कि तुम लोग इन यज्ञों का प्रचार करो ताकि निष्कामता फैलकर संसार का उपकार हो ॥२॥

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (स्तवानाः) यथार्थगुणसम्पन्न (वरुणः) उपदेशक (मित्रः) अध्यापक (अग्निः) विज्ञानी (चन्द्राः) प्रसन्नता देने वाले विद्वान् (नः, कामं) हमारी कामनाओं को (पूपुरन्तु) पूर्ण करें (आ) और (वि) विशेषता से (नः) हमको

(सहस्रम्) सहस्रों प्रकार के (शुरुधः) सुख (यच्छन्तु) दें (ऋतावानः) सत्यवादी विद्वान् (नः) हमको (उपमं, अर्कं) अनुपम परमात्मा का ज्ञान (रदन्तु) प्रदान करें ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में प्रकाशस्वरूप परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे भगवन् ! आप,हमको अध्यापक, उपदेशक, ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानों द्वारा सत्य का उपदेश करायें और अनन्त प्रकार का सुख, सत्यादि धन और जीवन में पवित्रता दें ताकि हम शुद्ध होकर आपकी कृपा के पात्र बनें ॥३॥

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४॥

पदार्थः—(द्यावाभूमि) हे प्रकाशस्वरूप, सर्वाधार, (अदिते) अखण्डनीय परमात्मन् ! आप (नः) हमारी (त्रासीथां) रक्षा करें, (ऋष्वे) हे सर्वोपरिविराजमान जगदीश्वर ! (ये, सुजनिमानः) जो मनुष्यजन्म वाले हमने (वां) आपको (जज्ञुः) जाना है, इसलिए (वरुणस्य, वायोः) अपान वायु (नृणां, प्रियतमस्य) जो मनुष्यों को प्रिय है उसका कोप (मा) न हो और (मित्रस्य) प्राण वायु का भी (हेळे) प्रकोप (मा, भूम) मत हो ॥४॥

भावार्थः—हे सर्वोपरि वर्त्तमान परमात्मन् ! आप सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं, हमने मनुष्यजन्म पाकर आपको लाभ किया है इसलिये हम प्रार्थना करते हैं कि हम पर प्राणवायु का कभी प्रकोप न हो और न ही हम पर कभी अपानवायु कुपित हो, इन दोनों के संयम से हम सदैव आपके ज्ञान का लाभ उठायें अर्थात् प्राणों के संयमरूप प्राणायाम द्वारा हम आपके ज्ञान की वृद्धि करते हुए प्राणापान वायु हमारे लिये कभी दुःख का कारण न हो, यह प्रार्थना करते हैं ॥४॥

अब स्वभावोक्ति अलंकार से प्राणापान को संबोधन करके
इन्द्रियसंयम की प्रार्थना करते हैं ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५॥

पदार्थः—(मित्रावरुणा) हे प्राणापानरूप वायो ! आप (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिये (प्र) विशेषता से (बाहवा, सिसृतं) प्राणापानरूप शक्ति को विस्तारित करें (आ) और (नः) हमारी (गव्यूतिं) इन्द्रियों को (घृतेन, उक्षतं) अपनी स्निग्धता से सुमार्ग में सिंचित करें । हे प्राणापान ! आप नित्य (युवाना) युवावस्था

को प्राप्त हैं इसलिये (नः, जने) हमारे जैसे मनुष्यों में (अवयतं) ज्ञानगति बढ़ायें (आ) और (मे) हमारी (इमा, हवा) इन प्राणापानरूप आहुतियों को (श्रुतं) प्रवाहित करें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य की स्वाभाविक गति इस ओर होती है कि वह अपने मन, प्राण तथा इन्द्रियों को संबोधन करके कुछ कथन करे। साहित्य में इसको स्वभावोक्ति-अलंकार और दार्शनिकों की परिभाषा में उपचार कहते हैं। यहाँ पूर्वोक्त अलंकार से प्राणापान को संबोधन करके यह कथन किया है कि प्राणापान द्वारा हमारी इन्द्रियों में इस प्रकार का बल उत्पन्न हो जिस से वह सन्मार्ग से कभी च्युत न हों अर्थात् अपने संयम में तत्पर रहें, और इनको "युवाना" विशेषण इसलिये दिया है कि जिस प्रकार अन्य शारीरिक तत्त्व वृद्धावस्था में जाकर जीर्ण हो जाते हैं, इस प्रकार प्राणों में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, नित्य नूतन रहने के कारण इनको "युवा" कहा गया है ॥५॥

नु मित्रो वरु॑णो अर्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधंतु ।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि संतु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥

पदार्थः—(नु) निश्चय करके (मित्रः) अध्यापक (वरुणः) उपदेशक (अर्यमा) न्यायकारी ये सब विद्वान् (नः) हमारे (त्मने) आत्मा के लिये और (तोकाय) सन्तान के लिये (वरिवः) ऐश्वर्य को (दधंतु) दें और (नः) हमारे (विश्वाः) सम्पूर्ण (सुपथानि) मार्ग (सुगाः) कल्याणरूप (संतु) हों, और (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचन आदि वाणियों से (नः) हमारी (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थः—अध्यापक, उपदेशक तथा अन्य अन्य विषयों के ज्ञाता विद्वानों को यजमान लोग अपने अपने यज्ञों में बुलायें और सन्मानपूर्वक उन से कहें कि हे विद्वद्गण! आप हमारे कल्याणार्थं स्वस्तिवाचनादि वाणियों से प्रार्थना करें और हमारे लिये कल्याणरूप मार्गों का उपदेश करें ॥६॥

सप्तम मण्डल में ६२ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य त्रयष्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठः ऋषिः ॥ १—४, ५[१] सूर्यः । ५[२], ६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब प्राणायामादि संयमों द्वारा ध्येय परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥१॥

पदार्थः—(यः, देवः) जो दिव्यरूप परमात्मा (मित्रस्य, वरुणस्य) अध्यापक तथा उपदेशकों को (चक्षुः) मार्ग दिखलाने वाला और जो (तमांसि) अज्ञानों को (चर्म, इव) तुच्छ तृणों के समान (सं) भले प्रकार (अविव्यक्) नाश करता है, वही (मानुषाणां) सब मनुष्यों का (साधारणः) सामान्यरूप से (सूर्यः) प्रकाशक, (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा और (सुभगः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न है, वह परमात्मदेव प्राणायामादि संयमों से (उद्वेति) प्रकाशित होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मदेव ही अध्यापक तथा उपदेशकों को सन्मार्ग दिखलाने वाला, सब प्रकार के अज्ञानों का नाशक है; वह सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक तथा सर्व ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा प्राणायामादि संयमों द्वारा हमारे हृदय में प्रकाशित होता है, इसी भाव को "चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य" यजु० ७।४२ में प्रतिपादन किया है कि वही परमात्मा सब का प्रकाशक और सन्मार्ग दिखलाने वाला है, "साधारणः" शब्द सामान्य भाव से सर्वत्र व्याप्त होने के अभिप्राय से आया है जिसका अर्थ ऊपर स्पष्ट है ॥१॥

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान्केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥२॥

पदार्थः—वह परमात्मा (जनानां) सब मनुष्यों का (प्रसवीता) उत्पादक, (महान्) सबसे बड़ा, (केतुः) सर्वोपरि विराजमान, (अर्णवः) अन्तरिक्ष तथा (सूर्यस्य) सूर्य्य के (समानं, चक्रं, परि, आविवृत्सन्) समान चक्र को एक परिधि में रखने वाला है। (धूर्षु) इनके धुराओं में (युक्तः) युक्त हुई (यत्) जो (एतशः) दिव्यशक्ति (वहति) अनन्त ब्रह्माण्डों का चालन कर रही है, वह सर्वशक्तिरूप परमात्मा (उद्वेति) संयमी पुरुषों के हृदय में प्रकाशित होता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा को सर्वोपरि वर्णन करते हुए यह वर्णन किया है कि सबका स्वामी परमात्मा जो सम्राट् के केतु=झंडे के समान सर्वोपरि विराजमान है, वह सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष आदि कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को रथ के चक्र समान अपनी धुराओं पर घुमाता

हुआ सबको अपने नियम में चला रहा है उस परमात्मा को संयमी पुरुष ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं ॥२॥

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एष मे देवः सविता चच्छंद यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३॥

पदार्थः—(विभ्राजमानः) वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा (उषसां) सब प्रकाशित पदार्थों में (उपस्थात्) स्थिर होने से (रेभैः) उद्गातादि स्तोतृपुरुषों द्वारा (अनुमद्यमानः) गान किया हुआ (उदेति) प्रकाशित होता है। (एषः) यह (सविता) सब का उत्पन्न करने वाला (देवः) परमात्मा (मे) मेरी कामनाओं को (चच्छन्द) पूर्ण करता है और (यः) वह (नूनं) निश्चय करके (धाम) सब स्थानों को (समानं) समान रूप से (प्रमिनाति) जानता है अर्थात् न किसी से उसका राग और न किसी से द्वेष है ॥३॥

भावार्थः—भाव यह है कि वह परमात्मदेव प्रत्येक मनुष्य के हृदयरूपी धाम को समानभाव से जानता है; उस में न्यूनाधिक भाव नहीं अर्थात् वह पक्षपात किसी के साथ नहीं करता; परमात्मभावों को अपने हृदयगत करना ही उसके प्रकाश होने का साधन है; वही सब ज्योतियों का ज्योति, सर्वोपरि विराजमान और वही सब का उपास्यदेव है; उसी की उपासना करनी चाहिये, अन्य की नहीं ॥३॥

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥४॥

पदार्थः—(तरणिः) सब का तारक (भ्राजमानः) प्रकाशस्वरूप (दूरेअर्थः) सर्वत्र परिपूर्ण (दिवः, रुक्म) द्युलोक का प्रकाशक (उरुचक्षाः) सर्वद्रष्टा परमात्मा उन लोगों के हृदय में (उदेति) उदय होता है जो (जनाः) पुरुष (नूनं) निश्चय करके (सूर्येण) परमात्मा के बतलाये हुए (अयन्) मार्गों पर चलते हुए (प्रसूताः) नूतन जन्म वाले (अर्थानि) सार्थक (अपांसि) कर्म (कृणवन्) करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! वह सन्मार्ग दिखलाने वाला प्रकाशस्वरूप परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और चमकते हुए द्युलोक का भी प्रकाशक है; वह स्वतःप्रकाश प्रभु उन पुरुषों के हृदय में प्रकाशित होता है जो उस की आज्ञा का पालन करते और वेदविहित कर्म करके सफलता को प्राप्त होते हैं ॥४॥

यत्रा॑ च॒क्रुर॒मृता॑ गा॒तुम॑स्मै श्ये॒नो न दीय॒न्नन्वे॑ति॒ पाथः॑ ।
प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते विधेम॒ नमो॑भिर्मित्रावरुणो॒त ह॒व्यैः ॥५॥

पदार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि (मित्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! (वां) तुम्हारी कृपा से हम (नमोभिः) नम्रभावों से (उदिते, सूरे) सूर्य्य के उदय होने पर उस परमात्मा की (विधेम) उपासना करें, जो (श्येनः) विद्युत् के (न) समान गतिवाले पदार्थों की न्याईं (दीयन्) शीघ्र (पाथः, अन्वेति) पहुँचा हुआ है। और जिसको (गातुं) प्राप्त होने के लिये (अमृताः) मुक्त पुरुष (चक्रुः) मुक्ति के साधन करते हैं। (अस्मै) उस स्वतःप्रकाश परमात्मा के लिये (वां) तुम लोग (प्रति) प्रतिदिन प्रातःकाल उपासना करो (उत) और (हव्यैः) हवन द्वारा अपने स्थानों को पवित्र करके (यत्र) जिस जगह मन प्रसन्न हो वहाँ प्रार्थना करो ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा अध्यापक तथा उपदेशकों को आज्ञा देते हैं कि तुम लोग प्रातःकाल उस स्वयं ज्योतिःप्रकाश की उपासना करो जो विद्युत् के समान सर्वत्र परिपूर्ण है और जिस ज्योति की प्राप्ति के लिए मुक्त पुरुष अनेक उपाय करते रहे हैं; तुम लोग उस स्वयंप्रकाश परमात्मा की प्रतिदिन उपासना करो अर्थात् प्रातःकाल ब्रह्मयज्ञ तथा देवयज्ञ करके ध्यान द्वारा उसको सत्कृत करो ॥५॥

नू मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधन्तु ।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥

पदार्थः—(नु) निश्चय करके (मित्रः) सबका मित्र (वरुणः) वरणीय=सबका प्राप्य स्थान (अर्यमा) न्यायकारी परमात्मा (नः) हमारे (त्मने) आत्मा के (तोकाय) सुखप्राप्त्यर्थ (वरिवः) सब प्रकार का ऐश्वर्य्य (दधंतु) धारण करायें अथवा अन्न धन आदि से सम्पन्न करें ताकि (विश्वा) सब (सुगा) मार्ग (नः) हमारे लिये (सुपथानि) सुमार्ग (सन्तु) हों और हे भगवन् ! (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याण-युक्त वाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना है कि हे प्रभो ! आप हमारे लिये सर्वदा=सब काल में कल्याणदायक हों और आप की कृपा से हमको सब ऐश्वर्य्य तथा सुखों की प्राप्ति हो। इस मन्त्र में जो मित्र, वरुण तथा अर्यमा शब्द आये हैं वह सब परमात्मा के नाम हैं, "शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा" यजु० ३६।९ में मित्रादि सब नाम परमात्मा के हैं ॥६॥

सप्तम मण्डल में ६३ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुष्षष्टितमस्य सूक्तस्य १–५ वसिष्ठ ऋषिः ।। मित्रावरुणौ देवते ।। छन्दः–१, २, ३, ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

अब राजसूययज्ञ का निरूपण करते हैं ।।

दिवि क्षयंता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषंत ।।१।।

पदार्थः—(दिवि, क्षयंता) द्युलोक में क्षमता रखने वाले (पृथिव्याम्) पृथिवी लोक में क्षमता रखने वाले (रजसः) राजस भावों के जानने वाले अध्यापक तथा उपदेशक राजा तथा प्रजा को सदुपदेशों द्वारा सुशिक्षित करें और (प्र वां) उन अध्यापक तथा उपदेशकों के लिये प्रजा तथा राजा लोग (घृतस्य, निर्णिजः) प्रेम भाव का (ददीरन्) दान दें और (नः) हमारे (हव्यं) राजसूय यज्ञ को (मित्रः) सब के मित्र (अर्य्यमा) न्यायशील (सुजातः) कुलीन (सुक्षत्रः) क्षात्रधर्म के जानने वाले (वरुणः) सब को आश्रयण करने योग्य राजा लोग (जुषन्त) सेवन करें ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो तुम द्युलोक तथा पृथिवी लोक की विद्या जानने वाले अध्यापक तथा उपदेशकों में प्रेम भाव धारण करो और राजसूय यज्ञ के रचयिता जो क्षत्री लोग हैं उनका प्रीति से सेवन करो ताकि तुम्हारे राजा का पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य में सर्वत्र ऐश्वर्य्य विस्तृत हो जिससे तुम सांसारिक अभ्युदय को प्राप्त होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो अर्थात् जो सब का मित्र, न्यायकारी, कुलीन और जो डाकू चोर तथा अन्यायकारियों के दुःखों से छुड़ाने वाला हो ऐसे राजा की प्रेमलता को अपने स्नेह से सिंचन करो ।।१।।

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिंधुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ।।२।।

पदार्थः—(राजाना) हे राजा लोगो ! तुम (महः, ऋतस्य, गोपा) बड़े सत्य के रक्षक (सिन्धुपती) सम्पूर्ण सागर प्रदेशों के पति (आ) और (क्षत्रिया) सब प्रजा को दुःखों से बचाने वाले हो (अर्वाक्, यातं) तुम शीघ्र उद्यत होकर (नः) अपने (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशकों की (इलां, वृष्टि) अन्न धन के द्वारा (अव) रक्षा करो (उत) और (जीरदानू) शीघ्र ही (दिवः) अपने ऐश्वर्य्य से (इन्वतं) इनको प्रसन्न करो ।।२।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा लोगो ! तुम सदा

सत्य का पालन करो और एकमात्र सत्य पर ही अपने राज्य का निर्भर रक्खो; सब प्रजावर्ग को दुःखों से बचाने का प्रयत्न करो और अपने देश में विद्याप्रचार तथा धर्मप्रचार करने वाले विद्वानों का धनादि से सत्कार करो ताकि तुम्हारा ऐश्वर्य्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो ॥२॥

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयंतु ।

ब्रवद्यथा न आदरिः सुदासं इषा मदेम सह देवगोपाः ॥३॥

पदार्थः—हे राजा तथा प्रजाजनो ! तुमको (तत्) वह (मित्रः) अध्यापक (वरुणः) उपदेशक (अर्यः) न्यायाधीश (देवः) विद्वान् (प्र साधिष्ठेभिः, पथिभिः) भले प्रकार शुभ साधनों वाले मार्गों से (नयन्तु) ले जायं ताकि (सह, देवगोपाः) राजा तथा प्रजाजन साथ-साथ (इषा, मदेम) ऐश्वर्य्य का सुख लाभ करें (सुदासे) उत्तम दान के लिये (अरिः) न्यायकारी परमात्मा (नः) हमको (यथा) जिस प्रकार (आत्) सदैव (ब्रवत्) उत्तम उपदेश करते हैं उसी प्रकार आप (नः) हमको उपदेश करें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा तथा प्रजाजनो तुम उस सर्वोपरि न्यायकारी परमात्मा की आज्ञा का यथावत् पालन करो जिससे तुम मनुष्यजन्म के फलचतुष्टय को प्राप्त कर सको, तुमको तुम्हारे अध्यापक, उपदेष्टा तथा न्यायाधीश सदैव उत्तम मार्गों से चलायें जिससे तुम्हारा ऐश्वर्य्य प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हो ॥३॥

यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च ।

उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (राजाना) राजा लोग (मित्रावरुणा) अध्यापक तथा उपदेशकों को (घृतेन) स्नेह से (उक्षेथां) सिंचन करते हैं (ता) वह (सुक्षितीः) सम्पूर्ण प्रजा को (तर्पयेथां) तृप्त करते हैं (च) और जो (वां) अध्यापक तथा उपदेशकों के (गर्तं) गूढ़ाशयों को (मनसा) मन से (तक्षत्) विचार कर (एवं) उन (ऊर्ध्वां, धीतिं) उन्नत कर्मों को (धारयत्) धारण करके (कृणवत्) करते हैं वह सदैव उन्नत होते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो राजा लोग अपनी प्रजा में विद्या तथा धार्मिक भावों के प्रचारार्थ अध्यापक और बड़े बड़े विद्वान् धार्मिक उपदेशकों का अपने स्नेह से पालन-पोषण करते हैं वह अपनी प्रजा को उन्नत करते हैं और जो प्रजाजन उक्त महात्माओं के उपदेशों को मन

से विचार कर अनुष्ठान करते हैं वह कभी अवनति को प्राप्त नहीं होते प्रत्युत सदा उन्नति की ओर जाते हैं ।।४।।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।५।।

पदार्थः—(मित्र, वरुण) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (एषः, स्तोमः) यह विद्यारूपी यज्ञ (सोमः शुक्रः) शीघ्र तथा बल के देने वाला हो और तुम्हें (वायवे, न अयामि) आदित्य के समान प्रकाशित करे (धियः) तुम्हारी बुद्धि (अविष्टं) श्रेष्ठ कर्मों में (जिगृतं) सदा वर्त्तें जिससे तुम (पुरंधीः) ऐश्वर्य्यशाली होओ (यूयं) तुम लोग (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनादि वाणियों से (नः) हमको (पात) पवित्र करो, ऐसा कथन किया करें ।।५।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! विद्यारूपी यज्ञ तुम्हारे लिये बल तथा प्रकाश देने वाला हो और यह यज्ञ तुम्हारे सम्पूर्ण कर्मों को सफल करे, तुम्हारी बुद्धियें सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें, तुम इस यज्ञ की पूर्णाहुति में सदा यह प्रार्थना किया करो कि परमात्मा मंगलमय भावों से सदैव हमको पवित्र करे ।।५।।

सप्तम मण्डल में चौसठवां सूक्त समाप्त हुआ।

अथ पञ्चर्चस्य पंचषष्टितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः ।। मित्रावरुणौ देवते ।। छन्दः–१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

।। अब सूर्योदय समय में परमात्मा का उपासन कहते हैं ।।

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।

ययोरसुर्य१'मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ।।१।।

पदार्थः—(वां) हे राजा तथा प्रजाजनसमुदाय ! तुम सब (सूरे, उदिते) सूर्योदय काल में (मित्रं) सबका मित्र (वरुणं) सबका उपासनीय (पूतदक्षं) पवित्र नीति वाले परमात्मा के (प्रति) समक्ष (सूक्तैः) मन्त्रों द्वारा (हुवे) उपासना करो (ययोः) जो उपासक राजा तथा प्रजाजन (अक्षितं, असुर्यं) अपरिमित बल वाले (ज्येष्ठं) सब से बड़े (विश्वस्य, यामन्) संसार भर के संग्रामों में (आचिता) वृद्धि वाले देव की उपासना करते हैं वे (जिगत्नु) अपने शत्रुओं को संग्रामों में जीत लेते हैं ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो तुम सब सूर्योदय-

काल में वेद मन्त्रों द्वारा सर्वपूज्य परमात्मा की उपासना करो जिससे तुम्हें अक्षत बल तथा मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होगी और तुम संग्राम में अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करोगे । यहां द्विवचन से राजा तथा प्रजा दोनों का ग्रहण है अर्थात् राजा और प्रजा दोनों उपासनाकाल में प्रार्थना करें कि हे भगवन् ! आप हमको अक्षत बल प्रदान करें जिससे हम शत्रुओं को जीत सकें ।।१।।

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयंतीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ।।२।।

पदार्थः—(हि) निश्चय करके (ता) वही (तौ) राजा तथा प्रजा (देवानां) देवों के मध्य (असुरा) बल वाले होते, (अर्या) वही श्रेष्ठ होते और (ता) वही (नः) हमारी (क्षितीः) पृथिवी को (ऊर्जयंतीः, करतं) उन्नत करते हैं जो (मित्रावरुणा) सब के मित्र तथा वरणीय परमात्मा की उपासना करते हुए यह प्रार्थना करते हैं कि (वयं) हम लोग (अश्याम) परमात्मपरायण हों (च) और (यत्र) जहां (वां) राजा प्रजा दोनों (अहा) प्रतिदिन (पीपयन्) वृद्धि की प्रार्थना करते हैं वहां (द्यावा) द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों को ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है ।।२।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम प्रतिदिन परमात्मपरायण होने के लिये प्रयत्न करो, जो लोग प्रतिदिन परमात्मा से प्रार्थना करते हुए अपनी वृद्धि की इच्छा करते हैं वे द्युलोक तथा पृथिवी लोक के ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं, इसलिये तुम सदैव अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना किया करो ।।२।।

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ।।३।।

पदार्थः—(ऋतस्य) सत्य का (पथा) मार्ग जो (मित्रावरुणा) सब का मित्र तथा वरणीय परमात्मा है वह (वां) हम राजा प्रजा को (अपः) जल की (नावा) नौकाओं के (न) समान (दुरिता) पापों से (तरेम) तारे, वह परमात्मा (मर्त्याय) मरणधर्मा मनुष्यों के (रिपवे) रिपुओं के लिये (भूरिपाशौ) अनन्त बलयुक्त और (ता) पूर्वोक्त गुणों वाले भक्तों के लिये (अनृतस्य) अनृत से तराने का (सेतु) पुल है जिसके द्वारा उसका भक्त सब प्रकार के विघ्नों से (दुरत्येतू) तर जाता है ।।३।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! जल की नौकाओं के समान तुम्हारे तराने का एकमात्र साधन परमात्मा ही है, इसलिये तुम

सेतु के समान उस पर विश्वास करके इस संसार रूप भवसागर को जिसमें रिपु आदि अनेक प्रकार के दुरित रूप नक्र और असत्यादि अनेक प्रकार के भंवर हैं, इन सब से बचकर पार होने के लिये तुम्हें एकमात्र जगदीश्वर का ही अवलम्बन करना चाहिये अन्य कोई साधन नहीं ॥३॥

आ नो॑ मित्रावरुणा ह॒व्यजु॑ष्टिं घृ॒तैर्गव्यू॑तिमुक्षत॒मिळा॑भिः ।
प्रति॑ वा॒मत्र॒ वर॒मा जना॑य पृणी॒तमु॒द्नो दि॒व्यस्य॒ चारोः॑ ॥४॥

पदार्थः—(मित्रावरुणा) हे परमात्मन् ! (नः) हमारे (हव्यजुष्टिं गव्यूतिं) यज्ञ भूमि को (आ) भली भांति (घृतैः, इळाभिः) घृत तथा अन्नों से (उक्षतं) पूर्ण करें (वां) दोनों राजा प्रजा को (अत्र) यहां (वरं) श्रेष्ठ (आ) और (चारोः दिव्यस्य) चरणशील द्यु लोकस्थ प्रदेशों के विचरने वाले बनायें और (नः, जनाय) हम लोगों को (उद्नः) प्रेम भाव (पृणीतं) प्रदान करें, हमारी आप से (प्रति) प्रतिदिन यही प्रार्थना है ॥४॥

भावार्थः—हे दिव्यशक्ति सम्पन्न परमात्मन्! आप हमारी यज्ञभूमि को अन्न तथा स्निग्ध द्रव्यों से सदैव सिंचन करते रहें और हम को द्युलोकादि दिव्य स्थानों में विचरने के लिये उत्तम साधन प्रदान करें जिससे हम अव्याहतगति होकर आप के लोकलोकान्तरों में परिभ्रमण कर सकें, यह हमारी आप से प्रार्थना है ॥४॥

ए॒ष स्तोमो॑ वरुण मित्र॒ तुभ्यं॒ सोमः॑ शु॒क्रो न वा॒यवेऽया॑मि ।
अ॒वि॒ष्टं धियो॑ जिगृ॒तं पुरं॑धीर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥५॥

पदार्थः—(वरुण, मित्र) हे वरणीय तथा सब के प्रियतम परमात्मन् ! (एषः, स्तोमः) यह विज्ञानमय यज्ञ (तुभ्यं) तुम्हारे निमित्त (अयामि) किया गया है, आप हमें (सोमः) सौम्यस्वभाव (शुक्रः) बल (वायवे, न) आदित्य के समान प्रकाश (अयामि) प्रदान करें, यह यज्ञ (धियः, अविष्टं) बुद्धि की रक्षा (जिगृतं) जागृति (पुरंधीः) स्तुत्यर्थ है (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक पदार्थों के प्रदान द्वारा (नः) हमको (सदा) सदा (पातं) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—इस विज्ञानमय यज्ञ में स्नेह तथा आकर्षणरूप शक्तिप्रधान परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हे भगवन् ! आप हमें सौम्यस्वभाव, बलिष्ठ तथा आदित्य के समान तेजस्वी बनायें और हमारी बुद्धि की सब

ओर से रक्षा करें ताकि हम सदा प्रबुद्ध और अपने उद्योगों में तत्पर रहें आपसे यही प्रार्थना है कि आप सदैव हम पर कृपा करते रहें ॥५॥

सप्तम मण्डल में ६५ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य १—१९ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३, १७–१९ मित्रावरुणौ, ४–१३ आदित्याः । १४—१६ सूर्यो देवता ॥ छन्दः– १, २, ४, ९ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ५-७, १८, १९ आर्षी गायत्री । ८ स्वराड् गायत्री । १७ पादनिचृद् गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ स्वराड् बृहती । १२ आर्ची स्वराड् बृहती । १३, १५ आर्षी भुरिग् बृहती । १४ आर्षी- विराड्बृहती । १६ पुर उष्णिक् ॥ स्वरः–१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १७, १८, १९ षड्जः । १०—१५ मध्यमः । १६ ऋषभः ॥

अब पूर्वोक्त विज्ञान यज्ञ को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं:—

प्र मि॒त्रयो॒र्वरु॑णयो॒: स्तोमो॑ न एतु शू॒ष्य॑: । नम॑स्वान्तुविजा॒तयो॑: ॥१॥

पदार्थः—(मित्रयोः, वरुणयोः) हे प्रेममय सर्वाधार परमात्मन् ! (नः) हमारा (प्र, स्तोमः) यह विस्तृत विज्ञान यज्ञ (शूष्यः) सब प्रकार की वृद्धि करने वाला (एतु) हो (तु) और (विजातयोः) हे जन्म-मरण से रहित भगवन् ! यह यज्ञ (नमस्वान्) बृहदन्न से सम्पन्न हो ॥१॥

भावार्थः—"विगतम् जातम् यस्मात्स विजातः"=जिससे जन्म विगत हो उसको "विजात" कहते हैं, अर्थात् विजात के अर्थ यहां आकृति-रहित के हैं अथवा "जननं जातम्"=उत्पन्न होने वाले को "जात" और इससे विपरीत जन्मरहित को "अजात" कहते हैं। इस मन्त्र में जन्म तथा मृत्यु से रहित मित्रावरुण नामक परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें जिससे हमारा यह विज्ञानरूपी यज्ञ सब प्रकार के सुखों का देने वाला और प्रभूत अन्न से समृद्ध हो ॥१॥

या धा॒रय॑न्त दे॒वाः सु॒दक्षा॒ दक्ष॑पितरा । अ॒सु॒र्या॑य॒ प्रम॑हसा ॥२॥

पदार्थः—हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! आपको (देवाः) विद्वान् लोग (धारयंत) धारण करते हैं (या) जो आप (सुदक्षा) विज्ञानी हो (दक्षपितरा) विज्ञानियों की रक्षा करने वाले हो; (प्रमहसा) प्रकृष्ट तेज वाले आप (असुर्याय) हमारे सब के लिए सहायक हों ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी द्विवचन अविवक्षित है अर्थात् "या" से "यौ" के अर्थों का ग्रहण नहीं किन्तु यह अर्थ है कि हे परमात्मन् ! आपको

विद्वान् लोग धारण करते हैं, आप सर्वोपरि दक्ष और दक्षों के भी रक्षक हैं, आप हमारे इस विज्ञान यज्ञ में अपनी दक्षता से सहायक हों ।।२।।

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम् । मित्र साधयतं धियः ।।३।।

पदार्थः—(मित्र) हे मित्र परमात्मन् ! आप (जरितॄणां) क्षणभंगुर=शरीर वाले मनुष्यों की (धियः) बुद्धि को (साधयतं) साधन सम्पन्न करें। (वरुण) हे वरणीय परमात्मन् ! आप (नः) हमारे (स्तिपा) घरों को पवित्र करें, क्योंकि (ता) उक्त गुणों वाले आप (तनूपा) सब प्रकार के शरीरों को पवित्र करने वाले हैं ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में "तनूपा" परमात्मा से सब प्रकार की पवित्रता के लिये प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप हम को सब प्रकार से पवित्र करें अथवा स्तिपा, तनूपा आदि सब परमात्मा के नाम हैं, जो गृहादि स्थानों को पवित्र करे उसका नाम "स्तिपा" और जो शरीरों को पवित्र करें उसको "तनूपा" कहते हैं, इत्यादि नामयुक्त परमात्मा से पवित्रता की प्रार्थना करके पश्चात् विज्ञानयज्ञ में क्रियाकौशल की सिद्धि के लिये बुद्धि को साधन सम्पन्न करने की प्रार्थना की गई है ।।३।।

यद॒द्य सूर॒ उदि॑ते॒ऽनागा मित्रो अर्य॒मा । सुवाति सविता भगः ।।४।।

पदार्थः—(यत्) जो धन (अद्य) आज (सूरे, उदिते) सूर्य के उदय होने पर आता है वह सब (अनागाः) निष्पाप (मित्रः) सबके प्रिय (अर्यमा) न्यायकारी (सुवाति) सर्वव्यापक (सविता) सर्वोत्पादक (भगः) ऐश्वर्यसम्पन्न इत्यादि गुणों वाले परमेश्वर की कृपा से आता है ।।४।।

भावार्थः—मनुष्यों को जो प्रतिदिन धन तथा ऐश्वर्य प्राप्त होता है वह सब परमेश्वर की कृपा से मिलता है, मानो वह सत्कर्मियों को अपने हाथ से बाँटता है और दुष्कर्मी हाथ मलते हुए देखते रहते हैं। इसलिये भग=सर्व ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा से सत्कर्मों द्वारा उस ऐश्वर्य की प्रार्थना कथन की गई है कि आप कृपा करके हमें भी प्रतिदिन वह ऐश्वर्य प्रदान करें ।।४।।

सुप्रावी॒रस्तु॒ स क्षयः॒ प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
ये नो॒ अंहो॑ऽतिपि॒प्रति ।।५।।

पदार्थः—(सुदानवः) हे यजमान लोगो ! तुम्हारे (यामन्) मार्ग (सः) वह परमात्मा (क्षयः) विघ्न रहित करें (नु) और (सुप्रावीः, अस्तु) रक्षायुक्त हों।

तुम लोग यह प्रार्थना करो कि (ये) जो (नः) हमारे (अंहः) पाप हैं उनको आप (अतिपिप्रति) हम से दूर करें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि दानी तथा यज्ञशील यजमानों के मार्ग सदा निर्विघ्न होते हैं और उनके पापों का सदैव क्षय होता है। अर्थात् जब वह अपने शुद्ध हृदय द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! आप हमारे पापों का क्षय करें तब उनके इस कर्म का फल अवश्य शुभ होता है। यद्यपि वैदिक मत में केवल प्रार्थना का फल मनोभिलषित पदार्थों की प्राप्ति नहीं हो सकता तथापि प्रार्थना द्वारा अपने हृदय की न्यूनताओं को अनुभव करने से उद्योग का भाव उत्पन्न होता है जिसका फल परमात्मा अवश्य देते हैं, या यों कहो कि अपनी न्यूनताओं को पूर्ण करते हुए जो प्रार्थना की जाती है वह सफल होती है ॥५॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो (राजानः) राजा लोग (अदब्धस्य, महः, व्रतस्य,) अखण्डित महाव्रत को (ईशते) करते हैं वह (स्वराजः) सब के स्वामी (उत) और (अदितिः) सूर्य के समान प्रकाश वाले होते हैं ॥६॥

भावार्थः—न्यायपूर्वक प्रजाओं का पालन करना राजाओं का "अखण्डित महाव्रत" है। जो राजा इस व्रत का पालन करता है अर्थात् किसी पक्षपात से न्याय नियम को भंग नहीं करता वह स्वराज्य = अपनी स्वतंत्र सत्ता से सदा विराजमान होता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि "स्वयं राजते इति स्वराट्"=जो स्वतंत्र सत्ता से विराजमान हो उसका नाम "स्वराट्" और "स्वयं राजते इति स्वराजः"=जो स्वयं विराजमान हो उसको "स्वराज" कहते हैं। और यह बहुवचन में बनता है। यहां "स्वराज" शब्द "राजानः" का विशेषण है। अर्थात् वही राजा लोग स्वराज का लाभ करते हैं जो न्याय-नियम से प्रजापालक होते हैं, अन्य नहीं ॥६॥

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥७॥

पदार्थः—(वां) हे राजा तथा प्रजाजनो! तुममें से (सूरे, उदिते) सूर्योदय काल में (प्रति) प्रत्येक मनुष्य (मित्रं) सर्वप्रिय (वरुणं) सब के उपासनीय परमात्मा की (गृणीषे) उपासना करे जो (अर्यमणं) न्यायकारी और (रिशादसं) अज्ञान का नाशक है ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा तथा प्रजा के लोगो ! तुम्हारा सब का यह कर्तव्य है कि तुम प्रातःकाल उठकर पूजनीय परमात्मा की उपासना करो, जो किसी का पक्षपात नहीं करता और वह स्वकर्मानुसार सबको शुभाशुभ फल देता है। ऐसे न्यायाधीश को लक्ष्य रख कर उपासना करने से मनुष्य स्वयं भी न्यायकारी और धर्मात्मा बन जाता है ॥७॥

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥८॥

पदार्थः—(विप्राः) हे विद्वान् लोगो ! तुम्हारी (इयं) यह (मतिः) बुद्धि (अवृकाय) अहिंसाप्रधान हो और (इयं) यह मति (शवसे) बल की वृद्धि, (मेधसातये) यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति तथा (हिरण्यया, राया) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली हो ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम ऐसी बुद्धि उत्पन्न करो जिससे किसी की हिंसा न हो और जो बुद्धि ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, तथा कर्मयज्ञ आदि सब यज्ञों को सिद्ध करने वाली हो। इस प्रकार की बुद्धि के धारण करने से तुम बलवान् तथा ऐश्वर्यसम्पन्न होगे। इसलिए तुमको "धियो यो नः प्रचोदयात्" इस गायत्री तथा अन्य मंत्रों द्वारा सदैव शुभ मति की प्रार्थना करनी चाहिए ॥८॥

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ॥९॥

पदार्थः—(वरुण) हे सब के पूजनीय (मित्र) परमप्रिय (देव) दिव्यस्वरूप भगवन् ! (ते) तुम्हारे उपासक (स्याम) ऐश्वर्ययुक्त हों, न केवल हम ऐश्वर्ययुक्त हों किन्तु (ते) तुम्हारे (सूरिभिः) तेजस्वी विद्वानों के (सह) साथ (इषं) ऐश्वर्य (स्वश्च) और सुख को (धीमहि) धारण करें ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि यजमान लोगो ! तुम इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे परमात्मदेव ! हम लोग सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त हों, न केवल हम किन्तु ऋत्विगादि सब विद्वानों के साथ हम आनन्द लाभ करें ॥९॥

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥

पदार्थः—(सूरचक्षसः) सूर्य्यसदृश प्रकाश वाले (अग्निजिह्वाः) अग्निसमान वाणी वाले (ऋतावृधः) सत्यरूप यज्ञ के बढ़ाने वाले (ये) जो (परिभूतिभिः,

धीतिभिः) शुभ कर्मों द्वारा (विदधानि) कर्मभूमि को बढ़ाते हैं वह (त्रीणि) कर्म, उपासना तथा ज्ञान को प्राप्त हुए (बह्वः) अनेक विद्वान् (विश्वानि) सम्पूर्ण फलों को (येमुः) प्राप्त होते हैं ॥१०॥

भावार्थः—जो विद्वान् पुरुष अपने शुभकर्मों द्वारा कर्म क्षेत्र को विस्तृत करते हैं। वही सब प्रकार के फलों को प्राप्त होते और कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप फलचतुष्टय को प्राप्त हैं। इस प्रकार के विद्वान् सूर्यसमान प्रकाश को लाभ करते हैं और अग्नि के सदृश उनकी वाणी असत्यरूप समिधाओं को जलाकर सदैव सत्यरूपी यज्ञ करती है। अर्थात् सत्कर्मी, अनुष्ठानी तथा विज्ञानी विद्वानों का ही काम है कि वह परस्पर मिलकर कर्मभूमि को विस्तृत करें, या यों कहो कि कर्मयोग के क्षेत्र में कटिबद्ध हों ॥१०॥

वि ये द॒धुः श॒रदं॒ मास॒मादह॑र्य॒ज्ञम॒क्तुं चा॒दृचं॑ ।

अ॒ना॒प्यं वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा क्ष॒त्रं राजा॑न आशत ॥११॥

पदार्थः—(ये) जो विद्वान् (शरदं, मासं) शरद मास के प्रारम्भिक (अहः, अक्तुं, यज्ञं) दिन रात के यज्ञ को (ऋचं) ऋग्वेद की ऋचाओं से (वि दधुः) भले प्रकार करते हैं। वह (अनाप्यं) इस दुर्लभ यज्ञ को करके (वरुणः) सबके पूजनीय (मित्र) सर्वप्रिय (अर्यमा) न्यायशील तथा (राजानः) दीप्तिमान होकर (क्षत्रं) क्षात्र धर्म को (आशत) लाभ करते हैं ॥११॥

भावार्थः—शरद् ऋतु के प्रारम्भ में जो यज्ञ किया जाता है उसका नाम "शारद" यज्ञ है। यह यज्ञ रात्रि दिन अनवरत किया जाता है। जो विद्वान् अनुष्ठानपरायण होकर इस वार्षिक यज्ञ को पूर्ण करते हैं वह दीप्तिमान होकर सबके सत्कारार्ह होते हैं ॥११॥

तद्वो॑ अ॒द्य म॑नामहे सू॒क्तैः सूर॒ उदि॑ते ।

यदोह॑ते॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा यू॒यमृ॒तस्य॑ रथ्यः ॥१२॥

पदार्थः—(तत्) वह परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! वह तुम उन विद्वानों का (अद्य) आज (सूरे, उदिते) सूर्योदय काल में (सूक्तैः) सुन्दर वाणियों द्वारा (मनामहे) आवाहन करो। (यत्) जो (ओहते) सुमार्ग दिखलाने वाले हैं और उनसे प्रार्थना करो कि (वरुणः) हे सर्वपूज्य (मित्रः) सर्वप्रिय (अर्यमा) न्यायपूर्वक वर्तने वाले (रथ्यः) सन्मार्ग के नेता लोगो (यूयं) आप ही (ऋतस्य) सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाले हैं ॥१२॥

भावार्थः—इस मंत्र में यह उपदेश है कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम अपने प्रातःस्मरणीय विद्वानों को सूर्योदय समय सत्कारपूर्वक आवाहन=बुलाओ और उनसे प्रार्थना करो कि आप न्यायादिगुणसम्पन्न होने से हमारे पूज्य हैं। कृपा करके हमें भी सन्मार्ग का उपदेश करें, क्योंकि स्वयं अनुष्ठानी तथा सदाचारी विद्वान् ही अपने सदुपदेशों द्वारा सन्मार्ग को दर्शा सकते हैं। सो आप हमें भी कल्याणकारक उपदेशों द्वारा कृतकृत्य करें ॥१२॥

अब उपर्युक्त विद्वानों के गुण वर्णन करते हैं ॥

ऋतावा॑न ऋ॒तजा॑ता ऋ॑ता॒वृधो॑ घो॒रासो॑ अनृत॒द्विषः॑ ।
तेषां॑ वः सु॒म्ने सु॑च्छ॒र्दिष्ट॑मे नरः॒ स्याम॒ ये च॑ सू॒रयः॑ ॥१३॥

पदार्थः—(ऋतवानः) सत्यपरायण, (ऋतजाताः) सत्य की शिक्षा प्राप्त किये हुए, (ऋतावृधः) सत्यरूप यज्ञ की वृद्धि करने वाले (घोरासः अनृतद्विषः) और असन्मार्ग के अत्यन्त द्वेषी विद्वानों के (सुच्छर्दिष्टमे) सुखतम (सुम्ने) मार्ग में (वः) तुम लोग चलो (च) और (तेषां) उन विद्वानों से (ये) जो अपने गुणगौरव द्वारा (सूरयः) तेजस्वी हैं (नरः) तुम लोग प्रार्थना करो कि हम भी (स्याम) उक्त गुण-सम्पन्न हों ॥१३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम अनृत से द्वेष करने वाले तथा सत्य से सदा प्यार करने वाले सत्पुरुषों का सत्संग करो और उनसे नम्रतापूर्वक वर्तते हुए प्रार्थना करो कि हे महाराज ! हमें भी सन्मार्ग का उपदेश करो ताकि हम भी उत्तम गुणसम्पन्न हों ॥१३॥

अब उपर्युक्त विद्वानों के सत्संग से शुद्ध हुए अंतःकरण द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का कथन करते हैं ॥

उदु॒ त्यद्द॑र्श॒तं वपु॑र्दि॒व ए॑ति प्रतिह्व॒रे ।
यदी॑मा॒शुर्वह॑ति दे॒व एत॑शो॒ विश्व॑स्मै॒ चक्ष॑से॒ अर॑म् ॥१४॥

पदार्थः—(त्यद्, दर्शतं, वपुः, उत्) और उस अमृत पुरुष का दर्शनीय स्वरूप (यद्) जो (दिवः, प्रतिह्वरे) प्रकाशमान अंतःकरण में (एति) प्रकाशित होता है, उस (विश्वस्मै, चक्षसे) सम्पूर्ण संसार के द्रष्टा (देवः) देव को (एतशः, ईं) यह गमनशील अन्तःकरण की वृत्तियें (आशु, वहति) शीघ्र ही प्राप्त कराने में (अरं) समर्थ होती हैं। मंत्र में "उ" पादपूर्ति के लिये है ॥१४॥

भावार्थः—इस मंत्र में यह उपदेश किया है कि अनृत से द्वेष तथा

सत्य से प्यार करने वाले पुरुषों के सत्संग से शुद्धान्तःकरण पुरुष उस परमात्मदेव को प्राप्त करते हैं। अर्थात् उनके अन्तःकरण की वृत्तियां उस सर्वद्रष्टा देव को प्राप्त करने के लिए शीघ्र ही समर्थ होती हैं और उन्हीं के द्वारा वह देव प्रकाशित होता है; मलिनान्तःकरण पुरुष उसको प्राप्त करने में सर्वथा असमर्थ होते हैं। इसलिये, हे सांसारिक जनो ! तुम सत्संग द्वारा उस अमृतस्वरूप को प्राप्त करो जो तुम्हारा एक मात्र आधार है ॥१४॥

अब परमात्मप्राप्ति के लिए और साधन कथन करते हैं॥

शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः।

सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहंति हरितो रथे ॥१५॥

पदार्थः—(रथे) योगिजनों के मार्ग में विचरने वाली (हरितः) अन्तःकरण की वृत्तियें (सूर्यं) उस प्रकाशस्वरूप परमात्मा को (वहंति) प्राप्त कराती हैं जो (सुविताय) इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके (जगतः, तस्थुषः पतिं) जंगम तथा स्थावर का पति है (आ) और जो (रजः, विश्वं) परमाणुओं से लेकर सम्पूर्ण संसार को (समया) अनादि काल से रचता है। उसकी प्राप्ति का हेतु (शीर्ष्णः, शीर्ष्णः,) प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में (स्वसारः सप्त) निरन्तर स्वयं चलने वाली सप्त इन्द्रियों की वृत्तियें हैं ॥१५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उस परमात्मा की प्राप्ति का उपाय कथन किया है जो स्थावर तथा जंगमरूप इस ब्रह्माण्ड का एकमात्र पति है। उसी परमात्मदेव को यहां "सूर्यं" कथन किया गया है, जो इस भौतिक सूर्य का वाचक नहीं किन्तु उस स्वतःप्रकाश परमात्मा का बोधक है। जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाला है, उसकी प्राप्ति का साधन मस्तिष्क में सप्त इन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं अर्थात् दो आँख, दो कान, दो नासिका के छिद्र और एक मुख, इस प्रकार यह सप्त इन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं। "स्वयं सरन्तीति स्वसारः"=जो स्वयं गमन करें उनको "स्वसा" कहते हैं। जब यह वृत्तियें सदसद्विवेचन करने वाली हो जाती हैं तब उस ज्ञानगम्य परमात्मा की प्राप्ति होती है। अथवा पांच ज्ञानेन्द्रिय, छठा मन और सातवीं बुद्धि, इन सातों द्वारा चराचर ब्रह्माण्ड के पति परमात्मा की रचना को ज्ञानगम्य करके मनुष्य उस प्रकाशस्वरूप को प्राप्त होता है, जहां "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्"=न सूर्य का प्रकाश पहुंच सकता और न चन्द्र तथा तारागण अपना प्रकाश पहुँचा सकते हैं। इस भाव से यहाँ

वृत्तियों का वर्णन किया है अर्थात् योगी पुरुषों के अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही उस परमज्योति को प्राप्त कराने में समर्थ होती हैं ॥१५॥

अब उस सर्वद्रष्टा परमात्मा से प्रार्थना करने का प्रकार कथन करते हैं ॥

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥१६॥

पदार्थः—(तत्) वह परमात्मा जो (चक्षुः) सर्वद्रष्टा (देवहितं) विद्वानों का हितैषी (शुक्रं) बलवान् (उच्चरत्) सर्वोपरि विराजमान है, उसकी कृपा से हम (जीवेम, शरदः, शतं) सौ वर्ष पर्यन्त प्राणधारण करें, और (पश्येम, शरदः शतं,) सौ वर्ष पर्यन्त उसकी महिमा को देखें अर्थात् उसकी उपासना में प्रवृत्त रहें ॥१६॥

भावार्थः—सर्वप्रकाशक, सबका हितकारी तथा बलस्वरूप परमात्मा ऐसी कृपा करे कि हम सौ वर्ष जीवित रहें और सौ वर्ष तक उसको देखें। यहाँ "पश्येम" के अर्थ आँखों से देखने के नहीं किन्तु ध्यान द्वारा ज्ञान-गोचर करने के हैं, जैसा कि "दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या" कठ० ३।१२ इस वाक्य में "दृश्यते" के अर्थ बुद्धि से देखने के हैं अथवा उसकी इस रचना-रूप महिमा को देखते हुए उसकी महत्ता का अनुभव करके उपासन में प्रवृत्त हों, यह आशय है ॥१६॥

अब यज्ञ में सोमादि सात्विक पदार्थों द्वारा देव=विद्वानों का सत्कार कथन करते हैं ॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥

पदार्थः—(वरुण) हे सर्वपूज्य (मित्रः) सर्वप्रिय (अदाभ्या) संयमी (च) तथा (द्युमत्) तेजस्वी विद्वानो ! आप लोग (सोमपीतये) सोमपान करने के लिये (काव्येभिः) यानों द्वारा (आ, यातं) भले प्रकार आयें ॥१७॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा ने शिष्टाचार का उपदेश किया है कि हे प्रजाजनो, तुम सर्वपूज्य, विद्वान्, जितेन्द्रिय तथा वेदोक्त कर्मकर्त्ता विद्वानों को सुशोभित यानों द्वारा सत्कारपूर्वक अपने घर वा यज्ञमण्डप में बुलाओ और सोमादि उत्तमोत्तम पेय तथा खाद्य पदार्थों द्वारा उनका सत्कार करते हुए उनसे सदुपदेश श्रवण करो ॥१७॥

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥१८॥

पदार्थः—(वरुण, मित्रः) हे पूजनीय तथा परमप्रिय विद्वान् पुरुषो ! आप

लोग (अद्रुहा) राग द्वेष को त्याग कर (दिवः, धामभिः) ज्ञान से प्रकाशित हुए मार्गों से (आ, यातं) उत्साह पूर्वक आओ (च) और (आतुजी, सोमं) शान्ति प्रदान करने वाले सोमरस को (पिबतं) पीओ ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे ज्ञान के प्रकाश से सदा तेजस्वी तथा रागद्वेषादि भावों से रहित विद्वान् पुरुषो ! तुम यजमानों से निमन्त्रित हुए उनके पवित्र घरों में आओ और सोमादि सात्विक पदार्थों का सेवन करते हुए उनको पवित्र धर्म का उपदेश करो ताकि वह गृहस्थाश्रम के नियमपालन में विचल न हों ॥१८॥

आ यांतं मित्रावरुणा जुषाणावाहुंतिं नरा ।

पातं सोमंमृतावृधा ॥१९॥

पदार्थः—(ऋतावृधा) हे ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ, कर्मयज्ञ आदि यज्ञों के बढ़ाने वाले (मित्रावरुणा, नरा) मित्र वरुण विद्वान् लोगो ! तुम (आ, यातं) सत्कारपूर्वक आओ और हमारी इस शान्ति की (आहुतिं) आहुति को (जुषाणौ) सेवन करते हुए (सोमं, पातं) पवित्र सोम का पान करो ॥१९॥

भावार्थः—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे ज्ञानादि यज्ञों के अनुष्ठानी विद्वानो ! तुम सत्कार पूर्वक अपने यजमानों को प्राप्त होओ और सोमपान करते हुए उनके हृदय को शांतिधाम बनाओ अर्थात् अपने अनुष्ठानरूप ज्ञान से उनको ज्ञानयज्ञ, योगयज्ञ तथा कर्मयज्ञादि वैदिक कर्मों का अनुष्ठानी बनाकर पवित्र करो और शांति की आहुति देते हुए संसार भर में शान्ति फैलाओ जो तुम्हारा कर्तव्य है ॥१९॥

सप्तम मण्डल में ६६ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्चीत्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा इस सूक्त में राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।

यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरां विवक्मि ॥१॥

पदार्थः—(वां) हे अध्यापक वा उपदेशको ! (रथं) तुम्हारे मार्ग को (नृपती) राजा (हविष्मता) हवि वाले (मनसा) मानस (यज्ञियेन) याज्ञिक भावों से (प्रति,

जरध्यै) प्रतिदिन स्तुति करे, मैं (वां) तुम लोगों को (दूतः) दूत के (न) समान (यः) जो (विवक्मि) उपदेश करता हूँ उसको (अच्छ) भलीभांति सुनो (पितरा) पितर लोग (सूनुः) अपने पुत्रों को (न) जिस प्रकार (अजीगः) जगाते हैं इसी प्रकार (धिष्ण्यौ) धारणा वाले तुम लोग उपदेश द्वारा राजाओं को जगाओ ॥१॥

भावार्थः—हे धारणा वाले अध्यापक तथा उपदेशको ! मैं तुम्हें दूत के समान उपदेश करता हूं कि जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को सुमार्ग में प्रवृत्त होने के लिये सदुपदेश करता है इसी प्रकार तुम लोग भी वेदों के उपदेश द्वारा राजाओं को सन्मार्गगामी बनाओ ताकि वह ऐश्वर्य्यप्रद यज्ञों से वेदमार्ग का पालन करें अथवा ध्यानयज्ञों से तुम्हारे मार्ग को विस्तृत करें ॥१॥

अब उपदेश का समय कथन करते हैं ॥

अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥२॥

पदार्थः—(अस्मे) जब (पुरस्तात्, श्रिये) पूर्वदिशा को आश्रयण किये हुए (दिवः, दुहितुः उषसः) द्युलोक से अपनी दुहिता उषा को लेकर (जायमानः) उदय होता हुआ (केतुः) सूर्य्य (अचेति) जान पड़े, और (तमसः, चित्, अंताः) अंधकार का भले प्रकार अंत=नाश (उपो, अदृश्रन्) दीखने लगे तब (समिधानः, अग्निः, अशोचि) समिधाओं द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करो ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपदेशको ! अन्धकार के निवृत्त होने पर सूर्योदयकाल में अपने सन्ध्या अग्निहोत्रादि नित्य कर्म करो और राजा तथा प्रजा को भी इसी काल में उक्त कर्म करने तथा अन्य आवश्यक कर्मों के करने का उपदेश करो, क्योंकि उपदेश का यही अत्युत्तम समय है, इस समय सबकी बुद्धि उपदेश ग्रहण करने के लिये उद्यत होती है ॥२॥

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे सेनाधीश राजपुरुषो (वां) तुम लोग (नूनं) निश्चय करके (सुहोता) उत्तम होता बनकर (स्तोमैः) यज्ञानुष्ठान (सिषक्ति) करते हुए शिक्षा प्राप्त करो कि (नासत्या, विवक्वान्) तुम कभी असत्य न बोलो (पूर्वीभिः,

पथ्याभिः, अर्वाक्) सनातन मार्गों को अभिमुख करके (स्वर्विदा, वसुमता) ऐश्वर्य्य तथा धन प्राप्त होने वाले (रथेन) मार्ग से (यातं) चलो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा राजपुरुषों को उपदेश करते हैं कि तुम लोग वैदिक यज्ञ करते हुए सत्यवक्ता होकर सदा सनातन सन्मार्गों से चलो जिससे तुम्हारा ऐश्वर्य्य बढ़े और तुम उस ऐश्वर्य्य के स्वामी होकर सत्य-पूर्वक प्रजा का पालन करो ॥३॥

अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥४॥

पदार्थः—(अश्विना) हे सेनापति तथा न्यायाधीश राजपुरुषो ! (नूनं) निश्चय करके (वां) तुम लोग (अवोः) हमारी रक्षा करने वाले हो, (युवाकुः) तुम्हारी कामना करते हुए हम लोग (हुवे) तुम्हें आवाहन करते हैं (यत्) क्योंकि (वां) तुम लोग (माध्वी) मधुविद्या में (सुते) कुशल हो, इसलिये (वां) आप लोग हमको (वसूयुः) धन से सम्पन्न करो (स्थविरासः) परिपक्व आयु वाले (अश्वाः) शीघ्र कार्य्यकर्त्ता आप लोग (अस्मे) हम लोगों को (आ, वहन्तु) भले प्रकार शुभमार्गों में प्रेरें ताकि (सुषुता, मधूनि) संस्कार किये हुए मधुर द्रव्यों को (पिबाथः) ग्रहण करके सुखी हों ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे प्रजाजनो ! तुम उन राजशासन-कर्त्ताओं से इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे राजपुरुषो ! आप हमारे नेता बनकर हमें उत्तम मार्गों पर चलायें ताकि हम सब प्रकार की समृद्धि को प्राप्त हों, हम में कभी रागद्वेष न हो और हम सदा आपकी धर्मपूर्वक आज्ञा का पालन करें, परमात्मा आज्ञा देते हैं कि तुम दोनों मिल-कर चलो, क्योंकि जब राजा तथा प्रजा में प्रेमभाव उत्पन्न होता है तब वह मधुविद्या = रसायन विद्या को प्राप्त होते हैं अर्थात् दोनों का एक लक्ष्य हो जाने से संसार में कल्याण की वृद्धि होती है ॥४॥

अब ऐश्वर्य्यप्राप्ति के लिये शुभ बुद्धि की प्रार्थना करते हैं ॥

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वां अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥५॥

पदार्थः—(शचीपती) कर्मों का स्वामी (देवा) परमात्मदेव (शचीभिः) अपनी दिव्य शक्ति द्वारा (नः) हमको (शक्तं) सामर्थ्य दे ताकि हम (ता) उस (पुरंधीः) शुभ बुद्धि को (आ) भले प्रकार प्राप्त होकर (विश्वाः, वाजे) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के

स्वामी हों, (अश्विना) हे परमात्मदेव, (अविष्टं) अपने से सुरक्षित (मे) मुझे (ऊं) विशेषतया (सातये, वसूयुं, कृतं) ऐश्वर्य्यं तथा धनादि की प्राप्ति में कृतकार्य्यं होने के लिये (प्राचीं. अमृध्रां) सरल और हिंसारहित (धियं) बुद्धि प्रदान करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में जगत्पिता परमात्मदेव से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप हमारी सब प्रकार से रक्षा करते हुए अपनी दिव्य-शक्ति द्वारा हमको सामर्थ्य दें कि हम उस शुभ, सरल तथा निष्कपट बुद्धि को प्राप्त होकर ऐश्वर्य्यं तथा सब प्रकार के धनों को सम्पादन करें, या यों कहो कि हे कर्मों के अधिपति परमात्मन् ! आप हमको कर्मानुष्ठान द्वारा ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे हम साधनसम्पन्न होकर उस बुद्धि को प्राप्त हों जो धन तथा ऐश्वर्य्य के देने वाली है अथवा जिसके सम्पादन करने से ऐश्वर्य्यं मिलता है ॥५॥

अब मनुष्यजन्म के फलचतुष्टय की प्रार्थना करते हैं ॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुंजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥६॥

पदार्थः—(वां, अश्विना) हे सन्तति तथा ऐश्वर्य्यं के दाता परमात्मन् ! (धीषु, अविष्टं) कर्मों में सुरक्षित (नः) हमको (प्रजावत्) प्रजा उत्पन्न करने के लिये (अह्रयं) अमोघ (रेतः) वीर्य्यं प्राप्त (अस्तु) हो (आ) और (नः) हमको (तोके) हमारे पुत्रों को (तनये) उनके पुत्र पौत्रादिकों के लिये (सुरत्नासः तूतुजाना) सुन्दर रत्नों वाला यथेष्ट धन दें ताकि हम (देववीतिं, गमेम) विद्वानों की संगति को प्राप्त हों ॥६॥

भावार्थः—हे भगवन् ! प्रजा उत्पन्न करने का एकमात्र साधन अमोघ वीर्य्यं हमें प्रदान करें ताकि हम इस संसार में सन्ततिरहित न हों और हमको तथा उत्पन्न हुई सन्तान को धन दें ताकि हम सुख से अपना जीवन व्यतीत कर सकें ॥६॥

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥७॥

पदार्थः—(वां) हम लोग (माध्वी) संसार में मधुरता फैलाने वाले (एषः) इस (हव्यं) होम को (सख्ये) मित्र के सन्मुख (पूर्वगत्वा, इव) भेंट के समान (रातः) आपको अर्पण करते हैं जो (निधिः, हितः) आरोग्यता का देने वाला है, (स्यः) आप इसको (मानुषीषु, विक्षु) मनुष्य प्रजाओं में (आ, यातं) सर्वत्र विस्तृत करें,

(अस्मे) हमारी इस भेंट को (अहेळता) शान्त (मनसा) मन से (अर्वाक्, अश्नंता) हमारे सन्मुख स्वीकार करें ।।७।।

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना है कि हे देव ! जिस प्रकार अपने स्वामी वा मित्र के सन्मुख नैवेद्य रक्खा जाता है, इसी प्रकार हम लोग आहुतिरूप हव्य को जो नीरोगता की निधि तथा मनुष्यमात्र का हितकारक है, आप के सन्मुख रखते हैं, आप कृपा करके इसको स्वीकार करें और सब प्राणिवर्ग में तुरन्त पहुंचा दें ताकि विकारों से दूषित न हों ।।७।।

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।

न वायंति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहंति ।।८।।

पदार्थः—(वां) हे देव तथा मनुष्यो ! (भुरणा, समाने) मनुष्यमात्र के लिये समान (एकस्मिन्, योगे) एक योग में (सप्त, स्रवतः) ज्ञानेन्द्रियों के सात प्रवाह (रथः, गात्) उस मार्ग को प्राप्त कराते हैं (ये) जो (परि) सब ओर से परिपूर्ण हैं (वां) तुम दोनों के (धूर्षु) धुराओं में लगे हुए (तरणयः) युवावस्था को प्राप्त (देवयुक्ताः) परमात्मा में युक्त (सुभ्वः) दृढ़ता वाले (वायंति, न) थकित न होने वाले उस मार्ग में (वहंति) चलाते अर्थात् उस मार्ग को प्राप्त कराते हैं ।।८।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे दिव्यशक्तिसम्पन्न विद्वानो तथा साधारण मनुष्यो !तुम दोनों के लिये=परमात्मस्वरूप में जुड़ना समान है अर्थात् देव, साधारण तथा प्राकृतजन सभी उसको प्राप्त हो सकते हैं; वह एक सबका उपास्यदेव है, उसकी प्राप्ति के लिये बड़े दृढ़ सात साधन हैं जिनके संयमद्वारा पुरुष उस योग को प्राप्त हो सकता है, वह सात साधन इस प्रकार हैं—पांच ज्ञानेन्द्रिय जिनसे जीवात्मा बाह्यजगत् के ज्ञान को उपलब्ध करता अर्थात् संसार की रचना देखकर परमात्मसत्ता का अनुमान करता है, मन से मनन करता और सदसद्विवेचन करने वाली बुद्धि से परमात्मा का निश्चय करता है, इनमें श्रोत्रेन्द्रिय, मन तथा बुद्धि, यह तीनों परमात्मप्राप्ति में अन्तरंगसाधन हैं, इसी अभिप्राय से उपनिषदों में वर्णन किया है कि "आत्मा वा रे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" वह परमात्मा श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करने योग्य है, वेदवाक्यों द्वारा परमात्मविषयक सुनने का नाम "श्रवण", सुने हुए अर्थ को युक्तियों द्वारा मन से विचारने का नाम "मनन" और उस मनन किये हुए को निश्चित बुद्धिद्वारा धारण करने का नाम "निदिध्यासन" है, तीन यह और चार अन्य यह सातों ही देव का समीपी बनाते हैं जो सब का उपास्य है ।।८।।

अब परमात्मप्राप्ति के अधिकारियों का वर्णन करते हैं ॥

असश्चतां मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनंति ।
प्र ये बंधुं सूनृताभिस्तिरंते गव्या पृंचंतो अश्व्या मघानि ॥९॥

पदार्थः—(हि) निश्चय करके (ये) जो (राया) धन द्वारा (मघदेयं) हव्यादि पदार्थ (जुनन्ति) नियुक्त करते (असश्चता) किसी विषय में आसक्त न होकर (मघवद्भ्यः) ऋत्विगादिकों को (भूतं) बहुतसा धन दान देते (ये) जो (प्र) प्रसन्नतापूर्वक (बंधुं) अपने बन्धुओं को (सुनृताभिः) सुन्दर वाणियों द्वारा (तिरंते) बढ़ाते, और जो (गव्या) गौयें (मघानि) धन (अश्व्या) घोड़े (पृंचंतः) अर्थियों को देते हैं वह परमात्मप्राप्ति के अधिकारी होते हैं ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो यम नियमादिकों से सम्पन्न अर्थात् किसी विषय में फंसे हुए नहीं, सत्पुरुषों को धनादि पदार्थ देने में उदार, प्रसन्न चित्त से मीठी वाणी बोल कर अपने सम्बन्धियों को प्रसन्न रखते और सत्यभाषण तथा सत्य का प्रचार करते हैं वह उदार पुरुष परमात्मपद के अधिकारी होते हैं ॥९॥

अब मनुष्य का कर्तव्य वर्णन करते हैं ॥

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थः—(नू) निश्चय करके (मे) मेरे (हवं) इस कल्याणदायक वचन को (आ) भले प्रकार (शृणुतं) सुनो (युवाना) हे युवा पुरुषो ! तुम (अश्विनौ) गुरु शिष्य दोनों (इरावत्) हवनयुक्त (वर्तिः) स्थान को (यासिष्टं) प्राप्त होओ (च) और (सूरीन्) तेजस्वी विद्वानों को (धत्तं, रत्नानि) रत्नादि उत्तम पदार्थों को धारण कराओ, ताकि वह (जरतं) वृद्धावस्था को प्राप्त (यूयं) तुमको (स्वस्तिभिः) मंगलवाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें, और तुम प्रार्थना करो कि (नः) हमको सदा शुभ आशीर्वाद दो ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे युवापुरुषो ! तुम्हारा मुख्य कर्तव्य यह है कि तुम गुरुशिष्य दोनों मिलकर यज्ञरूप अग्न्यागारों अथवा कलाकौशलरूप अग्निगृहों में जहां अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रादिकों की विद्या सिखलाई जाती है जाओ और वहां जाकर आध्यात्मिक विद्या के विद्वानों तथा शिल्पविद्याविशारद देवों को प्रसन्न करो अर्थात् उनको विविध प्रकार का धन प्रदान करो ताकि उनकी प्रसन्नता से तुम्हारा सदा के

लिये कल्याण हो, और तुम सदा उनसे नम्रभाव से वर्त्तो ताकि वह तुम्हारा शुभचिन्तन करते रहें ॥१०॥

सप्तम मण्डल में ६७ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य अष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य १—९ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ८, साम्नी त्रिष्टुप् । २, ३, ५, साम्नी निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७, साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब प्रकारान्तर से राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्राजुजुषाणा युवाकोः ।

हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥१॥

पदार्थः—(स्वश्वा, अश्विना) हे उत्तम अश्वों वाले राजपुरुषो ! आप (दस्रा) शत्रुओं के नाश करने वाले (शुभ्रा) तेजस्वी (युवाकोः) बलवान् हैं, (गिरः) हमारी वाणियें आपके लिये (आ) भले प्रकार (जुजुषाणा) सत्कार वाली हों (यातं) आप आकर (नः) हमारे यज्ञ को सुशोभित करें (च) और (हव्यानि) यज्ञीय पदार्थों का जो (प्रतिभृता) हविशेष है उसका (वीतं) उपभोग करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि याज्ञिक लोगो ! तुम अपने न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषों का सन्मान करो, उनको अपने यज्ञों में बुलाओ और मधुरवाणी से उनका सत्कार करते हुए हविशेष से उनको सत्कृत करो ताकि राजा तथा प्रजा में परस्पर प्रेम उत्पन्न होकर देश का कल्याण हो ॥१॥

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।

तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥२॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! (नः) हमारे वचनों को (श्रुतं) सुनो ; (अर्यः) हमारे शत्रुओं की (हवनानि) शक्तियों को (तिरः) तिरस्कार करके (मे, हविषः) हमारे यज्ञों की (वीतये) प्राप्ति के लिये (गंतं) आयें ; (वां) तुम्हारे (अंधांसि, मद्यानि) मद करने वाले राजमद (प्र, अस्थुः, अरं) भले प्रकार दूर हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारा परम कर्तव्य है कि तुम राजमद त्याग कर प्रजा के धार्मिक यज्ञों में सम्मिलित होओ और धार्मिक प्रजा का विरोधी जो शत्रुदल है उसका सदैव

तिरस्कार करते रहो ताकि यज्ञादि धार्मिक कार्यों में विघ्न न हो, अथवा राजा को चाहिये कि वह मादक पदार्थों के अधीन होकर कोई प्रमाद न करे और अपने राजमद को सर्वथा त्याग कर प्रेमभाव से प्रजा के साथ व्यवहार करे, वेदवेत्ता याज्ञिकों को चाहिये कि वह राजपुरुषों को सदैव यह उपदेश करते रहें ॥२॥

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे राजपुरुषो! (वां) तुम्हारा (रथः) यान (सूर्यावसू) जो सूर्य्य तक वेग वाला (इयानः) गतिशील (मनोजवाः) मन के समान शीघ्रगामी (शतोतिः) अनेक प्रकार की रक्षा के साधनों वाला है वह (रजांसि, तिरः) लोक-लोकान्तरों को तिरस्कृत करता हुआ (अस्मभ्यं) हमारे यज्ञ को (प्र, इयर्ति) भले प्रकार प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक पुरुषो! तुम उक्त प्रकार के रथ=यानों वाले राजपुरुषों को अपने यज्ञ में बुलाओ जिनके यान नभोमण्डल में सूर्य्य के साथ स्थिति वाले हों और जिनमें रक्षाविषयक अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लगे हुए हों। यहाँ रथ के अर्थ पहियों वाले भूमिस्थित रथ के नहीं किन्तु "रमन्ते यस्मिन् स रथः"=जिसमें भले प्रकार रमण किया जाय उसका नाम "रथ" है, सो भली भांति रमण आकाश में ही होता है भूमिस्थित रथ में नहीं, और न यह सूर्य्य तक गमन कर सकता है, इत्यादि विशेषणों से यहाँ विमान का कथन स्पष्ट है ॥३॥

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम्।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥४॥

पदार्थः—(वां, देवया) हे दिव्यशक्तिसम्पन्न राजपुरुषो! तुम्हारा (अयं) यह (सोमसुत्) चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर यान (यत्) जब (उ) निश्चय करके (अद्रिः, ऊर्ध्वः) पर्वतों से ऊंचा जाकर (विवक्ति) बोलता है तब हर्षित हुए (वल्गू, विप्रः) बड़े बड़े विद्वान् पुरुष (आ) सत्कार पूर्वक (युवभ्यां) तुम दोनों को (हव्यैः) यज्ञों में (ववृतीत) वरण करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो! जब तुम्हारे यान पर्वतों की चोटियों से भी ऊंचे जाकर गर्जते

और सुन्दरता में चन्द्रमण्डल का मान मर्दन करते हैं तब ऐश्वर्य्य से सम्पन्न तुम लोगों को अपनी रक्षा के लिये बड़े बड़े विद्वान् अपने यज्ञों में आह्वान करते अर्थात् ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजा का सब पण्डित तथा गुणीजन आश्रय लेते हैं और राजा का कर्तव्य है कि वह गुणीजनों का यथायोग्य सत्कार करे ॥४॥

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वंतं युयोतम् ।

यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५॥

पदार्थः—(वां) हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! (नु) निश्चय करके (यत्) जब (चित्रं, भोजनं) विविध प्रकार के अन्न राज्य में (अस्ति) होते हैं तब (वां) तुमको (ओमानं) रक्षायुक्त जानकर (नि) निरन्तर सब लोग (प्रियः, सन्) प्यार करते हुए (दधते) धारण करते हैं, क्योंकि (यः) जो (अत्रये) रक्षा के लिये (महिष्वंतं) बड़ा होता है (ह) प्रसिद्ध है कि उसी से सब लोग (युयोतं) जुड़ते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम अन्न का कोष और विविध प्रकार के धनों को सम्पादन करके पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त होओ, तुम्हारे ऐश्वर्य्य सम्पन्न होने पर सब लोग तुम्हारे शासन में रहते हुए तुम से मेल करेंगे, क्योंकि ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष से सब प्रजाजन मेल रखते तथा प्यार करते हैं, अतएव प्रजापालन करने वाले राजा का मुख्य कर्तव्य है कि वह सब प्रकार के यत्नों से ऐश्वर्य्य लाभ करे ॥५॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।

अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥६॥

पदार्थः—(अश्विना) हे राजपुरुषो ! (वां) तुम्हारे (जुरते) उत्साह के (उत) और (च्यवानाय) देशान्तर में गमन के लिये (प्रतीत्यं) प्रति दिन (हविः, दे) हवि देते हैं (यत्) जिससे (त्यत्) तुम्हारा कल्याण हो, सब प्राणियों को सुख (भूत्) हो और तुम (वर्पः, धत्थ) उस नूतन रूप को धारण करो जिससे (इतः) प्रजा की (अधि, ऊति) सब ओर से रक्षा हो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! तुम्हारे याज्ञिक लोग तुम्हारी उन्नति तथा प्रजा के कल्याणार्थ प्रतिदिन यज्ञ करें जिससे तुम्हारा शुभ हो और तुम वैदिक कर्मों द्वारा बलयुक्त होकर शत्रुओं पर चढ़ाई के लिये सदा सन्नद्ध रहो जिससे प्रजा की रक्षा हो ॥६॥

अब राजा के लिये समुद्रयात्रा का वर्णन करते हैं ॥

उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।

निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥७॥

पदार्थः—(अश्विना) हे राजपुरुषो ! तुम (त्यं) उस (भुज्युं) भोक्ता सम्राट् को (सखायः) मित्रता की दृष्टि से देखो, (दुरेवासः) जो एक स्थान में रहने वाले दुःखरूप वास को (जहुः) त्यागकर (समुद्रे, मध्ये) समुद्र के मध्य में गमन करता (उत) और (यः) जो (युवाकुः) तुम लोगों को (निः) निरन्तर (ईं, अरावा) उत्तम आचरणों की शिक्षा अथवा तुम्हारी रुकावटों को दूर करता हुआ (पर्षत्) तुम्हारी रक्षा करता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा शिक्षा देते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! तुम्हारा और प्रजा का वही सम्राट् सच्चा मित्र हो सकता है जो किसी रुकावट के विना समुद्र में यात्रा करता हुआ देश-देशान्तरों का परिभ्रमण करके अपने राज्य को उन्नत करता, अपनी प्रजा तथा राजकीय सैनिक पुरुषों में धार्मिक भावों का संचार करता और उनके सब दुःख तथा रुकावटों को दूर करके प्रेमपूर्वक वर्तता है। "दुरेवासः, जहुः" के अर्थ दुरवस्था को छोड़ देने के हैं। वास्तव में अपनी दुरवस्था को छोड़ने योग्य वही सम्राट् होता है, जो उद्योगी बनकर समुद्रयात्रा करता हुआ नाना प्रकार के धनोपार्जन करके अपनी प्रजा के दुःख दूर करता है। आलसी राजा मित्रता के योग्य नहीं, क्योंकि वह प्रजा को पीड़ित करके धन लेता और बड़े-बड़े कर लगाकर राजकीय व्यवहारों की सिद्धि करता है ॥७॥

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।

यावघ्न्यामपिन्वतमपो नस्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥८॥

पदार्थः—(अश्विना) हे राजपुरुषो ! (वृकाय) आदित्य के समान (चित्, शक्तं) प्रकाशमान ऐश्वर्य्यसम्पन्न (जसमानाय) सत्कर्मों से विभूषित (श्रुतं) बहुश्रुत (उत) और (शयवे) विज्ञानी राजा की (चित्, शक्ती) ऐश्वर्य्यरूप शक्ति को (यौ) तुम लोग (शचीभिः; हूयमाना) शुभकर्मों तथा प्रतिदिन हवनादि यज्ञों द्वारा बढ़ाओ, और (अघ्न्यां) सर्वदा रक्षा करने योग्य गौयें (अपः) अपने दुग्धों द्वारा (अपिन्वतं) उसके ऐश्वर्य्य को बढ़ायें (न, स्तर्यं) जो वृद्धा न हों ॥८॥

भावार्थः—"वृणक्ति यः स वृकः"=जो अन्धकार का नाशक हो उसका नाम यहां "वृक" है । परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! अविद्यादि अन्धकार के नाशक, विद्यादि गुणों से सम्पन्न और जो हनन करने योग्य नहीं ऐसी "अघ्न्या=सर्वदा रक्षायोग्य गौयें दुग्ध द्वारा जिसके ऐश्वर्य्य को बढ़ाती अर्थात् शरीरों को पुष्ट करती हैं ऐसे राजा के ऐश्वर्य्य को आप लोग सत्कर्मों द्वारा बढ़ायें ॥८॥

अब राजा की वृद्धि के लिये प्रजा की प्रार्थना कथन करते हैं ॥

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।

इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥

पदार्थः—(कारुः) सदाचारी (सुमन्मा) बुद्धिमान् (उषसां) उषाकाल से (अग्रे) पहले (बुधानः) जागने वाला (एषः, स्यः) यह वेदवेत्ता पुरुष (सूक्तैः) वेदों के सूक्तों से (तं) राजा के अर्थ (इषा, वर्धत्) अन्नों द्वारा बढ़ने के लिये प्रार्थना करे (अघ्न्या पयोभिः,) गौओं के दुग्ध द्वारा परमात्मा बढ़ावे, यह प्रार्थना करे और (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचक वाणियों से यह प्रार्थना करें कि (नः) हमारा (सदा) सर्वदा (पात) कल्याण हो ॥९॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे वेदवेत्ता पुरुषो ! तुम प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में उठ कर अपने आचार को पवित्र बनाने का उपाय विचारो और स्वाध्याय करते हुए राजा तथा प्रजा के लिये कल्याण की प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! पुष्कल अन्न वस्त्र तथा दुग्धादि पदार्थों से आप हमारी रक्षा करें । परमात्मा आज्ञा देते हैं कि राजा तथा प्रजा तुम दोनों के ऐसे ही सद्भाव हों जिससे तुम्हारी सदैव वृद्धि हो, और हे वैदिक कर्मों के अनुष्ठानी पुरुषो, तुम सदैव ऐसा ही अनुष्ठान करते रहो ॥९॥

सप्तम मण्डल में ६८ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य १–८ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः–१, ४, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २,७, त्रिष्टुप् । ३ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त में परमात्मा राजपुरुषों को सन्मार्ग का उपदेश करते हैं ॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।

घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! (वां रथः) तुम्हारा रथ (हिरण्ययः) जो ज्योति = प्रकाशवाला (वृषभिः, अश्वैः) बलवान् घोड़ों वाला (घृतवर्तनिः) स्नेही की बत्ती से प्रकाशित (पविभिः, रुचानः) दृढ़ अस्थियों से बना हुआ (इषां, वोळ्हा, वाजिनीवान्) और जो सब प्रकार का ऐश्वर्य्य तथा बलों का देने वाला है उसमें तुम्हारा बैठा हुआ (नृपतिः) आत्मारूप राजा (रोदसी) अव्याहतगति होकर (आ, बद्बोधानः) सब ओर से भली भांति विजय करता हुआ (यातु) गमन करे ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रथ के रूपकालङ्कार से परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारा शरीररूपी रथ जिसमें इन्द्रियरूप बलवान् घोड़े जुते हुए हैं, जो दृढ़ अस्थियों से बना हुआ है, जिसमें वीर्यरूप स्नेह से सनी हुई वर्तिका = बत्ती जल रही है, जो सब प्रकार के ऐश्वर्य्य तथा बलों का बढ़ाने वाला है उसमें स्थित आत्मारूप राजा अव्याहत-गति = विना रोक टोक सर्वत्र गमनशील हो अर्थात् तुम लोग पृथिवी और द्यु लोक के मध्य में सर्वत्र गमन करो, यह हमारा तुम्हारे लिये आदेश है ॥१॥

स पंप्रथानो अभि पंच भूमां त्रिवंधुरो मनसा यांतु युक्तः ।
विशो येन गच्छंथो देवयंतीः कुत्रां चिद्यामंमश्विना दधांना ॥२॥

पदार्थः—(सः) वह रथ जो (पप्रथानः) विस्तृत (पंच, भूमा, अभि, युक्तः) पांच भूतों से बना हुआ, और (त्रिवंधुरः) तीन बन्धनों से बंधा हुआ है (येन) जिससे (विशः) मनुष्य यात्रा करते हुए (देवयंतीः, गच्छथः) दिव्य ज्योति की ओर जाते हैं, (अश्विना) हे राजपुरुषो ! (यामं) ऐसे दिव्य रथ को (मनसा, दधाना) मनसे धारण करते हुए (कुत्र, चित्) सर्वत्र (यातु) विचरो ॥२॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो ! वह शरीररूपी रथ क्षिति, जल, पावक, गगन तथा वायु इन पांच तत्वों = भूतों से बना हुआ जानो और जिसमें सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों के बन्धन लगे हुए हैं अर्थात् इनसे जगह-जगह पर बंधा हुआ है, जिससे यात्रा करते हुए मनुष्य उस दिव्य ज्योति परमात्मा को प्राप्त होते हैं जो मनुष्यजीवन का मुख्य उद्देश्य है। परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे संसार के यात्री लोगो ! तुम इस दिव्य रथ को मन से धारण करते हुए सर्वत्र विचरो अर्थात् मन को दमन करते हुए इस रथ में इन्द्रिय-रूप बड़े बलवान् घोड़े जुते हुए हैं जो मनरूप रासों को दृढ़ता से पकड़े विना कदापि वशीभूत नहीं हो सकते, इसलिये तुम मनरूप रासों को दृढ़ता से पकड़ो अर्थात् मन की चंचल वृत्तियों को स्थिर करो ताकि यह इन्द्रियरूप

घोड़े इस शरीररूपी रथ को विषम मार्ग में ले जाकर किसी गर्त में न गिरायें ॥२॥

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।

वि वां रथो वध्वा३ यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥३॥

पदार्थः—(दस्रा, यशसा) हे शत्रुओं को दमन करने वाले यशस्वी राजपुरुषो! (वां) तुम्हारा (स्वश्वा) बलिष्ठ घोड़ों वाला (रथः) रथ (मधुमंतं, निधिं) मधुररस वाले देशों की निधियों को (पिबाथः) पान करता हुआ (वध्वा) अपने उद्देश्य रूप लक्ष्य में स्थिर (वर्तनिभ्यां) गतिशील पहियों से (वि, बाधते) सब बाधा = रुकावटों को भले प्रकार दूर करता हुआ (दिवः अन्तान्) द्युलोक के अंत तक पहुँच कर (अर्वाक्, यातं) मेरे सन्मुख आवे ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम्हारा इन्द्रिय रूप बलवान् घोड़ों वाला रथ जिसका सारथी बुद्धि वर्णन की गई है, जिसमें मनरूप रासें और पवित्र कर्मों वाला जीवात्मा जिसका रथी है, वह अपने सदाचार से देशदेशान्तरों को विजय करके अर्थात् सम्पूर्ण दुराचारों के त्यागपूर्वक अमृत पान करता हुआ धर्म की अन्तिम सीमा पर पहुंच कर मुझे प्राप्त हो ॥३॥

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।

यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

पदार्थः—(युवोः) हे युवावस्था को प्राप्त राजपुरुषो, (सूरः, दुहिता) शूरवीरों की कन्यायें (परितक्म्यायां) वेदियों के स्वयंवरों में (योषा) स्त्रियें बनकर तुम्हारी (श्रियं) शोभा को (परि, अवृणीत) भले प्रकार बढ़ावें, और (यत्) जो तुम (शचीभिः) अपने शुभकर्मों द्वारा (देवयंतं) क्षात्रधर्मरूप यज्ञ की (अवथः) रक्षा करते हो, इसलिये (वां) तुमको (घ्रंसं, ओमना, वयः) दीप्ति वाला धनादि ऐश्वर्य्य (परि, गात्) सब ओर से प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे क्षात्रधर्म को प्राप्त राजपुरुषो ! तुम ब्रह्मचर्य्यादि नियमों का पालन करते हुए युवावस्था को प्राप्त होकर इस सर्वोपरि क्षात्रधर्म का पालन करो जिससे सुरक्षित हुए सब यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होते हैं, यदि तुम अपने जीवन से क्षात्रधर्म को उच्च मान कर इस की भले प्रकार रक्षा करोगे तो दिव्यगुणसम्पन्न देवियां तुम्हें स्वयंवरों में वरेंगीं और तुम्हें धनरूप ऐश्वर्य्य प्राप्त होगा ॥४॥

यो ह स्य वां रथिरा वस्तं उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥

पदार्थः—(अश्विना) हे शूरवीर राजपुरुषो (वां) तुम (ह) निश्चय करके (अस्मिन्, यज्ञे) इस यज्ञ में (नि) निरन्तर (शंयोः) सुख को (वहतं) प्राप्त होओ (तेन) उस यज्ञ से (नः) हमको (उषसः, व्युष्टौ) प्रातःकाल उद्बोधन करो, और (यः) जो (रथिरा) रथी = आत्मा रथ से (वस्ते) आच्छादित है (स्यः) वह (रथः, युजानः) रथ के साथ जुड़ा हुआ (उस्रा) तेजस्वी बनकर (वर्तिः, परियाति) तुम्हारे मार्गों को सुगम करे ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम क्षात्रधर्मरूप यज्ञ को भले प्रकार पालन करते हुए सुख को प्राप्त होओ अर्थात् अपने उस रथीरूप आत्मा को जिसका वर्णन पीछे कर आये हैं यम नियमादि द्वारा तेजस्वी बनाओ और सब प्रजा को उद्बोधन करो कि वे प्रातः उषाकाल में उठकर अपने कर्तव्य का पालन करें, यदि तुम इस प्रकार संस्कृत आत्मा द्वारा संसार की यात्रा करोगे तो तुम्हारे लिये सब मार्ग सुगम हो जावेंगे जिससे तुम द्युलोक के अन्त तक पहुंच कर मुझे प्राप्त होगे ॥५॥

नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥६॥

पदार्थः—(नरा) हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम (विद्युतं) विद्युत् के आकर्षण से आकर्षित हुई (गौरा, इव) पृथिवी के समान (तृषाणा) आकर्षित हुए (अद्य) आज (अस्माकं) हमारे (सवना, उप, यातं) इस यज्ञ को आकर प्राप्त हो, (हि) क्योंकि (वां) तुमको (पुरुत्रा) कई स्थानों में (मतिभिः, हवन्ते) बुद्धिद्वारा बोधन किया जाता है । (वां) तुम लोग (नि) निश्चय करके (अन्ये) किसी अन्य मार्ग में (देवयन्तः) दीन होकर (मा, यमन्) मत चलो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! जिस प्रकार विद्युदादि शक्ति से आकर्षित हुआ पृथिवीमण्डल सूर्य्य की ओर खिंचा चला आता है इसी प्रकार तुम लोग क्षात्र धर्म रूपी यज्ञ की ओर आकर्षित होकर आओ, यद्यपि तुम्हारी वासनायें तुम्हें दीन बनाने के लिये दूसरी ओर ले जाती हैं परन्तु तुम उनसे सर्वथा पृथक् रह कर इस क्षात्रधर्म रूप यज्ञ में ही दृढ़ रहो, क्योंकि शूरवीर क्षत्रिय ही इस यज्ञ का होता बन सकता है अन्य भीरु तथा कायर पुरुष इस यज्ञ में आहुति देने का अधिकारी नहीं ॥६॥

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयंता ॥७॥

पदार्थः—(अश्विना) हे शूरवीर राजपुरुषो, (समुद्रे, अवविद्धं) समुद्र में गिरे हुए (युवं, भुज्युं) अपने युवा सम्राट् को (अस्रिधानैः, पतत्रिभिः) न डूबने वाले जहाजों (उत्) और (अव्यथिभिः, दंसनाभिः, अश्रमैः) अपने अनथक शारीरिक परिश्रमों द्वारा (अर्णसः) जलप्रवाहों से (ऊहथुः) निकालकर (पारयंता) पार करो ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम्हारी राज्यरूप श्री का भुज्यु = भोक्ता सम्राट् समुद्र में स्थित है अर्थात् 'समुद्द्रवन्त्यस्मादापः स समुद्रः'' = जिसमें भले प्रकार जल भरे हों अथवा जो जलों का धारण करने वाला हो उसको "समुद्र" कहते हैं, इस व्युत्पत्ति से सागर तथा आकाश दोनों अर्थों में समुद्र शब्द प्रयुक्त होता है जिसके अर्थ ये हैं कि हे शूरवीर राजपुरुषो ! तुम्हारे राज्य की श्री जो युवावस्था को प्राप्त अर्थात् चमकती हुई दोनों समुद्रों के मध्य विराजमान है, तुम लोग उसको जलकी यात्रा करने वाले जहाजों द्वारा अथवा आकाश की यात्रा करने वाले विमानों द्वारा निकालो ॥७॥

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थः—(युवाना, अश्विनौ) हे युवावस्था को प्राप्त राजपुरुषो ! (नु) निश्चय करके (मे) मेरे (हवं) इस उपदेश को (आ) भली-भांति (शृणुतं) सुनो (इरावत्, वर्तिः, यासिष्टं) तुम लोग ऐश्वर्य्यशाली देशों के मार्गों को जाओ, और वहां (सूरीन्, जरतं) शूरवीरों को उपलब्ध करके (रत्नानि, धत्तं) रत्नों को धारण करो (च) और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यूयं) आप (नः) हमको (स्वस्तिभिः) कल्याणदायक उपदेशों से (सदा) सदैव (पात) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे युवा शूरवीर योद्धाओ ! तुम धनधान्य से पूरित ऐश्वर्य्यशाली देशों की ओर जाओ और वहां के शूरवीरों को विजय करके विविध प्रकार के धनों को लाभ करो, और विजय के साथ ही परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप अपने सदुपदेशों

से हमें सदा पवित्र करें ताकि हम से कोई अनिष्ट कर्म न हो और आप हमारी इस विजय में सदा सहायक हों ॥८॥

सप्तम मण्डल में ६९ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य–१–७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः–१, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ७ विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब ज्ञानी तथा विज्ञानियों द्वारा यज्ञों का सुशोभित होना कथन करते हैं ॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।

अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१॥

पदार्थः—(विश्ववारा, अश्विना) हे वरणीय विद्वज्जनो ! (आगतं) आप आकर (नः) हमारे यज्ञ को (आ) भले प्रकार सुशोभित करें (वां) तुम्हारे लिये (तत्) उस (पृथिव्यां) पृथिवी में (शुनपृष्ठः) सुखपूर्वक बैठने के लिये (स्थानं) स्थान = वेदि (अवाची) बनाई गई है (यत्) जो (योनिं, न) केवल बैठने को ही नहीं किन्तु (ध्रुवसे, सेदथुः) दृढ़ता में स्थिर करने वाली है आप लोग (प्र) हर्षपूर्वक (वाजी, अश्वः, न) बलवान् अश्व के समान (अस्थात्) शीघ्रता से आयें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक लोगो ! तुम अपने यज्ञों में ज्ञानी और विज्ञानी दोनों प्रकार के विद्वानों को सत्कारपूर्वक बुलाकर यज्ञवेदि पर बिठाओ और उनसे नाना प्रकार के सदुपदेश ग्रहण करो, क्योंकि यह वेदि केवल बैठने के लिये ही नहीं किन्तु यज्ञकर्मों की दृढ़ता में स्थिर कराने वाली है ॥१॥

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।

यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥२॥

पदार्थः—(सुयुजा, युजानः) ज्ञानादि यज्ञों के साथ भली भांति जुड़े हुए याज्ञिक लोगो, (वां) तुम (सा, सुमतिः) उस उत्तम बुद्धि द्वारा (चनिष्ठा) अनुष्ठानी बनकर (सिषक्ति) इस यज्ञ को सिंचन करो (यः) जो (मनुषः) मनुष्य का (घर्मः) यज्ञ सम्बन्धी स्वेद है वह (दुरोणे) यज्ञगृह में (अतापि) तपा हुआ (वां) तुम्हारे (समुद्रान्, सरितः) समुद्र को नदियों के समान तुम्हारी आशाओं को (पिपर्ति) पूर्ण करता है (न, चित्, एतग्वा) अन्यथा कभी नहीं ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक लोगो ! तुम उत्तम बुद्धि द्वारा अनुष्ठानी बनकर यज्ञ का सेवन करो, क्योंकि तुम्हारे तप

से उत्पन्न हुआ स्वेद मानो सरिताओं का रूप धारण करके तुम्हारे मनोरथ-रूपी समुद्र को परिपूर्ण करता है अर्थात् जब तक पुरुष पूर्ण तपस्वी बनकर अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उद्यत नहीं होता तब तक उस लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती, इसलिए आप लोग अपने वैदिक लक्ष्यों की पूर्ति तपस्वी बनकर ही कर सकते हो अन्यथा नहीं ॥२॥

यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।

नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे ज्ञानी विज्ञानी विद्वानो, (यानि, स्थानानि, दधाथे) जिन जिन स्थानों को आप लोग धारण करते हैं वह (दिवः) द्युलोक सम्बन्धी हों (यह्वीषु, ओषधीषु) चाहे अन्न तथा ओषधियों विषयक हों (विक्षु) चाहे प्रजासम्बन्धी हों (नि) निश्चय करके (पर्वतस्य, मूर्धनि) पर्वतों की चोटियों पर हों, इन सब स्थानों में (सदन्ता) स्थिर हुए आप (दाशुषे, जनाय) दानी याज्ञिक लोगों के (इषं) ऐश्वर्य को (वहन्ता) बढ़ाओ ॥३॥

भावार्थः—ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानों के लिए परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जिन-जिन स्थानों में प्रजाजन निवास करते हैं उन स्थानों में जाकर प्रजा के लिए ऐश्वर्य की वृद्धि करो, नानाप्रकार की ओषधियों के तत्त्वों को जानकर उनका प्रजा में, प्रजाओं को संगठन की नीतिविद्या अथवा उच्च प्रदेशों के ऊपर स्थिर होने के लिए विमानविद्या की शिक्षा दो, विद्याओं को उपलब्ध करते-कराते हुए अपने याज्ञिकों का ऐश्वर्य बढ़ाओ ॥३॥

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।

पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥४॥

पदार्थः—(चनिष्टं, देवा) हे योग्य विद्वान् पुरुषो ! (ओषधीषु, अप्सु) ओषधियों तथा जलों में (ऋषीणां) ऋषियों के तात्पर्य को (यत्) जो (अश्नवैथे) जानते हो वह (नि) निश्चय करके हमारे प्रति कहो, क्योंकि आप (योग्याः) सब प्रकार से योग्य हैं (अस्मे) हमारे लिए (पुरूणि, रत्ना) अनेक प्रकार के रत्न (दधतौ) धारण कराओ, जिनको (अनु, पूर्वाणि, युगानि) पूर्वकालिक सब विद्वानों ने (चख्यथुः) कथन किया है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक लोगो ! तुम उन ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानों से यह प्रार्थना करो कि आप सब प्रकार की

विद्याओं में कुशल हो, इसलिए ओषधियों तथा जलीय विद्या सम्बन्धी ऋषियों के अभिप्राय को हमारे प्रति कहो, और जो प्राचीन रसायन विद्यावेत्ता विद्वानों ने रत्नादि निधियों को निकाला है उनका ज्ञान भी हमें कराओ अर्थात् पदार्थ विद्या के जानने वाले ऋषियों के तात्पर्य को समझाकर हमें निधिपति बनाओ ॥४॥

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥५॥

पदार्थः—(शुश्रुवांसा, अश्विना) हे सुशिक्षित विद्वानो ! (ऋषीणां, पुरूणि, अभि, ब्रह्माणि) ऋषियों सम्बन्धी अनेक वैदिक ज्ञानों को हमारे प्रति (आ) भले प्रकार (चक्षाथे) कथन करो (वां) तुम्हारी (चनिष्ठा, सुमतिः) अनुष्ठानिक उत्तम बुद्धि (अस्मे, जनाय) हम लोगों के लिए (अस्तु) शुभ हो, और (वरं, प्रति) हमारे श्रेष्ठ यज्ञस्थान को आप (प्र, यातं) गमन करें ॥५॥

भावार्थः—हे याज्ञिक लोगो ! तुम उन वेदविद्यापारग विद्वानों से यह प्रार्थना करो कि आप उन पूर्वकालिक मंत्रद्रष्टा ऋषियों से उपलब्ध किये ज्ञान का हमें उपदेश करें जिससे हमारी बुद्धि निष्ठायुक्त होकर वेद के गूढ भावों को ग्रहण करने योग्य हो, कृपा करके आप हमारे यज्ञीय पवित्र स्थान को सुशोभित करें ताकि हम आपसे वेदविषयक ज्ञान श्रवण करके पवित्र भावों वाले हों ॥५॥

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥६॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो, (समर्यः) ईश्वर की उपासनायुक्त (हविष्मान्) हविवाला (वां) तुम्हारा (यः) जो (यज्ञः) यज्ञ, जिसमें (कृतब्रह्मा) वेदवेत्ता ब्रह्मा (भवति) बनाया गया है । इस यज्ञ में (युवभ्यां) तुम्हारे द्वारा (इमा) इन (ब्रह्माणि, ऋच्यन्ते) वेदों का प्रचार (आ) भले प्रकार किया जायेगा इसलिए (वरं, वसिष्ठं) अतिश्रेष्ठ इस यज्ञ को (उप, प्रयातं) आप आकर सुशोभित करें ॥६॥

भावार्थः—हे ब्रह्मप्रतिपादक वेद के प्रचारक विद्वानो ! आप इस श्रेष्ठ यज्ञ में आकर इसकी शोभा को बढ़ावें, जो परमात्मा की उपासना के निमित्त किया गया है, हे आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचारक विज्ञानी देवो !

आप हमको इस पवित्र यज्ञ में परमात्मविषयक उपदेश करें जो मनुष्यजीवन का एकमात्र लक्ष्य है ॥६॥

अब परमात्मस्तुति का उपदेश करते हैं ॥

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(वृषणा) हे विद्यादि की कामनाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) ज्ञानी तथा विज्ञानी विद्वानो ! (इयं, मनीषा) यह बुद्धि (इयं, गीः) यह वाणी (इमां, सुवृक्तिं) इन परमात्म स्तुतियों को (जुषेथां) आप सेवन करें (युवयूनि) जो तुम से सम्बन्ध रखती हैं और (इमा, ब्रह्माणि) यह ब्रह्मप्रतिपादक स्तोत्र (अग्मन्) तुम्हें प्राप्त हों, और तुम सदैव यह प्रार्थना करो कि (नः) हमको (यूयं) आप (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (पात) पवित्र करें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो! तुम इस वेदवाणी का सदा सेवन करो जो विद्या की बुद्धि द्वारा सब कामनाओं के पूर्ण करने वाली है, और तुम सदैव वेद के उन स्तोत्रों का पाठ करो जिनमें परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना का वर्णन किया गया है जिससे तुम्हारा जीवन पवित्र होकर परमात्मप्राप्ति के योग्य हो ॥७॥

सप्तम मण्डल में ७०वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य—१-६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त में ब्राह्ममुहूर्त्तकाल में उपदेश श्रवण करने का विधान करते हैं ॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥१॥

पदार्थः—(अश्वामघा, गोमघा) हे अश्व तथा गोरूप धन सम्पन्न (वां) अध्यापक तथा उपदेशको ! हम आप से (हुवेम) प्रार्थना करते हैं कि आप (दिवा, नक्तं) दिन रात्रि (अस्मत्) हमसे (शरुं) हिंसारूप पाप को (युयोतं)दूर करें। (नक्) और जिस समय (कृष्णीः) रात्रि (स्वसुः, उषसः) अपनी उषारूपी पुत्री का (अप,

जिहीते) त्याग करके (अरुषाय, पंथां, रिणक्ति) सूर्य के लिए मार्ग देती है उस समय उपदेश करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे प्रजाजनो ! तुम उन ऐश्वर्यसम्पन्न अध्यापक तथा उपदेशकों से यह प्रार्थना करो कि आप अपने सदुपदेशों द्वारा हमको पवित्र करते हुए हिंसारूप पापपंक को हमसे सदैव के लिए छुड़ा कर शुद्ध करें, और हे विद्वानो ! आप हम लोगों को उषाकाल = ब्राह्ममुहूर्त्त में उपदेश करें जिस समय प्रकृति का सम्पूर्ण सौन्दर्य अपनी नूतन अवस्था को धारण करता और जिस समय पक्षीगण मधुर स्वर से अपने-अपने भावों द्वारा जगन्नियन्ता जगदीश के भावों को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥२॥

पदार्थः—(अश्विना) हे विद्वज्जनो ! (रथेन, वामं, उपायातं) अपने आभा वाले शीघ्रगामी यानों द्वारा हमें प्राप्त होकर (मर्त्याय, दाशुषे) हम यजमानों की मनोकामना (वहंता) पूर्ण करते हुए (अस्मत्) हमसे (अनिरां, अमीवां) दरिद्रता तथा सब प्रकार के रोगों को (युयुतं) पृथक् करो और (माध्वी) हे मधुरभाषी विद्वानो ! (नक्तं, दिवा) रात्री दिन (नः) हमारी (त्रासीथां) सब ओर से रक्षा करो ॥२॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! तुम उन विद्वानों से यह प्रार्थना करो कि हे भगवन्, आप हमें प्राप्त होकर हमको वह उपाय बतलावें जिससे हमारी दरिद्रता दूर हो, हमारा शरीर नीरोग रहे, हम मधुरभाषी हों और ईर्ष्या द्वेष से सर्वथा पृथक् रहें अर्थात् अपनी चिकित्सारूप विद्या द्वारा हमको नीरोग करके ऐसे साधन बतलावें जिससे हम रोगी कभी न हों, और पदार्थ विद्या के उपदेश द्वारा हमें कला कौशलरूप ज्ञान का उपदेश करें जिससे हमारी दरिद्रता दूर हो, हम ऐश्वर्यशाली हों और साथ ही हमें आत्मज्ञान का भी उपदेश करें जिससे हमारा आत्मा पवित्रभावों में परिणत होकर आपकी आज्ञा का सदैव पालन करने वाला हो ॥२॥

आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे विद्वानो ! आप (ऋतयुग्भिः, अश्वैः) दो प्रकार के ज्ञानों से हमको (आ) भले प्रकार (वसुमंतं, वहेथां) ऐश्वर्यसम्पन्न करें, ताकि हम (सुम्नावयः) सुखपूर्वक (वृषणः वर्तयन्तु) आनन्द को अनुभव कर सकें (वां, रथं) आप अपने रथ=यानों को (अवमस्यां, व्युष्टौ) विघ्नरहित मार्गों में चलायें, और वह सुन्दर रथ (स्यूमगभस्ति) ऐश्वर्य की रासों वाले हों ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मा ! आप हमारे उपदेशकों को ऐश्वर्य की रासों वाले रथ प्रदान करें अर्थात् वह सब प्रकार से सम्पत्तिसम्पन्न हों दरिद्र न हों ताकि वह हमको ऐहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के सुख का उपदेश करें अर्थात् हम उनसे अभ्युदय तथा निःश्रेयस दोनों प्रकार के ज्ञान प्राप्त करके आनन्द अनुभव कर सकें ॥३॥

यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४॥

पदार्थः—(अश्विना) हे सत्यवादी विद्वानो ! (वां) आप (नः) हमको (एना) उस मार्ग द्वारा (उपयातं) प्राप्त हों, (यः) जो (विश्वप्स्न्यः) परमात्मा ने (जिगाति) कथन किया है । (नृपती) हे मनुष्यों के पति विद्वानो, (वां) आपका (यत्) जो (रथः) रथ (वोळ्हा, आ) तुम्हें भले प्रकार लाने वाला है, वह (त्रिबन्धुरः) तीन बन्धनोंवाला (वसुमान्) ऐश्वर्यवाला, और (उस्रयामा) आकाशमार्ग में चलनेवाला (अस्तु) हो ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे विद्वज्जनो ! आप परमात्मा के कथन किये हुए मार्ग द्वारा हमें प्राप्त हों अर्थात् परमात्मा ने उपदेशकों के लिए जो कर्तव्य कथन किया है उसका आप पालन करें, या यों कहो कि आप हमें परमात्मपरायण करके हमारे जीवन को उच्च बनावें और हमें वेदों का उपदेश सुनावें जो परमात्मा ने हमारे लिए प्रदान किया है ॥४॥

युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (युवं) तुम्हारा (जरसः, अमुमुक्तं) जीर्णता से रहित (च्यवानं) ज्ञान (नि) निरन्तर (पेदवे) हमारी रक्षा के लिए हो, और (निः)

निस्सन्देह (अश्वं, आशु, ऊहथुः) राष्ट्र को शीघ्र प्राप्त कराये (अंधसः तमसः) अज्ञानरूप तम से (अत्रिं) अरक्षित राष्ट्र को (जाहुषं) निकाले और उसके (शिथिरे) शिथिल होने पर (अंतः, धातं) आत्मा बनकर धारण करे ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आपका जीर्णता से रहित नित नूतन ज्ञान हमारी सब ओर से रक्षा करे और वह पवित्र ज्ञान हमें राष्ट्र=ऐश्वर्य प्राप्त कराये, और आपके ज्ञान द्वारा हम अपने गिरे हुए राष्ट्र को भी पुनर्जीवित करें ॥५॥

अब सब प्रजाजन, अध्यापक तथा उपदेशक मिलकर परमात्मा की इस प्रकार प्रार्थना, उपासना करो ॥

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(वृषणा) हे विद्यादि की कामनाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशको, (इयं, मनीषा) यह बुद्धि (इयं, गीः) यह वाणी (इमां, सुवृक्ति) इन परमात्मस्तुतियों को (जुषेथां) आप सेवन करें, (युवयूनि) जो तुमसे सम्बन्ध रखती हैं, और (इमा, ब्रह्माणि) यह ब्रह्मप्रतिपादक स्तोत्र (अग्मन्) तुम्हें प्राप्त हों, और तुम सदैव यह प्रार्थना करो कि (नः) हमको (यूयं) आप (सदा) सर्वदा (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—हे श्रोताजन तथा उपदेशको ! तुम मिलकर वैदिक स्तोत्रों से परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना करते हुए यह वर मांगो कि हे जगदीश्वर ! हम वेदों के अनुसार अपना आचरण बनावें जिससे हमारा जीवन पवित्र हो ॥६॥

सप्तम मण्डल में ७१वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वासप्ततितमस्य सूक्तस्य—१-५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब इस सूक्त में यज्ञों का वर्णन करते हुए यजमानों की प्रार्थना कथन करते हैं ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥१॥

पदार्थः—(नासत्या) सत्यवादी अध्यापक तथा उपदेशक, (गोमता) प्रकाश-वाले (अश्ववता) शीघ्रगामी (पुरुश्चन्द्रेण) अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करनेवाले (रथेन) रथ=यान द्वारा (आयातं) हमारे यज्ञ में आयें, और (श्रिया, तन्वा) सुशोभित शरीर से (शुभाना) शोभा को प्राप्त हुए (वां) उनको (अभि) सब ओर से (स्पार्हया) प्रेमयुक्त (विश्वाः) सम्पूर्ण (नियुतः) स्तुतियें (सचंते) संगत हों ॥१॥

भावार्थः—हे यजमानो ! आप लोग सदैव मन, वाणी तथा शरीर से ऐसे यत्नवान् हों जिससे तुम्हारे यज्ञों को सत्यवादी विद्वान् आकर सुशोभित करें और आप लोग सब ओर से उनकी स्तुति करते हुए अपने आचरणों को पवित्र बनायें क्योंकि सत्यवादी विद्वानों की संगति से ही पुरुषों में उच्चभाव उत्पन्न होते हैं, अन्यथा नहीं ॥१॥

आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बंधुरुत तस्य वित्तम् ॥२॥

पदार्थः—(देवेभिः) दिव्यशक्तिसम्पन्न (नासत्या) सत्यवादी विद्वान् (रथेन) यानद्वारा (नः) हमको (आ) भले प्रकार (उपयातं) प्राप्त हों (उत) और (अर्वाक्, सजोषसा) अपनी दिव्यवाणी से (नः) हमें (तस्य, वित्तं) उस ज्ञानरूप धन को प्रदान करें (हि) निश्चय करके (युवोः) तुम्हारी (सख्या) मैत्री (पित्र्याणि, बन्धुः) पिता तथा बन्धु के (समानः) समान हो ॥२॥

भावार्थः—हे यजमानो ! तुम सत्यवादी विद्वानों का भले प्रकार सत्कार करो और उनको पिता तथा बन्धु की भांति मान कर उनसे ब्रह्म-विद्यारूप धन का लाभ करो जो तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है अर्थात् तुम उन अध्यापक तथा उपदेशकों की सेवा में प्रेमपूर्वक प्रवृत्त रहो, जिससे वह प्रसन्न हुए तुम्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें ॥२॥

अब उन सत्यवादी विद्वानों का उपदेश कथन करते हैं ॥

उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥३॥

पदार्थः—(अश्विनोः) अध्यापक तथा उपदेशक (अबुध्रन्) बोधन करते हैं कि (जामि) हे सम्बन्धिजनो ! तुम लोग (उषसः) उषाकाल में (ब्रह्माणि, देवीः) वेद की दिव्यवाणी का (आविवासन्) अभ्यास करो (उत्) और (इमे) इन (स्तोमासः) वेद के स्तोत्रों को (अच्छ) भली-भांति (रोदसी) द्युलोक तथा पृथिवी लोक के मध्य

(धिष्ण्ये) फैलाओ (च) और (विप्रः) मेधावी पुरुष (नासत्या, विवक्ति) सत्यवादी विद्वानों को उपदेश करें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वज्जनो! तुम लोग ब्रह्म-मुहूर्त्त में वेद की पवित्र वाणी का अभ्यास करते हुए वैदिक स्तोत्रों का उच्चस्वर से पाठ करो और वेद के ज्ञाता पुरुषों को उचित है कि वह विद्वानों को इस वेदवाणी का उपदेश करें ताकि अज्ञान का नाश होकर ज्ञान की वृद्धि हो ॥३॥

अब अध्यापक तथा उपदेशकों के लिये उपदेश का काल कथन करते हैं ॥

वि चेदुच्छंत्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्बृहदग्नयः समिधा जरंते ॥४॥

पदार्थः—(अश्विनौ) हे अध्यापक तथा उपदेशको (चेत्) जब (वि) विशेष-तया (सविता, देवः) परमात्मदेव (भानुं) सूर्य्य को (ऊर्ध्वं, अश्रेत्) ऊपर को आश्रय = उदय करता (उच्छंति, उषसः) जब उषाकाल का विकाश होता, जब (बृहत्, अग्नयः) बड़ी अग्नि (समिधा, जरंते) समिधाओं द्वारा प्रज्वलित की जाती, और जब (कारवः) स्तोता लोग (ब्रह्माणि) वेद को (प्र, भरन्ते) भले प्रकार धारण करते हैं, उस काल में (वां) आप लोग ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मदेव उपदेश करते हैं कि हे विद्वान् उपदेशको! आपका कर्तव्य यह है कि आप प्रातः सूर्य्योदयकाल में जब प्रजाजन अग्निहोत्र करते तथा स्तोता लोग वेद का पाठ करते हैं उस काल में अज्ञान का मार्जन करके जिज्ञासुओं को सत्योपदेश करो जिससे वह विद्याध्ययन तथा वेदोक्त कर्तव्यपालन में सदा तत्पर रहें, इस मन्त्र में परमात्मा ने ब्रह्मविद्याध्ययन का सूर्योदय काल ही बतलाया है अर्थात् यह उपदेश किया है कि प्रजाजन उषाकाल में निद्रा से निवृत्त होकर शरीर को शुद्ध करके सन्ध्या अग्निहोत्र के पश्चात् ब्रह्मविद्या के अध्ययन तथा उपदेश-श्रवण में तत्पर हों ॥४॥

अब विद्वान् उपदेशकों द्वारा मनुष्यमात्र का कल्याण कथन करते हैं ॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।

आ विश्वतः पांचजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो! तुम लोग (आ, पश्चातात्)

भले प्रकार पश्चिम दिशा से (आ, पुरस्तात्) पूर्वदिशा से (अधरात्) नीचे की ओर से (उदक्तात्) ऊपर की ओर से (आ, विश्वतः) सब ओर से (पांचजन्येन) पाँचों प्रकार के मनुष्यों का (राया) ऐश्वर्य्य वढ़ाओ, और (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको! आप लोग पाँचों प्रकार के मनुष्यों को (आ) भले प्रकार (यातं) प्राप्त होकर सब यह प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् ! (यूयं) आप (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) मंगलरूप वाणियों द्वारा (नः) हमारे ऐश्वर्य्य को (पात) रक्षा करें ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र में जो "पंचजना" पद आया है वह वैदिक सिद्धान्तानुसार पांच प्रकार के मनुष्यों को वर्णन करता है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवें दस्यु जिनको निषाद भी कहते हैं, वास्तव में वर्ण ही हैं परन्तु मनुष्यमात्र का कल्याण अभिप्रेत होने के कारण पांचवें दस्युओं को भी सम्मिलित करके परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे सत्यवादी विद्वानो ! आप लोग सब ओर से मनुष्यमात्र को प्राप्त होकर वैदिक धर्म का उपदेश करो जिससे सब प्रजाजन सुकर्मों में प्रवृत्त होकर ऐश्वर्य्यशाली हों ॥५॥

सप्तम मण्डल में ७२ वाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य—१–५ वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट्त्रिष्टुप् । २–४ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब यज्ञविद्या जानने वाले विद्वानों से याज्ञिक बनने के
लिये प्रार्थना कथन करते हैं ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजाऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१॥

पदार्थः—(अश्विना) हे यज्ञविद्या जानने वाले विद्वानो ! आप लोग हमको (अस्य) इस संसार के (तमसः, पारं) अज्ञानरूप तम से पार को (अतारिष्म) तरायें, (प्रति, स्तोमं, देवयंतः) इस ब्रह्मयज्ञ की कामना करते हुए हम लोग (दधानाः) उत्तम गुणों को धारण करें, (गीः) हमारी वाणी पवित्र हो, और हम (पुरुदंसा) कर्मकाण्डी, (पुरुतमा) उत्तम गुणों वाले, (पुराजा) प्राचीन, और (अमर्त्या) मृत्युराहित्यादि सद्गुणों को धारण करते हुए (हवते) यज्ञकर्म में प्रवृत्त रहें ॥१॥

भावार्थः—हे यजमानो ! तुम लोग यज्ञविद्या जानने वाले विद्वानों से याज्ञिक बनने के लिये जिज्ञासा करो और उनसे यह प्रार्थना करो कि आप

हमको याज्ञिक बनायें जिससे हम इस अविद्यारूप अज्ञान से निवृत्त होकर ज्ञानमार्ग पर चलें, हम उत्तम गुणों के धारण करने वाले हों और अन्ततः हमको मुक्ति प्राप्त हो, क्योंकि यज्ञ ही मुक्ति का साधन है और याज्ञिक पुरुष ही चिरायु होकर अमृत पद को प्राप्त होते हैं, या यों कहो कि जो पुरुष कर्म तथा ज्ञान दोनों साधनों से जिज्ञासा करता है वही अमृत रूप पद का अधिकारी होता है, इस लिये मुक्ति की इच्छावाले पुरुषों को सदा ही यज्ञ का अनुष्ठान करना श्रेयस्कर है ॥१॥

न्युं प्रियो मनुंषः सादि होता नासत्या यो यजंते वंदते च ।

अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥२॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो ! (यः) जो (होता) जिज्ञासु (यजते) यज्ञ करता (च) और (वंदते) वन्दना करता है वह (प्रियः) परमात्मा का प्रिय (मनुषः) पुरुष (नि, सादि) उसी में स्थित होकर (अश्नीतं, मध्वं) मधुविद्या का रस पान करता अर्थात् मधुविद्या का जानने वाला होता है । (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! वह पुरुष (विदथेषु) यज्ञों में (प्रयस्वान्) अन्नादि पदार्थों का पान करके (वां) तुम्हारा (वोचे) आह्वान करता (आ) और (उपाके) तुम्हारे समीप स्थिर होकर ब्रह्मविद्या का लाभ करता है ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष यज्ञादि कर्म करता हुआ परमात्मा की उपासना में प्रवृत्त रहता है वह परमात्मा का प्रिय पुरुष परमात्माज्ञापालन करता हुआ मधुविद्या का रसपान करने वाला होता है । मधुविद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन "बृहदारण्यकोपनिषद्" में किया गया है, विशेष जानने वाले वहां देखलें, यहां विस्तार भय से उद्धृत नहीं किया । वही पुरुष ऐश्वर्य्यशाली होकर यज्ञों में दानदेनेवाला होता, वही विद्वानों का सत्कार करने वाला होता और वही ब्रह्मविद्या का अधिकारी होता है, इससे सिद्ध है कि याज्ञिक पुरुष ही ब्रह्म का समीपी होता है अन्य नहीं ॥२॥

अब परमात्मा यज्ञकर्त्ता पुरुष को वेदाध्ययन का विधान करते हैं ॥

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥३॥

पदार्थः—(उराणाः) हे वेदवाणियों के वक्ता याज्ञिक लोगो तुम (इमां, सुवृक्ति) इस सुन्दर वाणी को (जुषेथां) सेवन करते हुए (यज्ञं, पथां, अहेम) यज्ञ के मार्ग को बढ़ाओ, और (वसिष्ठः) सर्वोत्तम गुणों वाला (श्रुष्टीवेव, प्रेषितो) सर्वत्र

व्यापक और (वृषणा) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला परमात्मा (स्तोमैः, जरमाणः) जो वेदवाणियों द्वारा वर्णन किया जाता है वह (वां, प्रति) तुम्हारे प्रति (अबोधि) बोधन करे ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र का भाव स्पष्ट है अर्थात् यज्ञनिधि परमात्मा याज्ञिक लोगों को उपदेश करते हैं कि तुम लोग वेदों का अध्ययन करते हुए यज्ञ की वृद्धि करो अर्थात् यज्ञ के सूक्ष्मांशों को वेद के अभ्यास द्वारा जानकर यज्ञविषयक उन्नति में प्रवृत्त होओ, और सर्वगुणसम्पन्न तथा सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले परमात्मा की उपासना करते हुए प्रार्थना करो कि वह हमारी इस कामना को पूर्ण करे ॥३॥

अब दुष्टों से रक्षार्थ उपदेश करते हैं ॥

उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥४॥

पदार्थः—(रक्षोहणा) हे राक्षसों के हन्ता (वीळुपाणी) दृढ़ भुजाओं वाले विद्वानो ! (त्या) आप लोग (संभृता) उत्तम गुण सम्पन्न (नः) हमारी (विशं) प्रजा को (गमतः) प्राप्त होकर (वह्नी) प्रज्वलित अग्नि में (उप) भले प्रकार (अन्धांसि, अग्मत) उत्तमोत्तम हवि प्रदान करते हुए (मा, मत्सराणि) मदकारक द्रव्यों से हमारी रक्षा करें (नः) हमारी (सं, मर्धिष्टं) किसी प्रकार भी हिंसा न करें (शिवेन) कल्याण-रूप से (आगतं) हम को सदा प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—हे शूरवीर विद्वानो आप लोग धार्मिक प्रजा को प्राप्त होकर उत्तमोत्तम पदार्थों से नित्य यज्ञ कराओ, प्रजा को सदाचारी बनाओ, मदकारक द्रव्यों से उन्हें बचाओ, उन में अहिंसा का उपदेश करो और दुष्ट राक्षसों से सदा उनकी रक्षा करते रहो जिससे उनके यज्ञादि कर्मों में विघ्न न हो अर्थात् आप लोग प्रजा को सदा ही कल्याणरूप से प्राप्त हों ॥४॥

अब परमात्मा समष्टिरूप से उन्नति करने का उपदेश करते हैं ॥

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी अध्यापक तथा उपदेशको ! तुम लोग (आ, पश्चातात्) भले प्रकार पश्चिम दिशा से (आ, पुरस्तात्) पूर्वदिशा से (अधरात्) नीचे की ओर से (उदक्तात्) ऊपर की ओर से (आ, विश्वतः) सब ओर से (पांच-जन्येन) पांचों प्रकार के मनुष्यों का (राया) ऐश्वर्य्य बढ़ाओ और (अश्विना) हे

अध्यापक तथा उपदेशको ! आप लोग पांचों प्रकार के मनुष्यों को (आ) भले प्रकार (यात) प्राप्त होकर सब प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! (यूयं) आप (सदा) सदा (स्वस्तिभिः) मंगलरूप वाणियों द्वारा (नः) हमको (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—मन्त्र में "पंचजना" शब्द से ब्राह्मणादि चारों वर्ण और पांचवें दस्युओं से तात्पर्य है, जैसा कि पीछे लिख आये हैं । परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे अध्यापक तथा उपदेशको ! आप लोग सब ओर से सम्पूर्ण प्रजा को प्राप्त होकर अपने उपदेशों द्वारा मनुष्य मात्र की रक्षा करो, और सब यजमान मिलकर कल्याणरूप वेदवाणियों से यह प्रार्थना करो कि हमारे उपदेशक हमको अपने सदुपदेशों से सदा पवित्र करें ॥५॥

सप्तम मण्डल में ७३ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य चतुःसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती ॥ मध्यमः स्वरः ॥

अब परमात्मा विद्युत् तथा अग्निविद्यावेत्ता उपदेशकों
का सर्वत्र प्रचार करना कथन करते हैं ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

पदार्थः—(शचीवसू) विद्युत् तथा अग्निविद्या में कुशल (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशको (दिविष्टय) स्वर्ग की कामना वाले (उस्रा) यजमान (वां) तुम्हारा (हवंते) आवाहन करते हैं, तुम (इमाः) इस विद्या का (वां) उनको उपदेश करो (अ) और (हि) निश्चय करके (गच्छथः) गमन करते हुए (विशं विशं) प्रत्येक प्रजा को विद्वान् बनाओ जिससे (अयं) यह (अवसे) अपनी रक्षा करें, और (अह्वे) तुम्हारा आवाहन करते रहें ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम सुख की इच्छा वाले यजमानों को प्राप्त होकर उनको विद्युत् तथा अग्निविद्या का उपदेश करो जिससे वह कला कौशल बनाने में प्रवीण हों और प्रत्येक स्थान में घूम-घूम कर प्रजाजनों को इस विद्या का उपदेश करो जिससे वह कलायंत्र बनाकर ऐश्वर्य्यशाली हों या यों कहो कि प्रजाजनों में विज्ञान और ऐश्वर्य्य का उपदेश करो जिससे उनके शुभ मनोरथ पूर्ण हों ॥१॥

युवं चित्रं दंदथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतांवते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधुं ॥२॥

पदार्थः—(युवं) हे विद्वानो ! तुम (चित्रं, भोजनं) नाना प्रकार के भोजन (ददथुः) धारण = भक्षण करो (नरा) सब प्रजाजन (सूनृतावते) सुन्दर स्तोत्रों में (चोदेथां) तुम्हें प्रेरित करें, ताकि तुम (अर्वाक्, रथं) उनके सन्मुख उत्तम वेदवाणियों को (समनसा) अच्छे भावों से (नियच्छतं) प्रयोग करते हुए (सोम्यं) सुन्दर (मधु, पिबतं) मीठे रसों का पान करो ॥२॥

भावार्थः—हे यजमानो ! तुम विद्वान् उपदेशकों को नाना प्रकार के भोजन और मीठे रसों का पान कराके प्रसन्न करो ताकि वेदवाणियों का तुम्हारे प्रति उपदेश करें और वह तुम्हारे सन्मुख मानस यज्ञों द्वारा अनुष्ठान करके तुम्हें शान्ति का मार्ग बतलायें जिससे तुम लोग परस्पर एक दूसरे की उन्नति करते हुए प्रजा में धर्म का प्रचार करो ॥२॥

अब जलविद्या के जानने वाले उपदेशकों का सत्कार कथन करते हैं ॥

आ यातमुपं भूषतं मध्वः पिबतमश्विना । 8.1.1 1526.2.4
दुग्धं पयो वृषणा जेन्या वसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥३॥

पदार्थः—(अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको ! (आयातं) आप हमारे यज्ञ को आकर (उप, भूषतं) भले प्रकार सुशोभित करें (आगतं) शीघ्र आयें (मध्वः, पिबतं) मधुरस का पान करें (जेन्यावसू) हे धनों के जय करने वाले आप (वृषणा) सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं (पयः, दुग्धं) वृष्टि द्वारा दुहे हुए (नः) हमारे ऐश्वर्य्य को (मर्धिष्टं, मा) हनन मत करो ॥३॥

भावार्थः—हे जलविद्या के जानने वाले अध्यापक तथा उपदेशक ! आप शीघ्र आकर हमारे यज्ञ को सुशोभित करें अर्थात् हमारे यज्ञ में पधार कर हमें जलों की विद्या में निपुण करें ताकि हम अपने ऐश्वर्य को बढ़ावें, हम आप का मधु आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सत्कार करते हैं, आप सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले धन के स्वामी हैं। कृपा करके हमारे उपार्जन किये हुए धन का नाश न करें किन्तु हमारी वृद्धि करें जिससे हम यज्ञादि धर्मकार्यों में प्रवृत्त रहें ॥३॥

अश्वांसो ये वामुपं दाशुषो गृहं युवां दीयंति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥४॥

...राज पुस्तकालय
वाराणसी 1466
आगत क्रमांक........

पदार्थः—(देवा) हे दिव्यगुणसम्पन्न (अश्विना) विद्वानो (युवां) आप (अस्मयू) हमारे यज्ञ में (आयातं) आयें (नरा) हे अध्यापक तथा उपदेशको (वां) आप लोग (मक्षुयुभिः) शीघ्रगामी (हयेभिः) घोड़ों द्वारा (उप) आकर (दाशुषः, गृहं, दीयंति) यजमानों के घरों को दीप्तिमान करें (ये) जो (अश्वासः) कर्मकाण्डी और (बिभ्रतः) गृहस्थधर्मों के धारण करने वाले हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि कर्मकाण्डी तथा वेदानुयायी सद्गृहस्थ यजमानों को चाहिये कि वह विद्वान् उपदेशकों को अपने गृह में बुलाकर उनकी खानपानादि से भले प्रकार सेवा करके उनसे नर, नारी सदुपदेश ग्रहण करके अपने जीवन को पवित्र करें और उन विद्युदादिविद्या-वेत्ता विद्वानों से शीघ्र गति वाले यानादि की शिक्षा प्राप्त करके ऐश्वर्य-सम्पन्न हों ॥४॥

अब विद्वानों से यश और ऐश्वर्य्य ग्रहण करने का उपदेश कथन करते हैं ॥

अर्धा ह यंतो अश्विना पृक्षः सचंत सूरयः ।

ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥५॥

पदार्थः—(नासत्या) हे सत्यवादी विद्वानो ! आप (अस्मभ्यं) हम लोगों को (यशः, छर्दिः) यश उत्पन्न करने वाले स्थान दें (मघवद्भ्यः) हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न विद्वानो ! हमें आप की कृपा से (पृक्षः, यंसतः) अन्नादि ऐश्वर्य्य प्राप्त हों, और (ता) आप हमें (ध्रुवं) दृढ़ता प्रदान करें ताकि हम (सूरयः) शूरवीर बनकर (सचंत) आप लोगों की सेवा में तत्पर रहें (अश्विना) हे अध्यापक तथा उपदेशको आप (अध, यंतः) हमको प्राप्त होकर सदुपदेश करें, (ह) यहां प्रसिद्धार्थ का वाचक है ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यश तथा ऐश्वर्य की कामना वाले यजमानो ! तुम विद्वान् उपदेशकों को प्राप्त होकर उनसे सदु-पदेश ग्रहण करते हुए यशस्वी और ऐश्वर्यशाली होओ, और अपने व्रत में दृढ़ रहो अर्थात् ऐश्वर्यसम्पन्न होने पर भी अपने व्रत से कदापि विचलित न हो ॥५॥

प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।

उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नरउत क्षियंति सुक्षितिम् ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो यजमान (अवृकासः) कुटिलताओं को छोड़कर (प्रययुः) वेदमार्ग को प्राप्त होते हैं वह (नृपातारः, रथा इव) राजाओं के रथ समान सुशोभित होते (उत) और (जनानां) प्रजाओं को (स्वेन) अपने (शवसा) यश से

(शुशुवुः) सुशोभित करते हैं (उत) और (नराः) वही मनुष्य (सुक्षितिं, क्षियंति) उत्तम भूमि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो यजमान वेदमर्यादा पर चलते हुए अपने ऐश्वर्य को वढ़ाते हैं वे विजयप्राप्त राजाओं के रथ के समान सुशोभित होते हैं अर्थात् जब राजा विजयी होकर अपने देश को आता है उस समय उसकी प्रजा उसका मान हार्दिक भावों से करती है इसी प्रकार प्रजा उन नरों का सत्कार अपने हार्दिक भावों से करती है जो विद्वानों से उत्तम शिक्षा प्राप्त करके तदनुकूल अपने आचरण करते हैं, वही अपने यश से सुशोभित होकर प्रजा को सुशोभित करते और वही उत्तम भूमि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

सप्तम मण्डल में ७४ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ अष्टर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य १–८ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः–१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उषा = ब्रह्ममुहूर्त काल में ब्रह्मोपासना का विधान कथन करते हैं ॥

व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१॥

पदार्थः—(उषाः) उषा = ब्रह्ममुहूर्त काल के सूर्य्य का विकास (दिविजाः) अंतरिक्ष को प्रकाशित करता हुआ (ऋतेन) अपने तेज से (आविष्कृण्वाना) प्रकट होकर (महिमानम्, आ अगात्) परमात्मा की महिमा को दिखलाता, और (वि) विशेषतया (तमः) अंधकार को (अपद्रुहः) दूर करता हुआ (आवः) प्रकाशित होकर (अंगिरस्तमा) मनुष्यों के आलस्य को निवृत्त करके (अजुष्टं) परमात्मा के साथ जोड़ता हुआ (पथ्याः, अजीगः) पथ्य = शुभमार्ग का प्रेरक होता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की महिमा वर्णन करते हुए यह उपदेश किया है कि हे सांसारिक जनो ! सूर्य द्वारा परमात्मा की महिमा का अनुभव करते हुए उनके साथ अपने आपको जोड़ो अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त काल में जब सूर्य द्युलोक को प्रकाशित करता हुआ अपने तेज से उदय होता है उस काल में मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि वह आलस्य को त्याग कर परमात्मा की महिमा को अनुभव करते हुए ऋत=सत्य के आश्रित हों, उस महान्

प्रभु की उपासना में संलग्न हों और याज्ञिक लोग उसी काल में यज्ञों द्वारा परमात्मा का आह्वान करें अर्थात् मनुष्य मात्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें जिससे सब प्राणी परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हुए सुखपूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करें, यह परमात्मा का उच्च आदेश है ॥१॥

अब परमात्मा उषा काल में सौभाग्य प्राप्ति तथा धन-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने का उपदेश करते हैं ॥

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यंधि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥२॥

पदार्थः—(उषः) ब्रह्ममुहूर्त्त में (बोधि) उठकर (सुविताय) अपने सुख के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् (महे) आप अपनी महत्ता से (अद्य) आज=सम्प्रति (नः) हमको (महे, सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिये (प्रयंधि) प्राप्त होकर (चित्रं, रयिं, यशसं, धेहि) नाना प्रकार का धन और यश दें, (देवि) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् (मर्तेषु) इस मनुष्य लोक में (अस्मे) हमें (मानुषी) मनुष्यों के कर्मों में प्रवृत्त करें और हम (श्रवस्युं) पुत्र पौत्रादि परिवार से युक्त हों ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम प्रातःकाल में उठकर अपने सौभाग्य के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् ! इस मनुष्यलोक में आप हमें नाना प्रकार का धन, यश, बल, तेज प्रदान करें, हमें पुत्र पौत्रादि परिवार दें और हमको अपनी महत्ता से उच्च कर्मों वाला बनावें ॥२॥

अब उषाकाल में जागृति वाले पुरुष के लिये फल कथन करते हैं ॥

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयंतो दैव्यानि व्रतान्यापृणंतो अंतरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥

पदार्थः—(उषसः) प्रातःकाल की उषा के (चित्राः) जो चित्र (दर्शतायाः) दृष्टिगत होते हैं (एते, त्ये) वे सब (भानवः) सूर्य की रश्मियों द्वारा (अमृतासः) अमृतभाव को (आ, अगुः) भले प्रकार प्राप्त होते हैं, और (दैव्यानि) दिव्य भावों को (जनयंतः) उत्पन्न करते हुए (अंतरिक्षा, वि, अस्थुः) एक ही अंतरिक्ष में बहुत प्रकार से स्थिर होकर (व्रतानि, आपृणंतः) व्रतों को धारण करते हैं ॥३॥

भावार्थः—"उषा" सूर्य की रश्मियों का एक पुंज है। जब वह रश्मियें इकट्ठी होकर पृथिवीतल पर पड़ती हैं तब एक प्रकार का अमृत भाव उत्पन्न

करती हुई कई प्रकार के व्रत धारण कराती हैं अर्थात् नियमपूर्वक सन्ध्या करने वाले उषाकाल में सन्ध्या के व्रत को और नियम से हवन करने वाले हवन व्रत को धारण करते हैं, इसी प्रकार सूर्य्योदय होने पर प्रजाजन नाना प्रकार के व्रत धारण करके अमृत भाव को प्राप्त होते हैं। अतएव मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रातः उषाकाल में अपने व्रतों को पूर्ण करे, व्रतों का पूर्ण करना ही अमृतभाव को प्राप्त होना है ॥३॥

अब उषा को रूपकालंकार से वर्णन करते हैं ॥

एषा स्या युंजाना पराकात्पंच क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यंती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

पदार्थः—(एषा) यह उषा (जनानां) मनुष्यों को (वयुना) प्राप्त होकर (अभिपश्यन्ती) भले प्रकार देखती हुई (दिवः, दुहिता) द्युलोक की कन्या और (भुवनस्य, पत्नी) संसार की पत्नी रूप है। (स्या) वह उषा (युजाना, स्या) योग को प्राप्त होती हुई (पराकात्) दूर देश से (पंच, क्षितीः) पृथिवीस्थ पांच प्रकार के मनुष्यों को (परि, सद्यः) सदा के लिये (जिगाति) जागृति उत्पन्न करती है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उषा को द्युलोक की कन्या और संसार की पत्नीस्थानीय माना गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि इसको द्युलोक से उत्पन्न होने के कारण "कन्या" और पृथिवीलोक पर आकर सर्वभोग्या=सब के भोगने योग्य होने से "पत्नी" कथन की गई है। उषा में पत्नीभाव का आरोप करने से तात्पर्य यह है, कि यह प्रतिदिन प्रातःकाल सब संसारी जनों को उद्‌बोधन करती है कि तुम उठकर जागो, परमात्मा में जुड़ो और अपनी दिनचर्या में प्रवृत्त होकर अपने-अपने कार्यों को विधिवत् करो, यह मन्त्र का भाव है। पृथिवीस्थ पांच प्रकार के मनुष्यों का वर्णन पीछे कर आये हैं इस लिये यहां आवश्यकता नहीं ॥४॥

अब उषा को अन्नादि ऐश्वर्य की देने वाली कथन करते हैं ॥

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयंती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

पदार्थः—(उषाः) यह उषा देवी (वाजिनीवती) अन्नादि पदार्थों के देने वाली (चित्रामघा) नाना प्रकार के ऐश्वर्य वाली (वसूनां, रायः, ईशे) वसुओं के धन की स्वामिनी (मघोनी) ऐश्वर्य वाली (वह्निभिः) याज्ञिक कर्मों में प्रेरक (ऋषिस्तुता)

ऋषियों द्वारा स्तुति को प्राप्त और (उच्छति) प्रकाश को प्राप्त होकर (जरयंती) अन्धकारादि दोषों को निवृत्त करती हुई (सूर्यस्य, योषा) सूर्य के स्त्रीभाव को (गृणाना) ग्रहण करती है ॥५॥

भावार्थः – इस मन्त्र में रूपकालंकार से उषा को सूर्य की स्त्री वर्णन किया गया है, जिसका तात्पर्य्य यह है कि प्रातःकाल पूर्वदिशा में जो रक्त-वर्ण की दीप्ति सूर्योदय के समय उत्पन्न होती है उसका नाम "उषा" है, द्युलोक उसका पितास्थानीय और सूर्य्य पतिस्थानीय माना गया है, क्योंकि वह द्युलोक में उत्पन्न होती और सूर्य्य उसका भोक्ता होने के कारण उसका पतिरूप से वर्णन किया है, या यों कहो कि सूर्य्य की रश्मिरूप उषा सूर्य्य की शोभा को बढ़ाती और सदैव उसके साथ रहने के कारण उसको योषारूप से वर्णन किया गया है, और जो कई एक मन्त्रों में उषा को सूर्य्य की पुत्री वर्णन किया गया है वह द्युलोक के भाव से है, सूर्य्य के अभिप्राय से नहीं ॥५॥

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वांश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहंतः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६॥

पदार्थः—(उषसं) उषाकाल को (वहन्तः) धारण करता हुआ सूर्य (विश्व-पिशा) संसार के अन्धकार को मर्दन करने वाले (शुभ्रा) सुन्दर (रथेन) वेग से (याति) गमन करता और (रत्नं, दधाति) रत्नों को धारण करता हुआ (जनाय) मनुष्यों के लिए (विधते) विभाग करता है (चित्राः, अश्वाः) जिसमें विचित्र वेगवाली किरण (अदृश्रन्) देखी जाती हैं, और जो (प्रति, द्युतानां) प्रत्येक दीप्ति के लिए (अरुषासः) प्रकाश करने वाली हैं ॥६॥

भावार्थः—उषाकाल का आश्रय सूर्य प्रत्यक्ष रूप से नानप्रकार की किरणों को धारण करता हुआ संसार में अव्याहत गति होकर विचरता और उसकी दीप्ति से नानाप्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं इसको रत्नों का विभाग करने वाला कथन किया गया है अर्थात् सूर्य के प्रकाश होने पर ही सब प्राणीवर्ग अपना-अपना भरण-पोषण करते और कर्मानुसार रत्नादि धनों की प्राप्ति में प्रवृत्त होते हैं ॥६॥

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृह्ळानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशंत ॥७॥

पदार्थः—(देवी) दिव्यगुणयुक्त (सत्या) सत्यरूपा (सत्येभिः) सत्यवादियों से मान को प्राप्त (महती) बड़ी (महद्भिः, देवेभिः, यजता) बड़े-बड़े विद्वानों से वर्णित (यजत्रैः) याज्ञिक लोगों से सेवित (दृह्लानि, रुजत्) बड़े अन्धकार को दूर करने वाली (उस्रियाणां, प्रति) अधिकारियों के प्रति (गावः, ददत्) किरणों को देने वाली (उषसं) उषा की (वावशंत) सब प्राणी कामना करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मंत्र में "उषा" का महत्त्व वर्णन किया गया है, क्योंकि विद्वान् लोग उषाकाल में ही परमात्मा की स्तुति करते, बड़े-बड़े याज्ञिक, महात्मा इसी काल में यज्ञ करते, गोपाल लोग गौओं का सत्कार करते और सब कर्मकाण्डी पुरुष उषाकाल की इच्छा करते हैं, क्योंकि इसी काल में सब वैदिक कर्मों का प्रारम्भ होता है अर्थात् सन्ध्या, अग्निहोत्र, जप तप आदि सब अनुष्ठान इसी काल में किये जाते हैं, इसलिये यह उषा सब के कामना करने योग्य है ॥७॥

अब उषाकाल में प्रार्थना का विधान कथन करते हैं ॥

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अस्मे) हमारे लिये (अश्वावत्) अश्वों वाले यान दें (पुरुभोजः) अनेक प्रकार के भोग प्रदान करें (नु) निश्चय करके (नः) हमको (गोमत्, वीरवत्) पुष्ट इन्द्रियोंवाले वीर पुरुष और (रत्नं, उषः) रत्न तथा ऐश्वर्य (धेहि) प्रदान करें, और (पुरुषता) पुरुषसमूह में (नः) हमारे (बर्हिः) यज्ञ की (निदे) निन्दा (मा) मत (कः) हो और (नः) हमको (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक तथा विद्वान् ! पुरुषो ! तुम सदा उषाकाल में यह प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप हमें विविध प्रकार के यानादि पदार्थ और दृढ़ इन्द्रियोंवाली पुत्र, पौत्रादि सन्तति प्रदान करें, हमारे यज्ञ की कोई निन्दा न करे प्रत्युत सब अनुष्ठानी बनकर हमारे सहकारी हों, हम निन्दित कर्मों के अपयश से सदैव भयभीत रहें, आप ऐसी कृपा करें कि हम आप से प्रार्थना करते हुए सदा अपना कल्याण ही देखें । यह उपासक की प्रार्थना करने का प्रकार है ॥८॥

सप्तम मण्डल में ७५वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—७ वशिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६, ७—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब उषा=ब्रह्ममुहूर्त में यज्ञकर्मानन्तर परमात्मा की स्तुति करना कथन करते हैं ॥

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥१॥

पदार्थः—(ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (अमृतं) मृत्युरहित (विश्वजन्यं) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आदि कारण (विश्वानरः) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक (सविता) सब का उत्पत्ति स्थान (देवः) दिव्यगुणस्वरूप परमात्मा का हम लोग (अश्रेत्) आश्रयण करें, जो (देवानां) विद्वानों को (क्रत्वा) शुभ मार्गों में प्रेरित करके (अजनिष्ट) उत्तम फलों को उत्पन्न करता है (भुवनं, विश्वं) सम्पूर्ण भुवनों का (उषाः) प्रकाशक (उत्) और (आविः, चक्षुः) चराचर का चक्षु जो परमात्मदेव है हम उसकी (अकः) स्तुति करें ॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा की स्तुति वर्णन की गई है कि जो परमात्मदेव सब ब्रह्माण्डों में ओतप्रोत हो रहा है और जो सब का उत्पत्ति-स्थान तथा विद्वानों को शुभमार्ग में प्रेरित करने वाला है, उसी देव का हम सब को आश्रयण करना चाहिए और उसी की उपासना में हमें संलग्न होना चाहिए, जो चराचर का चक्षु और हमारा पितास्थानीय है ॥१॥

प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥२॥

पदार्थः—(अमर्धन्तः) सब को अभयदान देने वाला (वसुभिः इष्कृतासः) सूर्य चन्द्रमादि वसुओं से अलंकृत (उषसः) सम्पूर्ण ज्योतियों का (केतुः) शिरोमणि परमात्मा (हर्म्येभ्यः) सुन्दर ज्योतियों में (पुरस्तात्) प्रथम (प्रतीची) पूर्वदिशा को (आ) भले प्रकार (अधि, अगात्) आश्रयण करके (अभूत्) प्रकट होता है उसको (अदृश्रन्) देखकर (प्र) हर्षित हुए उपासक लोग कहते हैं कि (देवयानाः पंथाः) यह देवताओं का मार्ग (मे) मुझे प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा की स्तुति वर्णन की गई है कि जब उपासक प्रथम परमात्मज्योति को देख कर ध्यानावस्थित हुआ, उस परमात्मदेव का ध्यान करता और ध्यानावस्था में उस ज्योति को सम्पूर्ण

चन्द्रमादि वसुओं से अलंकृत सब से शिरोमणि पाता है तब मुक्तकंठ से यह कहता है कि देवताओं का यह मार्ग मुझ को प्राप्त हो, या यों कहो कि परमात्मरूप दिव्यज्योति जो सब वसुओं में देदीप्यमान हो रही है उस का ध्यान करने वाले उपासक देवमार्ग द्वारा अमृतभाव को प्राप्त होते हैं, इसी भाव को "प्राचीदिगग्निरधिपति०" इत्यादि सन्ध्या मंत्रों में वर्णन किया है कि प्राची आदि दिशा तथा उपदिशाओं का अधिपति एक परमात्मदेव ही है जो हमारा रक्षक, शुभकर्मों में प्रेरक और सम्पूर्ण ऐश्वर्य का दाता है उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं ॥२॥

तानीदहा॑नि बहुलान्या॑सन्या प्राचीन॒मुदि॑ता सूर्य॑स्य ।

यतः॒ परि॑ जार इ॑वाचरन्त्युषो॑ ददृक्षे न पुनर्य॒तीव॑ ॥३॥

पदार्थः—(तानि, इत्, अहानि) वह दिन के समान प्रकाशरूप (बहुलानि) अनेक प्रकार के तेज (आसन्) दृष्टिगत होते हैं (या) जो (सूर्यस्य) स्वत:प्रकाश परमात्मा के (प्राचीनं) प्राचीन स्वरूप को (उदिता) प्राप्त हैं (यतः) जिससे (परि-जारः, इव) अग्नि के समान(उषः) तेज (आचरंती) निकलते हुए (ददृक्षे) देखे जाते हैं (यतीव) व्यभिचारी पदार्थों के समान (पुनः न) फ़िर नहीं ॥३॥

भावार्थः—जिस प्रकार अग्नि से सहस्रों प्रकार की ज्वालायें उत्पन्न होती रहती हैं इसी प्रकार स्वत:प्रकाश परमात्मा के स्वरूप से तेज की रश्मियें सदैव देदीप्यमान होती रहती हैं, या यों कहो कि स्वत:प्रकाश परमात्मा की ज्योति सदैव प्रकाशित होती रहती है, जैसे पदार्थों के अनित्य-गुण उन पदार्थों से पृथक् हो जाते वा नाश को प्राप्त हो जाते हैं इस प्रकार परमात्मा के प्रकाशरूप गुण का उस से कदापि वियोग नहीं होता अर्थात् परमात्मा के गुण विकारी नहीं, यह इस मंत्र का भाव है ॥३॥

अब ब्रह्मवेत्ता विद्वानों का कर्तव्य कथन करते हैं ॥

तइदेवानां॑ सध॒माद॑ आसन्नृ॒तावा॑नः क॒वयः॑ पू॒र्व्यासः॑ ।

गू॒ळ्हं ज्योतिः॑ पि॒तरो॒ अन्व॑विन्दन्त्स॒त्यम॑न्त्रा अजनयन्नु॒षास॑म् ॥४॥

पदार्थः—(देवानां, सधमादः) विद्वानों के समुदायरूप यज्ञ में (ते, इत्) वह ही (ऋतावानः) सत्यवादी (कवयः) कवि (पूर्व्यासः) प्राचीन (आसन्) माने जाते थे जो (गूळ्हं) गहन ज्योतिप्रकाश परमात्मा को (अनु, अविदन्) भले प्रकार जानते थे, (सत्यमंत्राः) वह सत्य का उपदेश करने वाले (पितरः) पितर (उषसं) परमात्म-प्रकाश को (अजनयन्) प्रकट करते थे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो !. विद्वानों के यज्ञ में वही सत्यवादी, वही कवि, वही प्राचीन उपदेष्टा और वही पितर माने जाते हैं जो परमात्मा के गुप्तभाव को प्रकाशित करते हैं अर्थात् विद्वत्ता तथा कवित्व उन्हीं लोगों का सफल होता है जो परमात्मा के गुणों को कीर्तन द्वारा सर्वसाधारण तक पहुँचाते हैं ॥४॥

समान ऊर्वे अधि संगतासः संजानते न यतंते मिथस्ते ।

ते देवानां न मिनंति व्रतान्यमर्धंतो वसुभिर्यादमानाः ॥५॥

पदार्थः—(देवानां) जो विद्वानों के (व्रतानि) व्रतों को (न, मिनन्ति) नहीं मेटते (ते) वह (अमर्धन्तः) अहिंसक होकर (वसुभिः) वेदवाणी रूपी धनों से (याद-मानाः) यात्रा करते हुए (मिथः) परस्पर मिलकर (यतंते) यत्न करते हैं (ते) वह (संजानते) प्रतिज्ञा ही (न) नहीं करते किन्तु (संगतासः) संगत होकर (अधि, ऊर्वे) बलपूर्वक इन्द्रियों के संयम में (समाने) समान भाव से यत्न करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष विद्वानों के नियमों का पालन करते हुए अहिंसक होकर अर्थात् अहिंसादि पांच यमों का पालन करते हुए संसार में विचरते हैं वह यत्नपूर्वक अपने अभीष्ट फल को प्राप्त होते हैं या यों कहो कि वैदिक नियमों का वही पुरुष पालन करते हैं जो अहिंसक होकर वेदवाणी का प्रचार करते और आपस में समान भाव से इन्द्रियों का संयम करते हुए औरों को ब्रह्मचर्यव्रत का उपदेश करते हैं, स्मरण रहे कि उपदेश उन्हीं का सफल होता है जो अनुष्ठानी बनकर यात्रा करते हैं अन्यों का नहीं ॥५॥

अब उषा काल में अनुष्ठान का विधान करते हैं ॥

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।

गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥६॥

पदार्थः—(उषः, बुधः) उषाकाल में जागने वाले (वसिष्ठाः) विद्वान् (स्तोमैः) यज्ञों द्वारा (त्वा, प्रति) तेरे लिये (ईळते) स्तुति करते हैं (सुभगे) हे सौभाग्य के देने वाली (गवां, नेत्री) तू इन्द्रियों को संयम में रखने के कारण (तुस्तुवांसः) स्तुति योग्य है (वाजपत्नी) हे सब प्रकार के ऐश्वर्य की स्वामिनी (जरस्व) अन्धकार को जलाकर (नः) हमारे लिये (उच्छ, उषः) अच्छा प्रकाश कर क्योंकि तू (प्रथमा) सब दीप्तियों में मुख्य (सुजाते) सुन्दर प्रादुर्भाव वाली है ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में रूपकालंकार से उषाकाल का वर्णन करते

हुए परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष उषाकाल में उठकर सन्ध्यावन्दन तथा हवनादि अनुष्ठानार्ह कार्यों में प्रतिदिन प्रवृत्त रहते हैं वह सब धनों के देने वाली तथा इन्द्रियसंयम का मुख्य साधनरूप उषाकाल से परमलाभ उठाते हैं अर्थात् जो पुरुष अपनी निद्रा त्याग उषाकाल में उठकर अपने नित्य-कर्मों में प्रवृत्त होते हैं वह सौभाग्यशाली पुरुष इन्द्रियों का संयम करते हुए ऐश्वर्यशाली होकर सब प्रकार का सुख भोगते हैं, क्योंकि इन्द्रियसंयम का मुख्य साधन उषाकाल में ब्रह्मोपासन है, इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि जब पूर्वदिशा में सूर्य की लाली उदय हो उसी काल में ब्रह्मोपासन रूप अनुष्ठान करें ॥६॥

अब उषाकाल में स्वस्तिवाचनों द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(एषा, उषाः) यह उषा काल (राधसः, नेत्री) आराधनशील विद्वानों के मार्ग को (सूनृतानां) वेदवाणियों द्वारा (उच्छन्ती) प्रकाश करनेवाला (वसिष्ठैः, रिभ्यते) सर्वोपरि गुणसम्पन्न विद्वानों से स्तुति योग्य है, इसी काल में (दीर्घश्रुतं) चिरकालीन सर्वज्ञाता परमात्मा (अस्मे) हमें (रयिं, दधाना) धन प्राप्त करायें, और (नः) हमारे धन को (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विचारशील विद्वानो ! तुम उषाकाल में अपने कर्तव्य कर्मों से निवृत्त होकर स्वस्तिवाचनों से प्रार्थना करो कि आप हमें और हमारे यजमानों को ऐश्वर्यसम्पन्न करें और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य पवित्र हो ॥७॥

सप्तम मण्डल में ७६वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ निचृत त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा को चराचर जीवों की जननी रूप से कथन करते हैं ॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥१॥

पदार्थः—(तमांसि) अज्ञानरूप तम को (बाधमाना) नाश करती हुई (अग्निः ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप ज्योति (मानुषाणां, समिधे, अकः) मनुष्यों के सम्बन्ध में प्रकट हुई, जिसने (प्रसुवंती) प्रसूतावस्था में (विश्वं, चरायै, जीवं) विश्व के चराचर जीवों को (अभूत्) प्रकट किया, वह ज्योति (उषो) इस संसार में (युवतिः) युवावस्थावाली (रुरुचे) प्रकाशित हुई (न योषा) स्त्री के समान नहीं ॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा को ज्योतिरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् जगज्जननी ज्योतिरूप परमात्मा जो जीवमात्र का जन्मदाता है उसने आदि सृष्टि में विश्व के चराचर जीवों को युवावस्था में प्रकट किया, और वह परमात्मारूप शक्ति भी युवावस्था में प्रकट हुई स्त्री के समान नहीं ॥१॥

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥२॥

पदार्थ—(सप्रथा) सब प्रकार से (विश्वं) सम्पूर्ण विश्व को (प्रतीची) प्रथम (अस्मात्) उत्पन्न करनेवाली (रुशत्) दिव्य शक्ति (वासः) उस दीप्तिवाले स्वरूप (उत्) और (शुक्रं) बल को (बिभ्रती) धारण करती हुई जो (अश्वैत्) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, (हिरण्यवर्णा) दिव्यस्वरूप (सुदृशीक) सर्वोपरि दर्शनीय (संदृक्) सर्वज्ञात्री (गवां, माता) सब ब्रह्माण्डों की जननी और (अह्नां, नेत्री) सूर्यादि सब प्रकाशों की प्रकाशक (अरोचि) सब को प्रकाशित कर रही है ॥२॥

भावार्थः—जो दिव्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व को धारण करके कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों को चला रही है वही दिव्य शक्तिरूप परमात्मा सब ब्रह्माण्डों की जननी और वही सब का अधिष्ठान होकर स्वयं प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

अब उस दिव्य शक्ति को सम्पूर्ण विश्व का आधार कथन करते हैं ॥

देवानां चक्षुः सुभगा वहंती श्वेतं नयंती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥३॥

पदार्थः—(देवानां, चक्षुः) सब दिव्य शक्तियों की प्रकाशक (सुभगा) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (श्वेतं, अश्वं, वहंती) श्वेतवर्ण के गतिशील सूर्य को चलानेवाली (सुदृशीकं) सर्वोपरिदर्शनीय (अदर्शि, रश्मिभिः, नयंती) नहीं देखे जाने वाली रश्मियों की चालिका (व्यक्ता) सब में विभक्त (चित्रामघा) नाना प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न

(उष:) परमात्मरूप शक्ति (विश्वं) सम्पूर्ण संसार को (अनु) आधेय रूप से आश्रय करके (प्रभूता) विस्तृतरूप से विराजमान हो रही है॥३॥

भावार्थः—जो दिव्यशक्ति सूर्यादि सब तेजों का चक्षुरूप, सब प्रकाशक ज्योतियों को प्रकाश देनेवाली, गतिशील सूर्य चन्द्रादिकों को चलानेवाली और जो सम्पूर्ण संसार को आश्रय करके स्थित हो रही है वही दिव्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठान है॥३॥

अब उक्त ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा से शत्रु निवारण तथा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्ति की प्रार्थना कथन करते हैं॥

अंतिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।

यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि॥४॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! (अन्तिवामा) आप हमें अन्न तथा पशुओं से सम्पन्न करें अर्थात् प्रशस्तसमृद्धि युक्त करें "वामइति प्रशस्तनामसु पठितम् (निघण्टु ३।८)" (अमित्रं, दूरे, उच्छ) हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें (उर्वीं,गव्यूतिं) विस्तृत पृथ्वी का हमको अधिपति बनावें (नः) हमको (अभयं, कृधि) भयरहित करें (मघोनि) हे दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवन्! (गृणते) आप अपने उपासकों को (राधः) ऐश्वर्य की ओर (चोदय) प्रेरित करें और (यवय, द्वेषः) हमारे द्वेष दूर करके (वसूनि, आ, भर) सम्पूर्ण धनों से हमें परिपूर्ण करें॥४॥

भावार्थ—हे सब धनों से परिपूर्ण तथा ऐश्वर्यसम्पन्न स्वामिन्! आप हमें अन्न तथा गवादि पशुओं का स्वामी बनावें, आप हमें विस्तीर्ण भूमिपति बनावें, हमारे शत्रुओं को हम से दूर करके सब संसार का हमें मित्र बनावें अर्थात् द्वेषबुद्धि को हम से दूर करें जिससे कोई भी हमसे शत्रुता न करे। अधिक क्या आप उपासकों को शीलसम्पन्न करें सब प्रकार का धन दें जिससे हम लोग निरन्तर आपकी उपासना तथा आज्ञापालन में तत्पर रहें॥४॥

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरंती न आयुः।

इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः॥५॥

पदार्थः—(उषः, देवि) हे ज्योतिस्वरूप तथा दिव्यगुणसम्पन्न परमेश्वर! (अस्मे) हमें (श्रेष्ठेभिः, भानुभिः) सुन्दर प्रकाशों से (विभाहि) भले प्रकार प्रकाशयुक्त करें (नः) हमारी (आयुः, प्रतिरंती) आयु को बढ़ावें (विश्ववारे) हे विश्व के उपास्य देव! (नः) हमें (इषं) ऐश्वर्य (दधती) धारण करावें (च) और (गोमत्)

गौओं से युक्त (अश्ववत्) अश्वों वाला (रथवत्) यानों वाला (च) और (राधः) सम्पूर्ण धनों वाला करें ॥५॥

भावार्थः—मंत्र का भाव स्पष्ट है, इसमें यह वर्णन किया है कि हे परमात्मन् ! आप हमें दीर्घ आयु दें और सब प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न करें ॥५॥

अब वेदवेत्ता ऋषियों द्वारा प्रार्थना कथन करते हैं ॥

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(दिवः, दुहितः) द्युलोक की दुहिता (उषः) उषा के (वर्धयन्ति) उदय होने पर अथवा बढ़ने पर (मतिभिः, वसिष्ठाः) बुद्धिमान् ऋषि लोग (सुजाते) सुजन्मवाली उषा को लक्ष्य रख कर भले प्रकार परमात्मा को ज्ञानगोचर करके (यां त्वा) जिस आपका ध्यान करते हैं, (सा) वह आप (अस्मासु) हम लोगों को (ऋष्वं) ऐश्वर्ययुक्त करें, (बृहन्तं, रयिं) सब से बड़े धन को (धाः) धारण करावें और (नः) हमको (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणयुक्त वाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—हे परमात्मा ! उषा काल में विज्ञानी ऋषि महात्मा अपनी ब्रह्मविषयिणी बुद्धि द्वारा आप को ज्ञानगोचर करते हुए आपका ध्यान करते हैं, वह आप हमारे पूजनीय पिता हमें धनसम्पन्न तथा ऐश्वर्ययुक्त करते हुए सब प्रकार से हमारा कल्याण करें ॥६॥

सप्तम मण्डल में ७७वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य अष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा- देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ ५, विराट्त्रिष्टुप् ॥ धैवतःस्वरः ॥

अब परमात्मा का स्वरूप वर्णन करते हैं ॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।

उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, (अस्याः) आपकी इस महती शक्ति के (प्रथमाः) पहले (केतवः) अनेक हेतु (ऊर्ध्वाः) सब से ऊंचे (प्रति) हमारे प्रति (अंजयः) प्रसिद्ध

(अदृश्रन्) देखे जाते हैं अर्थात् हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं जो (विश्रयंते) विस्तारपूर्वक फैले हुए हैं (उषः) हे ज्योतिस्वरूप भगवन् ! (अर्वाचा) आप हमारे सन्मुख आयें अर्थात् हमें अपने दर्शन का पात्र बनायें, और (ज्योतिष्मता) अपने तेजस्वी (बृहता) बड़े (रथेन) ज्ञान से (अस्मभ्यं) हमको (वामं) ज्ञानरूप धन (वक्षि) प्रदान करें ॥१॥

भावार्थः—जब हम इस संसार में दृष्टि फैलाकर देखते हैं तो सब से पहले परमात्मस्वरूप को बोधन करनेवाले अनन्त हेतु इस संसार में हमारे दृष्टिगत होते हैं जो सबसे उच्च परमात्मस्वरूप को दर्शा रहे हैं, जैसा कि संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और यह अद्भुत रचना आदि चिह्नों से स्पष्टतया परमात्मा के स्वरूप का बोधन होता है, हे सर्वशक्तिसम्पन्न भगवन् ! आप अपने बड़े तेजस्वी स्वरूप का हमें ज्ञान करायें जिससे हम अपने आपको पवित्र करें ॥१॥

अब परमात्मस्वरूप का महत्त्व कथन करते हैं ॥

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणंतः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरितापं देवी ॥२॥

पदार्थः—(देवी) परमात्मा का दिव्यस्वरूप (दुरिता, अप) पापों को दूर करता, तथा (विश्वा, तमांसि) सब प्रकार के अज्ञानों को (बाधमाना) निवृत्त करता हुआ (ज्योतिषा) अपने ज्ञान से (उषाः) उच्च गति को (याति) प्राप्त है। (विप्रासः) वेदवेत्ता ब्राह्मण उसको (मतिभिः) स्व बुद्धियों से (गृणंतः) ग्रहण करते हैं। (प्रति) उनको परमात्मस्वरूप (समिद्धः) सम्यक् रीति से प्रकाशित होता, और (अग्निः) ज्योतिस्वरूप परमात्मा (सीं) भलीभांति (प्रति, जरते) प्रत्येक पदार्थ में व्यापकभाव से प्रकाशित हो रहा है ॥२॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा का दिव्यस्वरूप सदैव प्रकाशमान हुआ अज्ञानरूप अंधकार को निवृत्त करके ज्ञानरूप ज्योति का विस्तार करता अर्थात् उषारूप ज्योति के समान उच्चभाव को प्राप्त होता है, वह वेदवेत्ता ब्राह्मणों की बुद्धि का विषय होने से उनके प्रति प्रकाशित होता अर्थात् वे परमात्मस्वरूप को अपनी निर्मल बुद्धि से भलीभांति अवगत करते हैं। अधिक क्या उसका दिव्यस्वरूप संसार के प्रत्येक पदार्थ में ओतप्रोत हो रहा है, इसलिए सब पुरुषों को उचित है कि वह परमात्मस्वरूप को अपने-अपने हृदय में अवगत करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें, अर्थात् जिस प्रकार उषा काल अन्धकार को निवृत्त करके प्रकाशमय हो जाता है इसी प्रकार

परमात्मा अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके अपने प्रकाश से विद्वानों के हृदय को प्रकाशित करता है ॥२॥

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छंतीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥३॥

पदार्थः—(उषसः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (ज्योतिः, यच्छंतीः) ज्ञान का प्रकाश करता हुआ (विभातीः) प्रकाशित होता, और उसका ज्ञान (प्रति) मनुष्यों के प्रति (पुरस्तात्, अदृश्रन्) सब से पूर्व देखा जाता है, (एताः त्याः) ये परमात्मशक्तियें (सूर्यं, यज्ञं, अग्निं) सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को (अजीजनन्) उत्पन्न करती (उ) और (अजुष्टं, तमः) अप्रिय तम को (अपाचीनं) दूर करके (अगात्) ज्ञानरूप प्रकाश का विस्तार करती हैं ॥३॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा का ज्ञान सब से पूर्व देखा जाता है। वह अपने ज्ञान का विस्तार करके पीछे प्रकाशित होता है, क्योंकि उसके जानने के लिए पहले ज्ञान की आवश्यकता है और उसी परमात्मा से सूर्य चन्द्रादि दिव्य ज्योतियां उत्पन्न होतीं, उसी से यज्ञ का प्रादुर्भाव होता और उसी से अग्नि आदि तत्त्व उत्पन्न होते हैं, वही परमात्मा अज्ञानरूप तम का नाश करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने ज्ञानरूप प्रकाश का विस्तार करता है, इसलिए सबका कर्तव्य है कि उसी ज्ञानस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर ज्ञान की वृद्धि द्वारा अपने जीवन को उच्च बनावें ॥३॥

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहंति ॥४॥

पदार्थः—(सुयुजः) सुन्दर दीप्तिवाली परमात्मशक्तियें (अश्वासः) शीघ्र गति द्वारा (यं, रथं) जिस रथ को (आ) भले प्रकार (वहंति) चलाती हैं, उससे (युज्यमानं) जुड़ी हुई (दिवः, दुहिता) द्युलोक की दुहिता (उषसं) उषा को (विश्वे, पश्यंति) सब लोग देखते हैं, जो (अचेति) दिव्यज्योतिसम्पन्न (मघोनी) ऐश्वर्यवाली (विभाती) प्रकाशयुक्त (स्वधया) अन्नादि पदार्थों से सम्पन्न, और जो (आ) भले प्रकार (अस्थात्) दृढ़तावाली है ॥४॥

भावार्थः—मंत्र का आशय यह है कि इस ब्रह्माण्ड रूपी रथ को परमात्मा की दिव्यशक्तियें चलाती हैं, उसी रथ में जुड़ी हुई द्युलोक की दुहिता उषा को विज्ञानी लोग देखते हैं जो अन्नादि ऐश्वर्यसम्पन्न बड़ी दृढ़तावाली है, इस शक्ति को देखकर विज्ञानी महात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण

परमात्मा का अनुभव करते हुए उसी की उपासना में प्रवृत्त होकर अपने जीवन को सफल करते और परमात्मा की अचिन्त्य शक्तियों को विचारते हुए उसी में संलग्न होकर अमृतभाव को प्राप्त होते हैं ॥४॥

अब ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा की स्तुति कथन करते हुए प्रार्थना करते हैं ॥

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधंतास्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वा, प्रति) आपके प्रति (अद्य) आज (सुमनसः) सुन्दर मनों वाले विज्ञानी और (अस्माकासः) हमारे ऋत्विगादि (मघवानः) ऐश्वर्य-सम्पन्न आपको (बुधंत) बोधन करते (च) और (वयम्) हम लोग आपके महत्त्व को समझते हैं। हे परमात्मन् ! आप (तिल्विलायध्वं) हम में परस्पर प्रेम भाव उत्पन्न करें क्योंकि आप (उषसः) प्रकाशरूप ज्ञान से (विभातीः) सदा प्रकाशमान हैं। (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचन रूप वेदवाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—हे भगवन् ! आपको शान्तमनवाले योगीजन वोधन करते तथा बड़े-बड़े ऐश्वर्यसम्पन्न आपके यज्ञ को वर्णन करते हैं और आपकी प्रेममय रज्जू से बंधे हुए भक्तजन आपका सदैव कीर्तन करते हैं, कृपा करके हमको कल्याणरूप वाणियों से सदा के लिए पवित्र करें ॥५॥

सप्तम मण्डल में ७८वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य एकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा की स्वयं प्रकाशता कथन करते हुए उसीसे अज्ञाननिवृत्ति का वर्णन करते हैं ॥

व्युषा आवः पथ्या जनानां पंच क्षितीर्मानुषीर्बोधयंती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥१॥

पदार्थः—(सूर्यः) स्वतःप्रकाश परमात्मा (रोदसी) पृथ्वी तथा द्युलोक के मध्य में (चक्षसा) अपने प्रकाश से (आवः) सबको प्रकाशित करता हुआ (वि, उषाः) अपने विशेष ज्ञान से (पंच, जनानां) पांचों प्रकार के मनुष्यों को (क्षितीः) इस पृथ्वी पर

(मानुषीः) मनुष्यता का (बोधयंती) उपदेश कर रहा है, जो (श्रावः पथ्या) सब के लिए विशेषरूप से पथ्य है, हम सब प्रजाजनों का (वि) विशेषता से मुख्य कर्तव्य है कि हम (उक्षभिः) अत्यन्तबलयुक्त (सुसंदृग्भिः) अपने सत्य ज्ञान से (भानुं,अश्रेत्) उस स्वयंप्रकाश को आश्रयण करें ॥१॥

भावार्थः—वह पूर्ण परमात्मा जो अपनी दिव्य ज्योति से सम्पूर्ण भूमण्डल को प्रकाशित करता हुआ अपने विशेष ज्ञान से "पंच जनाः"= ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और दस्यु, इन पाचों प्रकार के मनुष्यों को सत्यज्ञान का उपदेश कर रहा है जो सब के लिए परम उपयोगी है, हमारा कर्तव्य है कि हम यत्नपूर्वक उस स्वतःप्रकाश परमात्मा के स्वरूप को जान कर उसी का आश्रयण करें ॥१॥

व्यंजते दिवो अंतेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।

सं ते गावस्तम आ वर्तयंति ज्योतिर्यच्छंति सवितेव बाहू ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (दिवः अंतेषु) द्युलोकपर्यन्त प्रदेशों में (अक्तून्) सूर्यादि प्रकाशों के (न) समान (विशः, अंजते) सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रकट करते (वि) भले प्रकार (उषसः युक्ताः) प्रकाशयुक्त (यतंते) कर रहे हैं (ते, गावः) तुम्हारा ज्ञान-रूप प्रकाश (तमः) अज्ञान रूप तम को (आ) भले प्रकार (वर्तयंति) दूर करता है (सविता, इव, बाहू) सूर्य्य की किरणों के समान (ज्योतिः) तुम्हारी ज्योति (सं, यच्छंति) सब को प्रकाशित करती है ॥२॥

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप द्युलोकपर्य्यन्त सम्पूर्ण प्रजाओं को अपनी दिव्य ज्योति से प्रकाशित कर रहे हैं अर्थात् आप अपने ज्ञानरूप तप से प्रजाओं को रचकर सूर्य्य की किरणों के समान अज्ञानरूप तम को छिन्नभिन्न करके मनुष्यों को ज्ञानयुक्त बनाते हैं, जैसाकि "यस्य ज्ञानमयं तपः" इत्यादि उपनिषदवाक्यों में इसी मन्त्र को आश्रय करके कहा है कि उस परमात्मा का ज्ञान ही एक प्रकार का तप है, उसी ज्ञानरूप तप से परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करके सब को यथावस्थित नियम में चला रहे हैं ॥२॥

अब उस दिव्यज्ञान की प्राप्ति के लिये परामात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि ।

वि दिवो देवी दुहिता दधात्यंगिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रतमा) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आपका (वि) विस्तृत ज्ञान

(सुविताय) हमारे कल्याणार्थं (उषाः,अभूत्) प्रकाशित हो (मघोनी) हे सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न भगवन् ! आप (श्रवांसि) अपनी ज्ञानशक्ति को(अजीजनत्) प्रकाशित करें, हे ज्योतिः-स्वरूप ! (दिवः, देवी) द्युलोक की देवी (दुहिता) तुम्हारी दुहितारूप दिव्यशक्ति जो (अंगिरः, तमा) अत्यन्त गमनशील तमनाशक है वह (सुकृते) हमारे पुण्यों के लिये (वसूनि, दधाति) धनों को धारण करावे ॥३॥

भावार्थः—हे सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आपकी दुहितारूप विद्युतादि शक्तियें हमारे लिये कल्याणकारी होकर हमें अनन्त प्रकाश का धन धारण करावें, और आपका ज्ञान हमारे हृदय को प्रकाशित करे ॥३॥

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४॥

पदार्थः—(उषः) हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन् (अस्मभ्यं) हम लोगों को (अरदः) प्रथम (तावत्, राधः, रास्व) उतना धन प्रदान करें (यावत्) जितने से हम (गृणाना) आपको ग्रहण करने वाले (स्तोतृभ्यः) स्तोता विद्वानों को प्रसन्न कर सकें (यां, त्वा) जो आप को (वृषभस्य, रवेण, जज्ञुः) वृषभ के समान उच्चस्वर से प्रकट कर रहे हैं अर्थात् आप की स्तुति करते हैं, और हमारे लिये (दृळ्हस्य, दुरः, अद्रेः) दृढ़तायुक्त कठिन से कठिन मार्गों को (वि) भली-भांति (और्णोः) खोल दें ॥४॥

भावार्थः—हे सर्वपालक भगवन् ! आप हमको ऐश्वर्य्यसम्पन्न करें जिससे हम अपने वेदवेत्ता स्तोता आदि विद्वानों को प्रसन्न करें जो हमारे प्रति आपकी स्तुति उच्चस्वर से वर्णन करते हैं या यों कहो कि परमात्मस्तुतिकीर्तन करते हुए हमको आपकी उपासना में प्रवृत्त करते हैं,हे भगवन्! आप हम में ऐसी शक्ति प्रदान करें कि हम कठिन से कठिन मार्गों के द्वारों को खोलकर आप का दर्शन कर सकें ॥४॥

अब धनप्राप्ति की प्रार्थना करते हैं ॥

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (देवं देवं) सब श्रोताओं को (राधसे) धनप्राप्ति के लिये (चोदयन्ती) प्रेरित करें (अस्मद्र्यक्) हम यजमानों को (सूनृताः) उत्तम वेदवाणियों की ओर (व्युच्छंती) उत्साहित करें, और (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (सनये) दान के लिये (धाः) धारण कराते हुए (ईरयंती) उस ओर प्रेरें, जिससे हम दान में

समर्थ हों, और (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणरूप वाणियें से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—हे दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आप सब स्तोताओं को धनधान्यादि से भले प्रकार समृद्ध करें ताकि वह उत्तमोत्तम वेदवाणियों द्वारा आप का सदा स्तवन करते हुए हमारी बुद्धियों को आप की ओर प्रेरित करें, और हे भगवन्! आप हमें दानशील बनावें ताकि हम उत्साहित होकर स्तोता आदि अधिकारियों को दान देने में समर्थ हों, और आप हमें सदा के लिये पवित्र करें, यह प्रार्थना है ॥५॥

सप्तम मण्डल में ७९ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋचस्याशीतितमस्य सूक्तस्य १–३ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः–१ त्रिष्टुप् २ विराट् त्रिष्टुप् ३–निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ।

अब सब भुवनों तथा दिव्य पदार्थों की रचना परमात्मा से होना कथन करते हैं ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अंबुध्रन् ।
विवर्तयंती रजसी समंते आविष्कृण्वती भुवनानि विश्वा ॥१॥

पदार्थः—(विश्वा,भुवनानि) इस संसार के सम्पूर्ण भुवनों की (आविः कृण्वती) रचना करते हुए परमात्मा ने (विप्रासः) वेदवेत्ता ब्राह्मणों को (अबुध्रन्) बोधन किया, और (वसिष्ठाः) उन विशेषगुणसम्पन्न विद्वानों ने (प्रति उषसं) प्रत्येक उषा काल में (स्तोमेभिः, गीर्भिः) यज्ञरूप वाणियों द्वारा परमात्मा का स्तवन किया, और (समंते) अंत समय में (रजसी) रजोगुणप्रधान परमात्मशक्ति (विवर्तयंती) इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को लय करती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का वर्णन किया गया है अर्थात् संसार की उक्त तीनों अवस्थाओं का कारण एकमात्र परमात्मा है, वह परमात्मा इस संसार की रचना काल में प्रथम ऋषियों को वेद का ज्ञान देता है जिससे सब प्रजा उस रचयिता परमात्मा के नियमों को भले प्रकार जानकर तदनुसार ही आचरण करते हुए संसार में सुखपूर्वक विचरें, वही परमात्मा सब संसार का पालक पोषक और अन्त समय में वही सब का संहार करने वाला है ॥१॥

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥२॥

पदार्थः—(अग्रे) सृष्टि रचना से प्रथम (एषा, गूढ्वी) यह परमात्मा की गुह्य-शक्ति (ज्योतिषा, तमः) प्रकाशरूप ज्योति से तम का नाश करके (सूर्यं, यज्ञं, अग्निं) सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को (प्र) भले प्रकार (अचिकितत्) रचती और (उषा, अबोधि) उषा काल का बोधन करती हुई वह (अह्रयाणा,युवतिः) प्रकाशवती सदा युवावस्था-सम्पन्न रहती है (स्या) वह शक्ति (नव्यं, आयुः, दधाना) नवीन आयु को धारण करती हुई (एति) उसी परमात्मा में लय हो जाती है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की दिव्य शक्ति जिससे सृष्टि के आदि काल में पुनः रचना होती है वह परमात्मा की प्रकाशरूप ज्योति से प्रथम अन्धकार का नाश करती है, क्योंकि प्रलयकाल में यह सब संसार अन्धकारमय होता है, तत्पश्चात् सूर्य्यं, अग्नि और यज्ञ को रचकर उषाकाल का बोधन कराती है जिससे सब प्रजागण परमात्मा का स्तवन करते हुए अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, परमात्मा की उस दिव्य शक्ति में कभी विकार उत्पन्न नहीं होता, वह युवावस्था को प्राप्त हुई मनुष्यों को कर्मानुसार सदा बल, बुद्धि आदि नूतन भावों को प्रदान करती रहती है और अन्त में उसी परमात्मा में लय हो जाती है ॥२॥

अब इस सूक्त के अंत में परमात्मा के दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए उससे स्वस्ति की प्रार्थना करते हैं ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—हे परमात्मन्! आप (अश्ववातीः) सर्वंगतियों का आश्रय (गोमतीः) सब ज्ञानों का आधार (वीरवतीः) सब वीरतादि गुणों का आश्रय हो (नः) हमको (उषसः) प्रकाश वाले (भद्राः) भद्र गुण (सदं) सदा के लिये (उच्छंतु) प्राप्त करायें, आप (विश्वतः) सब ओर से (घृतं) प्रेम को (दुहानाः) उत्पन्न करने वाले (प्रपीताः) सब के आश्रय भूत हैं (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा का वर्णन करते हुए यह कथन किया है कि जिस प्रकार वर्तिका=बत्ती सब ओर से स्नेह=चिकनाई को अपने में

लीन करके प्रकाश करती है इसी प्रकार सब प्रेमी पुरुषों को परमात्मा प्रकाश=ज्ञान प्रदान करते हैं, वही परमात्मा वीरता, धीरता, ज्ञान तथा गति आदि सब सद्गुणों का आधार और प्रेममय पुरुषों का एकमात्र गति-स्थान है ॥३॥

सप्तम मण्डल में ८० वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

—:❀:—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥

अथ षड़्चस्य एकाशीतितमस्य सूक्तस्य १–६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः–१ विराड् बृहती । २ भुरिग्बृहती । ३ आर्षीबृहती । ४, ६ आर्षीभुरिग्बृहती । ५ निचृद्बृहती । मध्यमः स्वरः ॥

अब सर्वप्रेरक तथा सर्वप्रकाशक परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु१॒॑च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः ।
अपो॒ महि॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ॥१॥

पदार्थः—(ज्योतिः) सब का प्रकाशक (महि) बड़े (तमः) अंधकार को (व्ययति) नाश करने वाला (चक्षसे) प्रकाश के लिये (दिवः, दुहिता) उषा का (प्रति, उ, अदर्शि) प्रत्येक स्थान में प्रकाशित करने वाला (सूनरी, आयती) सुन्दर प्रकाश को विस्तृत आकाश में (उच्छंती) फैलाकर (अपो) जलों द्वारा सब दुःखों को दूर करता है ॥१॥

भावार्थः–दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से उषादि ज्योतियों का विकाश करता हुआ संसार के अंधकार को दूर करता और

विज्ञानी लोगों के लिए अपने प्रभूत ज्ञान का प्रकाश करता है, वही अपनी दिव्य शक्ति से वृष्टि द्वारा संसार का भरण-पोषण करता और वही सबको स्थिति देने वाला है ।।१।।

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।

तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ।।२।।

पदार्थः—(सूर्यः) सब का उत्पन्न करने वाला परमात्मा (उस्रियाः, सृजते) तेजोमंडल को रचता (उत्) और (सचा) साथ ही (नक्षत्रं) नक्षत्रों को (उत् यत्) उत्पन्न करता हुआ (अर्चिवत्) प्रकाशित करता है (तव, इत्, उषः) तुम्हारा वही तेज (व्युषि) हमको प्रकाशित करे, ताकि हम (सूर्यस्य) स्वतःप्रकाश आपको (सं, भक्तेन) भलेप्रकार श्रद्धापूर्वक (गमेमहि) प्राप्त हों ।।२।।

भावार्थः—हे सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मन् ! आपका तेजोमयस्वरूप जो सूर्य चन्द्रादि लोकों को प्रकाशित कर रहा है वह हमको भी ज्ञान से प्रकाशित करे ताकि हम आपको भक्तिभाव से प्राप्त हों अर्थात् हम लोग सदैव आपके ही स्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने जीवन को पवित्र करें ।।२।।

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।

या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ।।३।।

पदार्थः—(वनन्वति) हे सर्वभजनीय परमात्मन् ! (दिवः, दुहितः, उषः) द्युलोक की दुहिता उषा के द्वारा (जीराः) शीघ्र ही (त्वा, प्रति) आपको (अभुत्स्महि) भलेप्रकार जान, और (या) जो आप (पुरु, स्पार्हं, वहसि) बहुत धन सबको प्राप्त कराते और (दाशुषे) यजमान के लिए (रत्नं) रत्न (मयः) सुख देते हैं (न) उसीके समान हमें भी प्रदान करें ।।३।।

भावार्थः—हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हम उषाकाल में अनुष्ठान करते हुए आपके समीपी हों, आप ही सब सांसारिक रत्नादि ऐश्वर्य तथा आत्मसुख देनेवाले हैं, कृपा करके हमको भी अपने प्रिय यजमानों के समान अभ्युदय और निश्रेयसरूप दोनों प्रकार के सुखों को प्राप्त करायें । यहां मंत्र में "मयः" शब्द से आध्यात्मिक आनन्द का ग्रहण है, जैसाकि "नमः शम्भवाय च मयोभवाय च" इत्यादि मंत्रों में वर्णन किया है, इसी आनन्द की यहां परमात्मा से प्रार्थना की गई है ।।३।।

उच्छंती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४॥

पदार्थः—(देवि) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन्, (दृशे) विज्ञानियों के ज्ञानगोचर (या) जो आप (स्वः, प्रख्यै) अपनी ख्याति के लिये (मंहना) स्वमहिमा से (महि, कृणोषि) जगत् को रचकर (उच्छंती) अज्ञानरूप अंधकार का नाश करके अपने तेजोमय ज्ञान का प्रकाश करते हो (वयं) हम लोग (मातुः) माता के (सूनवः) बच्चों के (न) समान (स्याम) हों, और (तस्याः) पूर्वोक्तगुणसम्पन्न (ते) तुम्हारी (ईमहे) उपासना करते हुए (रत्नभाजः) रत्नों के पात्र बनें ॥४॥

भावार्थः—हे परमपिता परमात्मन् ! आपको ज्ञान द्वारा विज्ञानी पुरुष ही उपलब्ध कर सकते हैं साधारण पुरुष नहीं । हे दिव्यस्वरूप भगवन्! आप हमारे ज्ञानार्थं ही अपनी अपूर्व सामर्थ्य से इस जगत् की रचना करते हैं, आप माता के समान हम पर प्यार करते हुए हमारी सब प्रकार से रक्षा करें और हमें ज्ञानसम्पन्न करके अपनी उपासना का अधिकारी बनावें ताकि हम आपके अनुग्रह से धनधान्य से भरपूर हों ॥४॥

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥५॥

पदार्थः—(उषः) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् (यत्) जो (दीर्घश्रुत्तमं) घोर अन्धकाररूप अज्ञान है (तत्) उसको आप दूर करके (चित्रं, रायः, आ, भर) नाना प्रकार का उत्तम धन प्रदान करें, और (यत्) जो (ते) तुम्हारा (दिवः दुहितः) दूर देशों में हित करने वाला सामर्थ्य है उससे (मर्तभोजनं) मनुष्यों का भोजनरूप धन (रास्व) दीजिये ताकि (तत्) वह (भुनजामहै) हमारे उपभोग में आवे ॥५॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप महामोहरूपघोर अज्ञान का नाश करके हमें उत्तम ज्ञान की प्राप्ति करायें जिससे हम अपने भरण-पोषण के लिए धन उपलब्ध कर सकें । हे भगवन् ! कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों में आपका सामर्थ्य व्याप्त हो रहा है, आप हमारें पालनकर्ता और नाना प्रकार के ऐश्वर्यदाता हैं कृपा करके हमारे भोजन के लिए अन्नादि धन दें ताकि हम आपकी उपासना में प्रवृत्त रहें ॥५॥

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥६॥

पदार्थः—हे भगवन् (सूरिभ्यः श्रवः) विद्वानों के लिए यश, (अमृतं) अमृत (वसुत्वनं) उत्तम धन, तथा (वाजान्) नानाप्रकार के अन्न प्रदान करें, और (अस्मभ्यं) हमको (गोमतः) ज्ञान के साधन कलाकौशलादि (चोदयित्री) सबको प्रेरण करने वाली शक्ति (उषाः, मघोनः) उषा काल में यज्ञ करने का सामर्थ्य, और (सूनृतावती) उत्तम भाषण करने की शक्ति दें, और (अप, स्रिधः) हमसे संताप को (उच्छत्) दूर करें ।।६।।

भावार्थः—हे सर्वशक्तिसम्पन्न भगवन् ! आप शूरवीरों को वीरतारूप सामर्थ्य देने वाले, विज्ञानियों को विज्ञानरूप सामर्थ्य देते, आप ही नानाप्रकार के अन्न तथा ज्ञान के साधन कलाकौशलादि के प्रदाता हैं, आपही सब शोकों को दूर करके अमृत पद देने वाले हैं अर्थात् आप ही अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों प्रकार के उपभोग देते हैं ।।६।।

सप्तम मण्डल में ८१ वां सूक्त समाप्त हुआ ।

अथ दशर्चस्य द्व्यशीतितमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठ ऋषिः ।। इन्द्रावरुणौ देवते ।। छन्दः—१, २, ६, ७, ९—निचृज्जगती । ३ आर्ची भुरिग्जगती ।। ४, ५, १० आर्षी विराड्जगती ।। ८ विराड्जगती ।। निषादः स्वरः ।।

अब परमात्मा प्रजाजनों को राजधर्म का उपदेश करते हैं ।।

इन्द्रा॑वरुणा यु॒वम॑ध्व॒राय॑ नो वि॒शे जना॑य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छतम् ।
दी॒र्घप्र॑यज्यु॒मति॒ यो व॑नु॒ष्यति॑ व॒यं ज॑येम॒ पृत॑नासु दू॒ढ्यः॑ ।।१।।

पदार्थः—(दुः,ऽध्यः) दुर्बुद्धि लोग (पृतनासु) युद्धों में (यः) जो (वनुष्यति) अनुचित व्यवहार द्वारा जीतने की इच्छा करते और (दीर्घप्रयज्युम्) प्रयोग न करने योग्य पदार्थों का (अति) प्रयोग करते हैं उनको (वयं, जयेम) हम जीतें (इन्द्रावरुणा) हे अध्यापक तथा उपदेशको (युवं) आप (नः) हमारे (अध्वरा) संग्रामरूपयज्ञ और (विशे, जनाय) प्रजाजनों के लिये (महि, शर्म) बड़ा शान्तिकारक साधन (यच्छतं) दें, जिससे हम उनको विजय कर सकें ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम युद्ध में अप्रयुक्त पदार्थों का प्रयोग करने वाले दुष्ट शत्रुओं को जीतने का प्रयत्न करो और युद्धविद्यावेत्ता अध्यापक तथा उपदेशकों से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें युद्ध के लिए उपयोगी अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों की शिक्षा दें जिससे तुम दुष्ट शत्रुओं का हनन करके जगत् में शान्ति फैलाओ ।।१।।

सम्राळन्य स्वराळन्य उंच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावंसू।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥२॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो! तुम (अन्यः) एक को (सम्राट्) सम्राट् (अन्यः, स्वराट्) एक को स्वराट् बनाओ। (महान्तौ) हे महानुभाव (इन्द्रा वरुणा) अध्यापक तथा उपदेशको (वां) तुम्हें (उच्यते) यह उपदेश किया जाता है कि (वां) तुम (विश्वे, देवासः) सम्पूर्ण विद्वान् (ओजः) अपनी सामर्थ्य से (परमे, व्योमनि) इस विस्तृत आकाशमण्डल में (सं) उत्तमोत्तम (महावसू) बड़े धनों के स्वामी होओ, और (वृषण) आप सब लोग मिलकर (सं) सर्वोपरि (बलं, दधुः) बल को धारण करो ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा ने राजधर्म के संगठन का उपदेश किया है कि हे राजकीय पुरुषो, तुम अपने में से एक को सम्राट्=प्रजाधीश और एक को स्वराट् बनाओ, क्योंकि जब तक उपरोक्त दोनों शक्तियें अपने-अपने कार्यों को विधिवत् नहीं करतीं तब तक प्रजा में शान्ति का भाव उत्पन्न नहीं होता और न प्रजागण अपने-अपने धर्मों का यथावत् पालन कर सकते हैं "सम्यक् राजत इति सम्राट्"=जो भलीभांति अभिषेक करके राजा बनाया गया हो वह "सम्राट्" और "स्वयं राजत इति स्वराट्"=जो अपने कार्यों में स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय करे उसका नाम "स्वराट्" अर्थात् प्रजातन्त्र का नाम "स्वराट्" है, जो स्वतन्त्रतापूर्वक अपने लिए सुख-दुःख का विचार कर सके, इस प्रकार सम्राट् और स्वराट् जब परस्पर एक दूसरे के सहायक हों तभी दोनों बलों की सदैव वृद्धि होती है ॥२॥

अन्वपां खान्यंतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम्।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे राजपुरुषो! तुम (अस्य, मदे) इस राज्यप्रभुत्व में (धियः, पिन्वतं) अपने आपको कर्मयोग से पुष्ट करो (अनु) तदनन्तर (ओजसा) अपने तेज से (अपां,खानि) शत्रु के जलदुर्गों को (आ, अतृन्तं) भले प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके (दिवि, प्रभुं) दिन के प्रभु (सूर्यं) सूर्य को (ऐरयतं) अपने धूम्रवाणों से आच्छादन कर (मायिनः) मायावी शत्रुओं को (अपितः) सब ओर से (अपिन्वतं) परास्त करो ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो! तुम अपने उग्र कर्मों द्वारा शक्तिसम्पन्न होकर मायावी शत्रुओं का मर्दन करो अर्थात्

प्रथम अपनी जलयंत्र विद्या द्वारा उनके जलदुर्गों को विजय करो तदनन्तर अपनी पदार्थ विद्या से सूर्य के तेज को आच्छादन करके अर्थात् यंत्रों द्वारा दिन को रात्रि बनाकर शत्रुओं का विजय करो जो संसार में न्याय का भंग करते हुए अपनी माया से प्रजाओं में नाना प्रकार की पीड़ा उत्पन्न करते हैं, उनका सर्वनाश तथा श्रेष्ठों का रक्षण करना तुम्हारा परम कर्तव्य है ॥३॥

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे विद्वान् पुरुषो ! मैं तुम्हें (सुहवा) प्रेमपूर्वक (हवामहे) बुलाकर उपदेश करता हूँ कि तुम लोग (कारवः) कर्मशील बनकर (उभयस्य) राजा तथा प्रजा दोनों के कल्याण में (वस्वः) प्रयत्न करो, और (ईशाना) ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर (मितज्ञवः) व्यायामसाधित लघु शरीर वाले (क्षेमस्य, प्रसवे) सबके लिए सुख की वृद्धि करो (युवां) आप लोगों को उचित है कि (पृतनासु) युद्धों में (वह्नयः) उत्साही होकर (युत्सु) राज्य के संगठन में (युवां) तुम्हारा (इत्) ज्ञान वृद्धि को प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे अध्यापक तथा उपदेशको ! मैं तुम्हें बुलाकर अर्थात् ज्ञान द्वारा मेरे समीप स्थित हुए तुम्हें उपदेश करता हूं कि तुम अनुष्ठानी बनकर राजा तथा प्रजा दोनों के हित में प्रयत्न करो क्योंकि अनुष्ठानशील पुरुष ही उपदेशों द्वारा संसार का कल्याण कर सकता है अन्य नहीं, हे विद्वानो ! तुम युद्धविद्या के ज्ञाता बनकर सदैव अपने ज्ञान को बढ़ाते रहो, और युद्ध में उत्साहपूर्वक शत्रुओं का दमन करते हुए राज्य के संगठन में सदा प्रयत्न करते रहो ॥४॥

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रवरुणा) हे अग्नि तथा जलविद्यावेत्ता विद्वानो ! तुम लोग (मज्मना) अपने आत्मिक बल से (विश्वा, जातानि) सम्पूर्ण विश्व के अनुभव द्वारा (क्षेमेण) कुशलपूर्वक (भुवनस्य) संसार की रक्षा करो । (यत्) जो (इमानि, चक्रथुः) यह युद्धविद्याविषयक कार्य करते हो वह (मित्रः) संसार को सुखकारक हो, और (वरुणं) सबको आच्छादन करने वाली जलमय वायु को (दुवस्यति) दूर करके (उग्रः) युद्धविद्या में निपुण सैनिक पुरुष (मरुद्भिः) आकाश मण्डल में फैलने वाली वायुओं

द्वारा शत्रुओं को जीतें (अन्यः) अन्य सैनिक पुरुष (शुभं) शुभ साधनों द्वारा शत्रु को (ईयते) प्राप्त हों अर्थात् उसके सम्मुख जायें ॥५॥

भावार्थः—हे आग्नेय तथा जलीय अस्त्र-शस्त्रों के वेत्ता विद्वानो ! तुम लोग अपने अनुभव द्वारा राज्य विरोधी शत्रुओं को विजय करके सम्पूर्ण संसार की रक्षा करो, तुम कलाकौशल के ज्ञान द्वारा युद्धविषयक अस्त्र-शस्त्र निर्माण करो, और ऐसे अस्त्रों का प्रयोग करो जो आकाशमण्डल में फैलजाने वाली वायुओं द्वारा शत्रु का विजय करें अर्थात् प्रबल शत्रु को आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्र द्वारा विजय करो और साधारण शत्रु को शुभ साधनों से अपने वश में करो जिससे उसको घोर कष्ट न हो ॥५॥

म॒हे शु॒ल्काय॒ वरु॑णस्य॒ नु त्वि॒ष ओजो॑ मिमाते ध्रु॒वम॑स्य॒ यत्स्वम् ।
अजा॑मिम॒न्यः श्न॒थय॑न्त॒मात॑िरद्द॒भ्रेभि॑र॒न्यः प्र वृ॑णोति॒ भूय॑सः ॥६॥

पदार्थः—(वरुणस्य) वरुणास्त्र का प्रयोग करने वाला पुरुष (नु) निश्चय करके (महे, शुल्काय) बड़े ऐश्वर्य के लिए (त्विषे, ओजः) अपने तेज तथा बल द्वारा (मिमाते) शीघ्र ही शत्रु का (अतिरत्) हनन करता (अस्य) उसका (यत्) जो (ध्रुवं) निश्चल (स्वं) धन है वह (अजामि) शत्रु को (श्नथयंतं) नाश करदेता और (अन्यः) अन्य जो बल है वह (अतिरत्) हनन करता है, वह (अन्यः) अन्य (दभ्रेभिः) अल्प साधनों से ही (भूयसः) बहुत से शत्रुओं को (प्र, वृणोति) भले प्रकार अपने वश में कर लेता है ॥६॥

भावार्थः—वारुणास्त्र का प्रयोग करने वाला विद्वान् अल्प साधनों से ही शत्रुसेना का विजय करके उसकी सामग्री पर अपना अधिकार जमा लेता है, उसका शस्त्र-अस्त्ररूप धन शत्रुओं के नाश का कारण होता है अर्थात् उसके इस अपूर्व धन के सन्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता, वह अनेक शत्रुओं को विजय करके बड़ा ऐश्वर्यसम्पन्न होता है ॥६॥

अब दुराधर्ष राजा की विभूति कथन करते हैं ॥

न तमंहो॒ न दु॑रि॒तानि॒ मर्त्य॒मिन्द्रा॑वरुणा॒ न तपः॑ कुत॑श्च॒न ।
यस्य॑ देवा॒ गच्छ॑थो वी॒थो अ॑ध्व॒रं न तं मर्त॑स्य नशते॒ परि॑ह्वृतिः ॥७॥

पादर्थः—(यस्य) जिस राजा के (अध्वरं) यज्ञ को (देवा) शस्त्रास्त्रादिविद्या-सम्पन्न विद्वान् (वीथः) संगत होकर (गच्छथः) जाते हैं (तं) उस राजा को अथवा (मर्तस्य) मरणधर्मा मनुष्य को (परिह्वृति) कोई बाधा (नशते, न) नाश नहीं कर

सकती, और (न) न ही (कुतः, चन) किसी ओर से (तपः) कोई ताप उसका नाश कर सकता है। (मर्त्यं) जिस मनुष्य को (इन्द्रावरुणा) विद्युत् तथा जलीय विद्या जानने वाले विद्वान् प्राप्त होते हैं (तं) उसको (न, अंहः) न कोई पाप (न, दुरितानि) न कोई दुष्कर्म नाश कर सकता है॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा तथा यजमानो! तुम लोग अस्त्रशस्त्रविद्यासम्पन्न विद्वानों को अपने यज्ञों में बुलाओ, क्योंकि वरुणास्त्र तथा अग्नेयास्त्र आदि अस्त्र विद्या वेत्ता विद्वान् जिस राजा वा यजमान के यज्ञ में जाते हैं अथवा जिनका उपरोक्त विद्वानों से घनिष्ट संबंध होता है उनको न कोई शत्रु पीड़ा दे सकता और न कोई पाप उनका नाश कर सकता है अर्थात् विद्वानों के सत्संग से उनके पाप क्षय होकर जीवन पवित्र हो जाता है, इसलिए राजाओं को उचित है कि विद्वानों का सत्कार करते हुए उनको अपना समीपी बनावें जिससे वह किसी विपत्ति को न देखें॥७॥

अर्वाङ् नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम्॥८॥

पदार्थः—(नरा) हे मनुष्यो! तुम (अर्वाक्) मेरे सन्मुख आओ (उत) और (दैव्येन, अवसा) दिव्य रक्षा से (आगतं) आये हुए तुमको (हवं) उपदेश करता हूँ जिसको (शृणुतं) ध्यानपूर्वक सुनो (इन्द्रावरुणा) हे विद्वानो! (यत्) जो आप (यदि) यदि (नियच्छतम्) निष्कपट भाव से मनोदान देकर (मे) मेरे में (जुजोषथः) जुड़ोगे = प्रीति करोगे तो मैं (हि) निश्चय करके (युवोः, सख्यं) तुम्हारी मैत्री का पालन करूंगा (वा) अथवा (आप्यं) तुम्हें प्राप्त होने योग्य (मार्डीकं) सुख दूंगा॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्र आदि अस्त्र-शस्त्रों की विद्या में निपुण विद्वानो! तुम सरलभाव से मेरे में प्रीति करो अर्थात् शुद्ध हृदय से वेदाज्ञा का पालन करते हुए मेरे सन्मुख आओ मैं तुम्हें सखसम्पन्न करूंगा॥८॥

अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा।
यद्वां हवंत उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु॥९॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे विद्वानो! तुम (भरे-भरे) प्रत्येक संग्राम में (अस्माकम्) हमारे (पुरोयोधा) सन्मुख योद्धा (भवतं) होओ (कृष्टचोजसा) हे शत्रुओं के नाशक बलवालो! (यत्) जो (नरः) नेता (वां) तुम्हारा (स्पृधि) युद्ध में (तोकस्य,

तनयस्य, सातिषु) पुत्र पौत्र की रक्षा के निमित्त (हवन्ते) आह्वान करते हैं तुम उनकी रक्षा करो ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! तुम प्रत्येक संग्राम में मेरे सन्मुख होओ अर्थात् मुझसे विजयप्राप्ति के लिये प्रार्थना करो क्योंकि मेरी सहायता के विना कोई किसी को जय नहीं कर सकता, हे बड़े बलवान् योद्धाओ ! जो तुम्हारे साथ ईर्ष्या करते हैं वह भी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये है परन्तु प्रजा और धर्म की रक्षा करना तुम्हारा मुख्य कर्तव्य होने से तुम किसी का पक्षपात मत करो, सदा राजधर्म का पालन करना और राजा की आज्ञा में सदैव रहना तुम्हारा धर्म है जिसका अनुष्ठान करते हुए परमात्मा के समीपी होओ ॥६॥

अब राजपुरुषों से धन और परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना करते हैं ॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्रः) वैद्युतविद्यावेत्ता (वरुणः) जलीयविद्या के ज्ञाता (मित्रः) सबके मित्र (अर्यमा) न्याय करने वाले, जो राजकीय पुरुष हैं वे (अस्मे) हमें (द्युम्नं) ऐश्वर्य्य (यच्छन्तु) प्राप्त करायें, और (सप्रथः, महि, शर्म) सब से बड़ा सुख (ज्योतिः) स्वयंप्रकाश परमात्मा हमको नित्य प्रदान करें (अवध्रं) हमको नाश न करें ताकि हम (अदितेः) अखण्डनीय (ऋतावृधः) सत्यरूपयज्ञ के आधार (देवस्य) दिव्यशक्तिसम्पन्न (सवितुः) स्वतःप्रकाश परमात्मा के (श्लोकं) यश को (मनामहे) सदा गान करते रहें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि जिस प्रकार ऋग्, यजु, साम, अथर्व यह चारों वेद परमात्मा की आज्ञा पालन कराने के लिये चार विभागों में विभक्त हैं इसी प्रकार राज्यशासन भी चार विभागों में विभक्त जानना चाहिये अर्थात् आग्नेयास्त्र तथा वारुणास्त्रविद्या जानने वालों से सैनिक रक्षण और राजमन्त्री तथा न्यायाधीश इन दोनों से राज्यप्रबन्ध इस प्रकार उक्त चारों से धन की याचना करते हुए सदा ही इनके कल्याण का शुभचिन्तन करते रहो अर्थात् सम्राट् के राष्ट्रप्रबन्ध के उक्त चारों से सांसारिक सुख की अभिलाषा करो और दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मा से नित्य सुख की प्रार्थना करते हुए उनके दिव्य गुणों का सदा गान करते रहो जिससे तुम्हें सद्गति प्राप्त हो ॥१०॥

सप्तम मण्डल में ८२ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः–१, ३, ९ विराड्जगती । २, ४, ६ निचृज्जगती । ५ आर्ची जगती । ७, ८ १० आर्षीजगती ॥ निषादः स्वरः ॥

अब राजधर्म का वर्णन करते हुए सैनिक पुरुषों से रक्षा की प्रार्थना करते हैं ॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे शूरवीर योद्धाओ ! (युवां) तुम (आप्यं) सबको प्राप्त होने योग्य अर्थात् सब के रक्षक होओ । (पश्यमानासः) तुम्हारी वीरता देखकर (पृथुपर्शवः) सब ओर से हृष्ट पुष्ट वीर (नरा) मनुष्य (गव्यंतः) अपना आत्मसमर्पण करते हुए (ययुः) तुम्हें प्राप्त होते हैं (च) और (प्राचा, दासा) प्राचीन सेवक (च) और (आर्याणि) आर्य्य पुरुष भी तुम्हारी शरण चाहते हैं । तुम (वृत्रा, हतं) शत्रुओं का हनन करके (अवसा) रक्षा करते हुए (अवतं, सुदासं) दयावान् राजा को प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे शूरवीर विद्वानो ! तुम दास=शूद्र और आर्य्य=कर्मानुष्ठानपरायण पुरुषों की रक्षा करो, तुम इनके शत्रुओं का हनन करके इन्हें अभयदान दो, क्योंकि इनके होने से प्रजाजन वैदिकमर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते, सब अपनी मर्यादा में रह कर धर्म का पालन करते हैं, और हृष्ट-पुष्ट शूरवीर तुम्हें प्राप्त होकर युद्ध द्वारा आत्मसमर्पण करते हुए तुम्हारे उत्साह को बढ़ाते हैं, इसलिये इन्हें भी सुरक्षित रखो, क्योंकि शूरवीरों के अभाव से भी प्रजा में अनेक प्रकार के अनर्थ फैल जाते हैं जिससे मनुष्यों के जीवन में पवित्रता नहीं रहती ॥१॥

यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

पदार्थः—(यत्र) जिस संग्राम में (नरः) मनुष्य (कृतध्वजः) ध्वजा उठाये हुए (समयंते) भले प्रकार आगमन करते (यस्मिन्, आजा) जिस संग्राम में (किंचन, प्रियं, भवति) कुछ सुख हो (यत्र) जिस संग्राम में बड़े-बड़े योद्धा (भयंते) भयभीत होते, और (स्वर्दृशः, भुवना) जहां देवता लोग स्वर्गप्राप्ति को भी अधिक नहीं मानते (इन्द्रावरुणा) हे युद्धविद्या में निपुण विद्वानो ! (तत्र) वहां (नः) हमको (अधिवोचतं) भले प्रकार उपदेश करें ॥२॥

भावार्थः—जिस संग्राम में शत्रु लोग ध्वजा उठाये हुए हम पर आक्रमण करते हों अथवा जिस संग्राम में हमारा कुछ प्रिय हो, या यों कहो कि जब शत्रु हम पर चढ़ाई करें वा हम दुष्टों के दमन अथवा प्रजा का प्रिय करने के लिये शत्रु पर चढ़ाई करे, हे अस्त्रशस्त्रवेत्ता विद्वानो ! उक्त दोनों अवस्थाओं में आप हमारी शत्रु से रक्षा करे ॥२॥

सं भूम्या अंता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।

अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे युद्धविद्या में निपुण राजपुरुषो, (घोषः, दिवि, आरुहत्) तुम्हारे शस्त्रों का शब्द आकाश में व्याप्त हो (सं, भूम्याः, अंताः) सम्पूर्ण भूमि का अंत (ध्वसिराः) योद्धाओं से विनाश होता हुआ (अदृक्षत) देखा जाय (अरातयः) शत्रु (मां) मुझको (जनानां) सब मनुष्यों के समक्ष (उप, अस्थुः) आकर प्राप्त हो और (अवसा) रक्षा चाहते हुए (हवनश्रुता) वैदिकवाणियों के श्रवण द्वारा (अर्वाक्, आगतम्) हमारे सन्मुख आवें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजधर्म का पालन करने वाले विद्वानो ! तुम शत्रुसेना पर ऐसा घोर आक्रमण करो कि तुम्हारे अस्त्रशस्त्रों का शब्द आकाश में गूंज उठे जिससे तुम्हारे शत्रु वेदवाणी का आश्रयण करते हुए तुम्हारी शरण को प्राप्त हों अर्थात् अपने दुष्टभावों का त्याग करते हुए सब प्रजाजनों के समक्ष वेद की शरण में आवें, और तुम्हारे योद्धा लोग सीमान्तों में विजय प्राप्त करते हुए शत्रुओं के दुर्गों को छिन्न-भिन्न करके सर्वत्र अपना अधिकार स्थापन करें जिससे प्रजा वैदिकधर्म का भले प्रकार पालन करसके ॥३॥

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वंता प्र सुदासमावतम् ।

ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे राजधर्म का पालन करने वाले विद्वानो ! तुम (वधनाभिः) अनन्त प्रकार के शस्त्रों द्वारा (अप्रति, भेदं) प्रबल शत्रुओं को (वन्वंता) हनन करके (सुदासं, आवतं) भली-भांति नम्रभाव को प्राप्त राजा को प्राप्त होओ, और (एषां, तृत्सूनां) इन विद्वानों के (ब्रह्माणि) वेदपाठों को (शृणुतं) श्रवण करते हुए (पुरोहितिः) हितकारी बनो जिससे (हवीमनि) यज्ञों में (सत्या, अभवत्) सत्यरूप फल हो ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम वेद से बहि-

मुंख शत्रुओं का हनन करके वेदवेत्ता विद्वानों का सत्कार करो और उनका निरन्तर हित करते हुए उनके सत्संग से अपने जीवन को उच्च बनाओ, उनके यज्ञों की रक्षा करो जिससे उनका सत्यरूप फल प्रजा के लिये शुभ हो ॥४॥

इन्द्रावरुणावभ्या तपंति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।

युवं हि वस्वं उभयंस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणौ) हे विद्यासम्पन्न राजपुरुषो, (मा) मुझको (अर्यः) शत्रु और (अरातयः, वनुषां) हिंसक शत्रुओं के (अघानि) पापरूपशस्त्र (अभि, आतपंति) चारों ओर से तपाते हैं (हि) निश्चय करके (युवं) आप लोग (वस्वः) उनका सर्वस्व हरण करके (उभयस्य, राजथः) दोनों प्रकार के बलवान् शत्रुओं को (अध) नीचे गिरायें, और (नः, स्म, अवतं) हमारी उनसे रक्षा करते हुए (पार्ये, दिवि) विजयरूप पार को प्राप्त करायें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे इन्द्र तथा वरुणसमान युद्ध-विशारद विद्वानो ! तुम हिंसक तथा अन्य शत्रुओं का सर्वस्व हरण करके उनका नाश करो जो वेदविहित मर्यादा पर चलने वाले विद्वानों को तपाते= दुःख देते हैं, हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि उन शत्रुओं का युद्ध में अधःपतन हो और हम विजयरूप पार को प्राप्त हों ॥५॥

युवा हंवंत उभयांस आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।

यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६॥

पदार्थः—हे इन्द्र तथा वरुणरूप योद्धाओ ! (युवां) आपको हमलोग (उभयासः, आजिषु)दोनों प्रकार के युद्धों में (हवंते) बुलाते हैं। (इन्द्रं, च, वस्वः) इन्द्र को धन के लिये (च) और (वरुणं, सातये) वरुण को विजयप्राप्ति के लिये (यत्र) जिस युद्ध में (दशभिः, राजभिः) दशप्रकार के राजाओं से (निबाधितं) पीड़ा को प्राप्त (तृत्सुभिः, सह) तीनों प्रकार के ज्ञानियों के साथ (सुदासं) योग्य राजा को (आवतं) प्राप्त होओ ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे इन्द्र तथा वरुणरूप विद्वानो ! तुम युद्धों में विजय प्राप्त करते हुए कर्मानुष्ठानी तथा वेदविद्या-प्रकाशक विद्वानों की रक्षा करो अर्थात् कर्म, उपासना तथा ज्ञान द्वारा भक्ति-भाव को प्राप्त पुरुषों की सेवा में सदा तत्पर रहो जिससे उन्हें कोई कष्ट प्राप्त न हों ॥६॥

अब वेदानुयायी योद्धा का अपरिमित बल कथन करते हैं ॥

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥

पदार्थः—(अयज्यवः) अवैदिक (दश, राजानः) दश राजा (समिताः) इकट्ठे होकर (सुदासं) वेदानुयायी राजा से (न, युयुधुः) युद्ध नहीं कर सकते । (देवहूतिषु) युद्धों में (अद्मसदां, देवाः) यज्ञशील विद्वान् पुरुष (एषां) इन (नृणां) वेदानुयायी पुरुषों की (सत्या) सत्यरूप से (उपस्तुतिः) स्तुति (अभवन्) करते हैं (इन्द्रावरुणा) हे विद्यासम्पन्नराजपुरुषो ! तुम ऐसे साधनसम्पन्न पुरुषों की सहायता करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह उपदेश किया है कि राजा तथा राजकीय पुरुषों को सदा वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना चाहिये, क्योंकि व्रत, तप तथा अनुष्ठानशील राजा को दश राजा भी मिलकर युद्ध में पराजित नहीं कर सकते, दृढव्रती, कर्मकाण्डी तथा धीर वीर राजा की सब विद्वान् प्रशंसा करते और वही अपने सब कार्यों को विधिवत् करता हुआ संसार में कृतकार्य्य होता है, ऐसे धर्मज्ञ राजा की सब विद्वानों को सहायता करनी चाहिये ॥७॥

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यंचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवंतो असपंत तृत्सवः ॥८॥

पदार्थः—(यत्र) जिस युद्ध में (नमसा) प्रभुता से (कपर्दिनः) उत्तम अलंकारयुक्त (धीवंतः) बुद्धिमान् (तृत्सवः) कर्मकाण्डी (श्वित्यंचः) सदाचारी (असपन्त) युद्धरूप कर्म में (धिया) बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होता है, उस युद्ध में (विश्वतः) सब ओर से (दाशराज्ञे, परियत्ताय) दश राजाओं के आक्रमण करने पर (सुदासे) वेदानुयायी राजा को (इन्द्रावरुणौ) हे अस्त्र-शस्त्रों की विद्या में कुशल विद्वानो, (अशिक्षतं) बल प्रदान करो ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजा लोगो! तुम कर्मकाण्डयुक्त तथा सदाचारसम्पन्न होकर अपने कार्यों को विधिवत् करो और युद्धरूप कर्म में बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त होओ, जो सदाचारसम्पन्न राजा बुद्धिपूर्वक युद्ध करता है उसको अनेक राजा सब ओर से आक्रमण करने पर भी विजय नहीं कर सकते, परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे धनुर्विद्यासम्पन्न अध्यापक

तथा उपदेशको ! तुम ऐसे धर्मपरायण राजा की सदा सहायता करो जिससे वह शीघ्र कृतकार्य्य हो ॥ ८॥

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥९॥

पदार्थः—(अन्यः, समिथेषु) एक शूरवीर युद्धों में (वृत्राणि, जिघ्नते) शत्रुओं को विजय करता (अन्यः) एक (सदा) सदैव (अभि) सर्वप्रकार से (व्रतानि) नियमों की (रक्षते) रक्षा करता है। (इन्द्रावरुणा) इन्द्र तथा वरुणरूप योद्धाओ, (वां) आप (अस्मे) हमको (शर्म, यच्छतं) सुख प्राप्त करायें, क्योंकि आप (वृषणा) युद्ध की कामना पूर्ण करने वाले और (सुवृक्तिभिः) शुभ मार्गों में प्रवृत्त कराने वाले हैं, इसलिये (हवामहे) हम आपका आह्वान करते हैं ॥९॥

भावार्थः – जो राजा लोग व्रतों की रक्षा करते और दुष्ट शत्रुओं का दमन करते हैं, हे अस्त्रशस्त्रविद्यावेत्ता विद्वानो !, तुम उनकी सहायता करो, क्योंकि व्रतपालन तथा दुष्टदमन किये विना प्रजा में सुख का संचार कदापि नहीं हो सकता ॥९॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्रः) वैद्युतविद्यावेत्ता (वरुणः) जलीयविद्या के ज्ञाता (मित्रः) राजमन्त्री (अर्यमा) न्यायाधीश (अस्मे) हमको (द्युम्नं) दीप्ति वाला (महि) बड़ा (सप्रथः) विस्तृत (शर्म) सुख (यच्छन्तु) प्राप्त करायें। (ज्योतिः) हे दिव्यस्वरूप (अवध्रं) नित्य (अदितेः) अखण्डनीय (ऋतावृधः) सत्यस्वरूप (देवस्य) दिव्य स्वरूप (सवितुः) सब के उत्पादक परमात्मन् ! मैं आपकी (श्लोकं) स्तुति (मनामहे) करता हूं ॥१०॥

भावार्थः—हे न्यायाधीश परमात्मन् ! आप इन्द्रादि विद्वानों द्वारा हमको नित्य सुख की प्राप्ति करायें, और ऐसी कृपा करें कि हम आपके सत्यादि गुणों का गान करते हुए सदैव आपकी स्तुति में तत्पर रहें ॥१०॥

सप्तम मण्डल में ८३ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा प्रकारान्तर से राजधर्म का उपदेश करते हैं ॥

आ वां राजावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।

प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) हे इन्द्र तथा वरुण ! (वां राजानौ) प्रकाश वाले आप दोनों (अध्वरे) संग्राम में (ववृत्यां) आवें । (हव्येभिः, नमोभिः)हम नम्र वाणियों द्वारा आपका सत्कार करते हैं (वां) आपको (बाह्वोः) हाथों में (प्र) भले प्रकार (घृताची) स्रुवा (दधाना) धारण कराते हुए (परि, त्मना) शुभसंकल्प से (विषुरूपा) नाना प्रकार के द्रव्यों द्वारा (जिगाति) उद्बोधन करते हैं ॥१॥

भावार्थः परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमानो ! तुम अग्नि-विद्यावेत्ता तथा जल वायु आदि तत्वों की विद्या जानने वाले विद्वानों को दुष्ट दमनरूप संग्राम में बुलाओ और नम्रवाणियों द्वारा उनका सत्कार करते हुए उनको उद्बोधन करो कि हे भगवन् ! जिस प्रकार घृतादि पदार्थों से अग्नि देदीप्यमान होती है इसी प्रकार आप हमारे सन्मानादि भावों से देदीप्यमान होकर शत्रुरूप समिधाओं को शीघ्र ही भस्म करें जिससे हमारी शुभ कामनायें पूर्ण हों ॥१॥

अब प्रेम-रज्जू से बंधे हुए राष्ट्र की दृढ़ता का वर्णन करते हैं ॥

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।

परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

पदार्थः—(युवोः) हे राजा तथा राजपुरुषो ! तुम्हारा (राष्ट्रं) राज्य (द्यौः, बृहत्, इन्वति) द्युलोकपर्य्यन्त बड़ा विस्तृत हो (यौ) तुम दोनों (परि) सब ओर से (सेतृभिः, अरज्जुभिः सिनीथः) प्रेमरूप रज्जुओं में बंधे हुए (नः)हमको प्राप्त होओ (उ) और (लोकं) तुम्हारे लोक को (इन्द्रः) विद्युदविद्यावेत्ता विद्वान् (कृणवत्) रक्षा करें (वरुणस्यः, हेळः) जलविद्यावेत्ता विद्वान् का आक्रमण (वृज्याः) तुम पर न हो, और तुम प्रार्थना करो कि (नः) हमको (उरुम्) विस्तृत लोकों की प्राप्ति हो ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे राजपुरुषो ! तुम सदैव अपने राष्ट्र की वृद्धि में लगे रहो और उनको प्रेमरूप रज्जु के बन्धन से ऐसा बांधो कि वह किसी प्रकार से भी शिथिलता को प्राप्त न हो, अधिक क्या, जिनके राष्ट्र दृढ़ बन्धनों से बंधे हैं उन पर न कोई जलयानों द्वारा आक्रमण कर सकता और न कोई विद्युत् आदि शक्तियों से उनको हानि पहुंचा सकता है, जो राजा अपने राष्ट्र को दृढ़ बनाने के लिये प्रजा में प्रेम

उत्पन्न करता अर्थात् अन्याय और दुराग्रह का त्याग करता हुआ अपने को विश्वासार्ह बनाता है तब वह दोनों परस्पर उन्नत होते और पृथिवी से लेकर द्युलोकपर्य्यन्त सर्वत्र उनका अटल प्रभाव हो जाता है, इस लिये उचित है कि राजा अपने राष्ट्र को दृढ़ बनाने के लिये प्रजा में प्रेम उत्पन्न करे, प्रजा में प्रेम का संचार करने वाला राजा ही अपने सब कार्यों को विधिवत् करता और वही अन्ततः परमात्मा को प्राप्त होता है ॥२॥

कृतं नो॑ य॒ज्ञं वि॒दथे॑षु॒ चारुं॑ कृ॒तं ब्रह्मा॑णि सू॒रिषु॑ प्रश॒स्ता ।
उपो॑ र॒यिर्दे॒वजू॑तो न एतु॒ प्र णः॑ स्पा॒र्हाभि॑रू॒तिभि॑स्तिरेतम् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजपुरुषो ! (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ को (विदथेषु) गृहों में (चारुं, कृतं) सुन्दर बनायें (ब्रह्माणि) वैदिकस्तोत्रों को (सूरिषु) शूरवीरों में (प्रशस्ता, कृतं) प्रशंसनीय बनाओ (नः) हमारे (देवजूतः) आपकी रक्षा से (उपो, एतु, रयिः) उत्तमोत्तम पुष्कल धन प्राप्त हो, और (नः) हमको (प्र) सर्व प्रकार की (स्पार्हाभिः) अभिलषित (ऊतिभिः) रक्षाओं से (तिरेतं) उन्नत करो ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे न्यायाधीश तथा सेनाधीश राजपुरुषो ! तुम प्रजाजनों को प्राप्त होकर उनके घरों को यज्ञों द्वारा सुशोभित करो और शूरवीरों को वैदिकशिक्षा दो ताकि वह वेदवाणिरूप ब्रह्मस्तोत्रों का प्रजा में भली-भांति प्रचार करें और राजा तथा प्रजा दोनों ऐश्वर्य्ययुक्त पदार्थों से भरपूर हों, और प्रजाजन भी उन विद्वानों से प्रार्थना करें कि हे भगवन् ! आपकी रक्षा से हमको पुष्फल धन प्राप्त हो और हम आपकी रक्षा में रहकर मनोभिलषित उन्नति करें ॥३॥

अ॒स्मे इ॑न्द्रावरुणा वि॒श्ववा॑रं र॒यिं ध॑त्तं॒ वसु॑मन्तं पुरु॒क्षुम् ।
प्र य आ॑दि॒त्यो अनृ॑ता मि॒नात्यमि॑ता॒ शूरो॑ दयते॒ वसू॑नि ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणा) इन्द्र=परमैश्वर्य्ययुक्त तथा वरुण=सब का उपास्यदेव परमात्मा (विश्ववारं) सबको रुचिकर (वसुमंतं) सब प्रकार के धनों से युक्त (रयिं, धत्तं) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को धारण करने वाला (पुरुक्षुं) नाना प्रकार के अन्नों से युक्त, और (यः) जो (प्र) भले प्रकार (आदित्यः) अज्ञान का नाश करने वाला है वह (अनृता, मिनाति) असत्यवादियों को दण्ड देता, और (शूरः) शूरवीरों को (अमिता, वसूनि, दयते) यथेष्ट धन देता है (अस्मे) कृपा करके हमें भी ऐश्वर्य्ययुक्त करें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! तुम सब प्रकार

के ऐश्वर्य्यं तथा धन की याचना उसी परमात्मा से करो, क्योंकि वही पर-मैश्वर्य्ययुक्त, नानाप्रकार के अन्नरूप धनों का स्वामी और वही सब संसार को यथाभाग देने वाला है, वह अनृतवादियों को दण्ड देता और धर्मात्मा शूरवीरों को यथेष्ट धन का स्वामी बनाता है, इसलिये उचित है कि सब प्रजाजन सत्यपरायण होकर परमात्मा से ही धन की प्रार्थना करें ॥४॥

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(मे) मेरी (इयं) यह (गीः) वेदरूप वाणी (इन्द्रं, वरुणं) सर्वैश्वर्य्य-युक्त तथा सर्वोपरि परमात्मा को (अष्ट) प्राप्त हो (तूतुजाना) यह ईश्वरीय वाणी (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र के लिये (प्र, आवत्) भले प्रकार रक्षा करे. और हम लोग (सुरत्नासः) धनादि ऐश्वर्य्यसम्पन्न होकर (देववीतिं) विद्वानों की यज्ञशालाओं को (गमेम) प्राप्त हों, और हे परमात्मन् ! (यूयं) आप (नः) हमको (स्वस्तिभिः) आशीर्वादरूप वाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यजमान की ओर से प्रार्थना कथन की गई है कि हे भगवन्! हमारा किया हुआ स्वाध्याय तथा वैदिककर्मों का अनुष्ठान, यह सब आप ही का यश है, क्योंकि इन्हीं कर्मों के अनुष्ठान से हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तानों की वृद्धि होती और हम ऐश्वर्य्यसम्पन्न होकर आपके भक्तिभाजन बनते हैं अर्थात् वैदिक कर्मों के अनुष्ठान द्वारा ही मनुष्य को पुत्र-पौत्रादि सन्तति प्राप्त होती और इसी से धनादि ऐश्वर्य्य की वृद्धि होती है, इसलिये जिज्ञासुओं को उचित है कि वह धनप्राप्ति तथा ऐश्वर्य्यवृद्धि के लिये वैदिक कर्मों का निरन्तर अनुष्ठान करें और सन्तति-अभिलाषियों के लिये भी यही कर्म उपादेय है ॥५॥

सप्तम मण्डल में ८४ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पंचाशीतितमस्य सूक्तस्य १–५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ आर्चीत्रिष्टुप् । २, ३, ५, निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब राजधर्म का वर्णन करते हुए सैनिक पुरुषों के सहायतार्थ सोमादि द्रव्यों का प्रदान कथन करते हैं ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।

घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (अभीके) इस धर्मयुद्ध में (इन्द्रस्य, वरुणस्य) इन्द्र तथा वरुण के लिए (सोमं, जुह्वत्) सोमरस प्रदान करके यह कथन करो कि (वां) आपको (अरक्षसं) आसुरभावरहित (घृत प्रतीकां) घृत के समान स्नेह वाली (मनीषां) बुद्धि द्वारा प्रार्थना करके (पुनीषे) पवित्र करें (उषसं) उषा के (न) समान (देवीं) दिव्यरूपा (ता) बुद्धि द्वारा (यामन्) युद्ध की चढ़ाई के समय (नः) हमको (उरुष्यतां) सेवन करें ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे प्रजाजनो ! तुम इन्द्र=परमैश्वर्ययुक्त शूर वीर तथा वरुण=शत्रुसेना को शस्त्रों द्वारा आच्छादन करने वाले वीर पुरुषों का सोमादि उत्तमोत्तम पदार्थों से सत्कार करके उन्हें प्रसन्न करते हुए अपनी स्नेहपूर्ण शुद्ध बुद्धि द्वारा सदैव उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना करो, जिससे वह शत्रुओं को पराजय करके तुम्हारे लिए सुखदायी हों, तुम युद्ध में चढ़ाई के समय उनके सहायक बनो और उनको सदा प्रेम की दृष्टि से देखो, क्योंकि जहां प्रजा और राजपुरुषों में परस्पर प्रेम होता है वहां सदैव आनन्द बना रहता है, इसलिए तुम दोनों परस्पर प्रेम की वृद्धि करो ॥१॥

अब अन्यायकारी शत्रुओं को परास्त करने का उपदेश करते हैं ॥

स्पर्धन्ते वा उं देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतंति ।

युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्रावरुणौ) हे इन्द्र तथा वरुण ! तुम (अमित्रान्) शत्रुसेना को (पराचः) पराजय करके (शर्वा, विषूचः) हिंसक शस्त्रों से (हतं) उनको हनन करो, और (देवहूये) इस देवासुर संग्राम में (येषु, ध्वजेषु) जिन ध्वजाओं में (दिद्यवः, पतंति) शत्रुओं के फेंके हुए शस्त्र गिरते हैं (वै) निश्चय करके (अत्र) उन स्थलों में ध्वजाओं की रक्षा करो, और जो (युवं) तुम दोनों से (स्पर्धन्ते) ईर्ष्या करते हैं उनका (ऊ) भली भांति हनन करो ॥२॥

भावार्थः—इन्द्र=विद्युत् की शक्ति जानने वाला, वरुण=जलयानों की विद्या जानने वाला, हे विद्युत् तथा जलीय विद्याओं के जानने वाले सेनाध्यक्षो ! तुम असुर सेना के हनन करने के लिए सदा उद्यत रहो, और युद्ध करते हुए अपनी सेना के झंडों की बड़े प्रयत्न से रक्षा करो, और अपने साथ ईर्ष्या करने वालों को सदा परास्त करते रहो ताकि कोई अन्यायकारी पुरुष तुम्हें कभी दबाकर अन्याय न कर सके, यह तुम्हारे लिए ईश्वरीय आदेश है ॥२॥

आपंश्चिद्धि स्वयंशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयंति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अंप्रतीनिं हंति ॥३॥

पदार्थः—हे सेनाधीश (हि) निश्चय करके (आपः, चित्) सर्वत्र व्यापक होकर (स्वयशसः) अपने यश से (सदःसु) उपासनीय स्थानों में (देवीः) दिव्यशक्तिसम्पन्न (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् (वरुणं) सबको स्वशक्ति में रखने वाले परमात्मा की (देवता) दिव्यशक्तियों को (धुः) धारण कर (अन्यः) कोई (कृष्टीः) प्रजा को (धारयति) धारण करता है जो (प्रविक्ताः) भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों के कर्मों को जानता है (अन्यः) अन्य (वृत्राणि) मेघों के समान नभोमण्डल में फैले हुए (अप्रतीनि) वश में न आने वाले शत्रुओं को (हंति) हनन करता है ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मशक्तियों को धारण करके भिन्न-भिन्न कर्मों के ज्ञाता हैं वह परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा की उपासना करते हुए न्यायाधीश के पद पर स्थित होते हैं और जो बुद्धिविद्याविशारद होते हैं वह आकाशस्थ शत्रु की सेना को मेघमण्डल के समान अपने प्रबल वायुसदृश वेग से छिन्नभिन्न करते हैं अर्थात् दिव्यशक्तिसम्पन्न राजपुरुष न्यायाधीश बनकर प्रजा में उत्पन्न हुए दोषों को नाश करके उसको धर्मपथ पर चलाते और दूसरे सेनाधीश बनकर वश में न आने वाले शत्रुओं को विजय करके प्रजा में शान्ति फैलाते हुए परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं ॥३॥

स सुक्रतुर्ऋतचिदंस्तु होता य आंदित्य शवंसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवंसे वां हविष्मानसदित्स सुंविताय प्रयंस्वान् ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह पुरुष (सुक्रतुः) उत्तम कर्मों के करने वाला (ऋतचित्) वही सत्यवादी (होता) वही यज्ञ करने वाला (अस्तु) है (यः) जो (आदित्य) आदित्य के समान तेजस्वी होकर (शवसा) अपने सामर्थ्य से (वां) इन्द्र तथा वरुण शक्ति को (नमस्वान्) सबसे बड़ी समझता और जो (वां) इन्द्र तथा वरुण शक्ति को (अवसे) रक्षा के लिए (आववर्तत्) वर्ताव में लाता है, और जो (हविष्मान्) सदैव यज्ञादि-कर्म करता है (सः) वह (इत्) निश्चय करके (प्रयस्वान्) ऐश्वर्ययुक्त होकर (सुविताय) संसार में यशस्वी (असत्) होता है ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम इन्द्र=विद्युत् तथा वरुण=वायुरूपशक्ति को काम में लाओ, जो इन शक्तियों को व्यवहार में लाता है वह ऐश्वर्यसम्पन्न होकर सम्पूर्ण संसार में

फैलता अर्थात् उसकी अतुल कीर्ति होती है और वही पुरुष तेजस्वी बनकर अमित्र सेना का हनन करने वाला होता है ॥४॥

अब उक्त शक्तिसम्पन्न होने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ॥

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।

सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(मे) मेरी (इयं) यह (गीः) वेदरूपवाणी (इन्द्रं, वरुणं) इन्द्र तथा वरुणरूप शक्ति को (अष्ट) प्राप्त हो (तूतुजाना) यह प्रार्थनारूप वाणी (तोके, तनये) पुत्र-पौत्रों के लिए (प्र, आवत्) भले प्रकार सफल हो, और हम लोग (सुरत्नासः) धनादि ऐश्वर्यसम्पन्न होकर (देववीतिं) विद्वानों की यज्ञशालाओं को (गमेम) प्राप्त हों, और हे परमात्मन् !(यूयं) आप (नः) हमको (स्वस्तिभिः) आशीर्वादरूप वाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! हम आपकी कृपा से विद्युत् तथा वायुरूप शक्तियों की विद्या जानने वाले विद्वानों को सदैव प्राप्त होते रहें अर्थात् ऐसी कृपा करें कि हम उन विद्वानों के संग से उक्त विद्या की वृद्धि द्वारा अपने जीवन को उच्च बनावें और हमारा किया हुआ वेदपाठ तथा यज्ञादि सत्कर्म हमारी सन्तानों को पवित्र करें और आप हमको मंगलमय वाणियों से सदैव पवित्र करते रहें, यह हम यजमानों की प्रार्थना है ॥५॥

सप्तम मण्डल में ८५ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य—१-८ वसिष्ठ ऋषि ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः १, ३, ४, ५, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ६ आर्षीत्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब वरुणस्वरूप परमात्मा की उपासना से मनुष्यजीवन की पवित्रता कथन करते हैं ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।

प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (वि) भलीभांति (रोदसी) द्युलोक(चित्) और (उर्वी) पृथ्वी लोक को (तस्तंभ) थामे हुए है, और जो (बृहंतं) बड़े-बड़े (नक्षत्रं) नक्षत्रों को (च) और (भूम) पृथिवी को (पप्रथत्) रचता, तथा (नाकं) स्वर्ग (ऋष्वं)

नरक को (द्विता) दो प्रकार से (नुनुदे) रचता है (तु) निश्चय करके (अस्य) इस वरुणरूप परमात्मा को (धीरा) पुरुष (महिना) महत्त्व द्वारा (जनूंषि) जानते अर्थात् उसके ज्ञान को लाभ करते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो परमात्मा इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रचयिता है और जिसने कर्मानुसार स्वर्ग=सुख और नरक=दुःख को रचा है उसके महत्त्व को धीर पुरुष ही विज्ञान द्वारा अनुभव करते हैं, जैसा कि अन्यत्र भी वर्णन किया है ॥१॥

अब परमात्मा की उपासना का प्रकार कथन करते हैं ॥

उत स्वया तन्वा३सं वंदे तत्कदा न्वं१तर्वरुणे भुवानि ।

किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२॥

पदार्थः—(उत) अथवा (स्वया, तन्वा) अपने शरीर से (सं) भले प्रकार (तत्) उस उपास्य के साथ (वेद) आलाप करूं (कदा) कब (नु) निश्चय करके (वरुण, अंतः) उस उपास्यदेव के स्वरूप में (भुवानि) प्रवेश करूंगा (किं) क्या परमात्मा (मे) मेरी (हव्यं) उपासनारूप भेंट को (अहृणानः) प्रसन्न होकर (जुषेत) स्वीकार करेंगे (कदा) कब (मृळीकं) उस सर्व सुखदाता को (सुमनाः) संस्कृत मन द्वारा (अभि, ख्यं) सब ओर से ज्ञानगोचर करूंगा ॥२॥

भावार्थः—उपासक पुरुष उपासना काल में उस दिव्यज्योति परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे भगवन् ! आप मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करें कि मैं आपके समीप होकर आपसे आलाप करूं, हे सर्वनियन्ता भगवन् ! आप मेरी उपासना रूप भेंट को स्वीकार करके ऐसी कृपा करें कि मैं सर्वसुख-दाता आपको अपने पवित्र मन द्वारा ज्ञानगोचर करूं, आप ही की उपासना में निरन्तर रत रहूँ और एकमात्र आप ही मेरे सन्मुख लक्ष्य हों अर्थात् उपासक पुरुष नानाप्रकार के तर्क-वितर्कों से यह निश्चय करता है कि मैं ऐसे साधन सम्पादन करूं जिनसे उस आनन्दस्वरूप में निमग्न होकर आनन्द का अनुभव करूं ॥२॥

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।

समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥३॥

पदार्थः—(वरुण) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, (तत्) वह (एनः) पाप (पृच्छे) आपसे पूछता हूँ (उपो, दिदृक्षु) आपके दर्शन का अभिलाषी मैं (चिकितुषः) सर्वथा बन्धनरहित होकर (एमि) आपको प्राप्त होऊं (कवयः) विद्वान् पुरुष (विपृच्छं)

भले प्रकार पूछने पर (समानं) आपके विषय में (मे) मुझको (चित्) निश्चयपूर्वक (आहुः) यह कहते हैं (ह) प्रसिद्ध है कि (अयं) यह (वरुणः) सर्वशक्तिमान् परमात्मा (तुभ्यं) उपासकों को (इत्) निश्चय करके (हृणीते) पापों से उभारकर सुख की ओर ले जाना चाहता है ॥३॥

भावार्थः—हे सर्वव्यापक ! मैं उन पापों को कैसे जानूं जिनके कारण आपके दर्शन से वंचित हूं, हे सर्वपालक ! ऐसी कृपा कर कि मैं उन पापों से छूटकर आपको प्राप्त होऊं, यह प्रसिद्ध है कि वेदों के ज्ञाता विद्वान् पुरुष पूछने पर निश्चयपूर्वक यह कहते हैं कि परमात्मा सबका मंगल, कल्याण चाहते हैं, यदि उपासक अंशमात्र भी उनकी ओर झुके तो वह दयालु भगवान् स्वयं उसका उद्धार करते हैं, इसलिये पुरुष को चाहिये कि वह साधनसम्पन्न होकर परमात्मा की उपासना में प्रवृत्त हो तभी उसका उद्धार हो सकता है अन्यथा नहीं ॥३॥

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।

प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

पदार्थः—(वरुण) हे मंगलमय परमात्मन् ! वह (किं) क्या (ज्येष्ठं) बड़े (आगः) पाप (आस) हैं (यत्) जिनके कारण (सखायं) मित्ररूप आप (स्तोतारं) उपासकों को (जिघांससि) हनन करना चाहते हैं (तत्) उनको (प्र) विशेषरूप से (मे) मेरे प्रति (वोचः) कथन करें (दूळभ) हे सर्वोपरि अजेय परमात्मन् (त्वा) आप (स्वधावः) ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, इसलिये (अनेनाः) ऐसे पापों से (अव) रक्षा करें, ताकि मैं (नमसा) नम्रतापूर्वक (तुरः) शीघ्र ही (इयां) आपको प्राप्त होऊं ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपासक अपने पापों के मार्जननिमित्त परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे महाराज ! वह मैंने कौन बड़े पाप किये हैं जिनके कारण मैं आपको प्राप्त नहीं हो सकता अथवा आपकी प्राप्ति में विघ्नकारी हैं, हे मित्ररूप परमेश्वर ! आप मेरा हनन न करते हुए अपनी कृपा द्वारा उन पापों से मुझे निर्मुक्त करें ताकि मैं शीघ्र ही आपको प्राप्त होऊं ॥४॥

अब पैत्रप्रकृति द्वारा आये हुए पापों के मार्जनार्थ प्रार्थना कथन करते हैं ॥

अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।

अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥५॥

पदार्थः—(राजन्) हे सर्वोपरिविराजमान जगदीश्वर ! आप (द्रुग्धानि, पित्र्या) माता-पिता की प्रकृति से (नः) हम में आये हुए दोष और (या) जिनको (वयं) हमने (तनूभिः) शरीर द्वारा (चकृम) किया है और जो (पशुतृपं) पशुओं के समान हमारी विषयवासनारूप वृत्ति तथा (तायुं, न) चोरों के समान हमारे भाव हैं उनको (अवसृज) दूर करके (दाम्नः) रज्जु के साथ बंधे हुए (वत्स) वत्स के (न) समान (वसिष्ठं) विषय वासनाओं में लिप्त मुझको (अव, सृज) मुक्त करें ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में विषयवासना में लिप्त जीव की ओर से यह प्रार्थना की गई है कि हे जगदीश्वर ! जो स्वभाव मेरे माता-पिता की ओर से मुझ में आया है अथवा मैंने अपने दुष्कर्मों से जो प्रकृति बनाली है उसको आप अपनी कृपा से दूर करके मुझको अपना समीपी बनावें, जिस प्रकार रज्जु से बंधा हुआ वत्स अपनी माता का दूध नहीं पी सकता इसी प्रकार विषयवासनारूप रज्जु में बंधा हुआ मैं आपके स्वरूपरूपी कामधेनु का दुग्ध पान नहीं कर सकता, हे प्रभो ! आपसे विमुख करने वाले विषय-वासनारूप बन्धनों से मुक्त करके मुझको आनन्द का भोक्ता बनायें, यह मेरी आपसे प्रार्थना है ॥५॥

प्रारब्धजन्य कुप्रवृत्ति से आये हुए पापों के मार्जनार्थ प्रार्थना कथन करते हैं ॥

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥

पदार्थः—(वरुण) हे सबको स्वशक्ति में वेष्टन करने वाले परमात्मन्, (स्वः) अपनी प्रकृति से जो (दक्षः) कर्म किया जाता है (सः) वही पापप्रवृत्ति में कारण (न) नहीं होता, किन्तु (ध्रुतिः) मन्दकर्मों में जो दृढ़ प्रवृत्ति है (सा) वह (सुरा) मद के तुल्य होने से (मन्युः) क्रोध, पापप्रवृत्ति का कारण है, और (विभीदकः) द्यूतादि व्यसन तथा (अचित्तिः) अज्ञान (अस्ति) है (ज्यायान्, कनीयसः, उपारे) इस तुच्छ जीव के हृदय में अन्तर्यामी पुरुष भी है जो शुभकर्मी को शुभकर्मों की ओर उत्साह देता और मन्दकर्मी को मन्दप्रवाद की ओर प्रवाहित करता है (स्वप्नः, चन, इत्) स्वप्न का किया हुआ कर्म भी (अनृतस्य, प्रयोता) अनृत की ओर लेजाने वाला होता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र का आशय यह है कि अपने स्वभाव द्वारा किया हुआ कर्म ही पाप की ओर नहीं लेजाता किन्तु (१) जीव की प्रकृति=स्वभाव (२) मन्दकर्म (३) अज्ञान (४) क्रोध (५) ईश्वर का नियमन, यह

पांच जीव को सद्गति वा दुर्गति में कारण होते हैं, जैसाकि कौषीतकी उप० में वर्णन किया है कि "एष एव साधुकर्म कारयति, तं यमधो निनीयते" कौ० ३।३।८=जिसको वह देव अधोगति को प्राप्त करना चाहता है उसको नीचे की ओर लेजाता, और जिसको उच्च बनाना चाहता है उसको उन्नति के पथ पर चलाता है । यहां यह शंका होती है कि ऐसा करने से ईश्वर में वैषम्य तथा नैर्घृण्यरूप दोष आते हैं अर्थात् ईश्वर ही अपनी इच्छा से किसी को नीचा और किसी को ऊंचा बनाता है । इसका उत्तर यह है कि ईश्वर पूर्वकृत कर्मों द्वारा फलप्रदाता है और उस फल से स्वयंसिद्ध ऊंच-नीचपन आजाता है, जैसे किसी पुरुष को यहां नीचकर्म करने का दण्ड मिला, उतने काल में जो वह स्वकर्म करने से वंचित रहा इससे वह दूसरों से पीछे रह गया, इस भाव से ईश्वर जीव की उन्नति तथा अवनति का हेतु है, वास्तव में जीव के स्वकृतकर्म ही उसकी उन्नति तथा अवनति में कारण होते हैं, इसी भाव से जीव को कर्म करने में स्वतंत्र और भोगने में परतंत्र माना है । कर्मानुसार फल देने से ईश्वर में कोई दोष नहीं आता ॥६॥

अब जीव ईश्वर से स्वकल्याण की प्रार्थना करता है ॥

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥७॥

पदार्थः—(अहं) मैं (अनागाः) निष्पाप होकर (देवाय) परमात्मदेव से (दासः, न) दास के समान (अरं, कराणि) अपनी कामनाओं के लिये प्रार्थना करता हूं (मीळ्हुषे) वह कर्मों का फलप्रदाता (अचितः, अचेतयत्) अज्ञानियों को मार्ग बतलाने वाला (अर्यः) सबका स्वामी (देवः) दिव्यगुणस्वरूप और (कवितरः) सर्वज्ञ परमात्मा (गृत्सं) यजन करने वालों को (राये, जुनाति) ऐश्वर्य्य की ओर प्रेरित करे ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा के अज्ञानियों का पथप्रदर्शन होने से जीव अपने कल्याण की प्रार्थना करता हुआ यह कथन करता है कि हे परमात्मदेव ! मैं आप के निमित्त यजन करता हुआ प्रार्थी हूं कि कृपा करके आप मेरे कल्याणार्थ मुझे ऐश्वर्य्यसम्पन्न करें ॥७॥

अब परमात्मा जीवों को उनके योगक्षेम के लिये प्रार्थना करने का प्रकार कथन करते हैं ॥

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थः—(वरुण) हे सर्वोपरि वरणीय परमात्मन् ! (तुभ्यं) आपको (अयं) यह (सु, स्तोमः) सुन्दर यज्ञ (उपश्रितः, अस्तु) प्राप्त हो । (स्वधावः) हे अन्नादि के दाता (चित्) चेतनस्वरूप (हृदि) यह मेरी आपसे हार्दिक प्रार्थना है कि आप (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी हों (ऊ) और (योगे, क्षेमे) योग=अप्राप्त की प्राप्ति तथा क्षेम=प्राप्त की रक्षा कीजिये जिससे (नः) हमको (स्वस्तिभिः) मंगलमय-वाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन् ! यह हमारा किया यज्ञ आपको प्राप्त हो, आप कृपा करके हमारे योगक्षेम की रक्षा करते हुए हमारे भावों को पवित्र करें। अधिक क्या, जो परमात्मा में सदैव रत रहते हैं उनके योग-क्षेम-निर्वाह के लिये परमात्मा स्वयं उद्यत होते हैं ॥८॥

सप्तम मण्डल में ८६ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्ताशीतितमस्य सूक्तस्य १–७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः–१ विराट्त्रिष्टुप् । २, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् ।४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा से सूर्य्य चन्द्रादि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति कथन करते हैं ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥१॥

पदार्थः—(वरुणः) सब का अधिष्ठान परमात्मा (सूर्याय) सूर्य्य के लिये (पथः) मार्ग (रदत्) देता और (प्र) भले प्रकार (समुद्रिया, अर्णांसि) अंतरिक्षस्थ जल तथा (नदीनां) नदियों को (सर्गः, न) घोड़े के समान (अवतीः) वेगवाली (ऋतायन्) शीघ्र गमन की इच्छा से (सृष्टः) रचता, और उसी ने (अहभ्यः) दिन से (महीः) महान् (अवनीः) चन्द्रमा को (चकार) उत्पन्न किया ॥१॥

भावार्थः—सब संसार को वशीभूत रखने वाले परमात्मा ने चन्द्रमा, अंतरिक्षस्थ जल और शीघ्रगामिनी नदियों को रचा, और उसी ने तेजपुञ्ज सूर्य्य को रचकर उसमें गति प्रदान की जिससे सम्पूर्ण भूमण्डल में गति उत्पन्न हो जाती है ॥१॥

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अंतर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥२॥

पदार्थः—(वरुण) हे वरुणरूप परमात्मन् (वातः) वायु (ते) तुम्हारा (आत्मा) आत्मवत् है, आप ही (रजः) जलों को (आ) भले प्रकार (नवीनोत्) नवीन भावों द्वारा प्रेरित करते हैं। (न) जिस प्रकार (यवसे) तृणादिकों से (पशुः) पशु (ससवान्) सम्पन्न होता है इसी प्रकार प्राणरूप वायु सब जीवों का (भूर्णिः) पोषक होता है। (बृहती मही) इसी बड़ी पृथिवी और (रोदसी) द्युलोक के (अंतः) मध्य में (इमे,विश्वा) यह सब विश्व (ते) तुम्हारे (धाम) स्थान हैं जो (प्रियाणि) सब जीवों को प्रिय हैं ॥२॥

भावार्थः—"वृणोति सर्वमिति वरुणः"=जो इस चराचर ब्रह्माण्ड को अपनी शक्तिद्वारा आच्छादन करे उसका नाम "वरुण" है। एकमात्र परमात्मा ही ऐसा महान् है जो सब विश्ववर्ग को अपनी शक्तिद्वारा आच्छादन करके महत्ता से सर्वत्र ओतप्रोत हो रहा है इसीलिये उसका नाम वरुण है, जैसाकि "ईशावास्यमिदꣳसर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्"यजु० ४०।१॥ इत्यादि मन्त्रों में अन्यत्र भी वर्णन किया है कि इस संसार में जो कुछ वस्तुमात्र दृष्टिगत हो रहा है वह सब ईश्वर की सत्ता से व्याप्त है, यही भाव इस मन्त्र में प्रकारान्तर से वर्णन किया है कि वायु इस वरुण परमात्मा के प्राणसमान और यह निखिल ब्रह्माण्ड उसके स्थान हैं जो जीवमात्र को प्रिय हैं ॥२॥

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥३॥

पदार्थः—(ये) जो (ऋतावानः) सत्यवादी (यज्ञधीराः) कर्मकाण्डी (प्रचेतसः) मेधावी (कवयः) विद्वान् (मन्म, इषयंत) ईश्वर की स्तुति करते हैं उनको (उभे, रोदसी) द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों (पश्यन्ति) देखते हैं जो (सुमेके परि) देखने में सर्वोपरि सुन्दर अर्थात् दिव्यदृष्टि वाले होने से (वरुणस्य) परमात्मा के (स्मदिष्टा) प्रशंसनीय (स्पशः) दूत हैं ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष परमात्मपरायण होते हैं उनका यश पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य में फैल जाता है इसी अभिप्राय से उक्त लोकों को साक्षीरूप से वर्णन किया है, लोकों का देखना यहां उपचार से वर्णन किया गया है वास्तविक नहीं, क्योंकि वास्तव में देखने तथा साक्षी देने का धर्म पृथिवी तथा द्युलोक में न होने से तत्रस्थ मनुष्यों की लक्षणा कर लेनी चाहिये। पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य में सब प्राणीवर्ग उन मनुष्यों की साक्षी देते हैं जो सदाचारी तथा ईश्वरपरायण होते हैं अर्थात् वह कभी छिप नहीं सकते, इसलिये प्रत्येक पुरुष को उचित है कि वह ईश्वरपरायण हो कर संसार में अपना यश विस्तृत करे ॥३॥

अब परमात्मा की ओर से इक्कीस प्रकार की यज्ञीयवाणी का उपदेश कथन करते हैं ॥

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥४॥

पदार्थः—(वरुणः) सर्वविद्याभाण्डार परमात्मा (मे) मुझे (मेधिराय) मेधावी शिष्य को (उवाच) बोला कि (त्रिः, सप्त, नाम) इक्कीस नामों को (अघ्न्या, बिभर्ति) वेदवाणी ने धारण किया है, (न) और (विद्वान्) सब विद्याओं के वेत्ता परमात्मा ने (पदस्य) मुक्तिधाम के (गुह्या) गुप्त मार्गों का उपदेश करते हुए (वोचत्) कहा कि (विप्रः, युगाय) हे मेधावी योग्य शिष्य ! मैं तुझे (उपराय) अपनी समीपता के लिये (शिक्षन्) यह उपदेश करता हूँ ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा अपने ज्ञान के पात्र मेधावी भक्तों को अपनी भक्ति का मार्ग बतलाते हुए उपदेश करते हैं कि तुम इक्कीस नामों वाले यज्ञ, जिन को वेदवाणी ने धारण किया है उनका, अनुष्ठान करो अर्थात् ब्रह्मयज्ञादि पांच महायज्ञ और उपनयनादि षोडशसंस्काररूप यज्ञ, इन इक्कीस यज्ञों का करने वाला मुक्तिधाम का अधिकारी होता और वही परमात्मा की समीपता को उपलब्ध करके सुख का अनुभव करता है । यह परमात्मा का उपदेश मनुष्यमात्र के लिये ग्राह्य है कि उक्त इक्कीस यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें ॥४॥

अब परमात्मविभूति कथन करते हैं ॥

तिस्रो द्यावो निहिता अंतरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥५॥

पदार्थः—(तिस्रः, द्यावः) तीन प्रकार का द्युलोक (अस्मिन्) इस परमात्मा के (अंतः) स्वरूप में (निहिताः) स्थिर है (तिस्रः, भूमीः) तीन प्रकार की पृथिवी जिसके (उपराः) ऊपर (षड्विधानाः) षड्ऋतुओं का परिवर्तन होता है (एतं) इन सबको (गृत्सः) परमपूजनीय (वरुणः) सबको वश में रखने वाले (राजा) प्रकाशस्वरूप परमात्मा ने (दिवि, प्रेङ्खं) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में (हिरण्ययं) ज्योतिर्मय सूर्य्य को (शुभे, कं) दीप्ति=प्रकाशार्थ (चक्र) बनाया ॥५॥

भावार्थः—एकमात्र परमात्मा का ही यह ऐश्वर्य्य है जिसने नभोमण्डल में अणुरूपबालु, अंतरिक्षनिर्वातस्थान तथा द्युलोक प्रकाशस्थान, यह तीन प्रकार का द्युलोक और उपरितल, मध्य तथा रसातल यह तीन प्रकार की

पृथिवी जिस में षड् ऋतुएं चक्रवत् घूम-घूम कर आती हैं, और पृथिवी तथा द्युलोक के मध्य में सब से विचित्र तेजोमण्डलमय सूर्य्यलोक का निर्माण किया जो सम्पूर्ण भूमण्डल तथा अन्य लोकलोकान्तरों को प्रकाशित करता है, इत्यादि विविध रचना से ज्ञात होता है कि परमात्मा का ऐश्वर्य्य अकथनीय है । इस मन्त्र में विभूतिसम्पन्न वरुण को विराट्‌रूप से वर्णन किया गया है ॥५॥

अब परमात्मा की शक्ति का प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गंभीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥६॥

पदार्थः—(द्यौरिव) सूर्य के समान स्वतःप्रकाश (वरुणः) परमात्मा (सिन्धुं) समुद्र को (अव स्थात्) भले प्रकार मर्यादा में रखता (न, द्रप्सः) वह चलायमान नहीं होता, वह (श्वेतः) शुद्धस्वरूप (तुविष्मान्) कुटिलगति वालों के लिये (मृगः) सिंहसमान है (गंभीरशंसः) वह अकथनीय है, वह (रजसः, विमानः) सूक्ष्म से सूक्ष्म जलकणों का भी निर्माता है, जिसका (सुपारक्षत्रं) राज्य बल अपार और जो (सतः, अस्य, राजा) सत्=विद्यमान जगत् का स्वामी है ॥६॥

भावार्थः—वह पूर्ण परमात्मा जिसने समुद्रादि अगाध जलाशयों की मर्यादा बांध दी है, वह रेणु आदि सूक्ष्म पदार्थों का निर्माता, वह अनन्तशक्तिसम्पन्न और वही इस सद्रूप जगत् का राजा है ।

स्मरण रहे कि जो इस संसार को मिथ्या मानते हैं वह "सतो अस्य राजा" इस वाक्य से शिक्षा लें जिसमें वेद भगवान् ने मिथ्यावादियों के मत का स्पष्ट खण्डन किया है कि यह जगत् सद्रूप है मिथ्या नहीं ॥६॥

अब परमात्मा निष्पाप होने का प्रकार कथन करते हैं ॥

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (आगः, चक्रुषे) अपराध करते हुए को (चित्) भी (मृळयाति) अपनी दया से क्षमा कर देता है उस (वरुणे) वरुणरूप परमात्मा के समक्ष (वयं) हम (अनागाः) निरपराध (स्याम) हों (अदितेः) उस अखण्डनीय परमात्मा के (व्रतानि) नियमों को (अनु, ऋधंतः) निरन्तर पालन करते हुए प्रार्थना करें कि हे परमात्मन् (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) मंगल वाणियों से (सदा) सदैव (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में जो यह वर्णन किया है कि वह अपराध करते हुए को अपनी दया से क्षमा कर देता है, इसका आशय यह है कि वह अपने सम्बन्ध में हुए पापों को क्षमा कर देता है परन्तु जिन पापों का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है उनको कदापि क्षमा नहीं करता, जैसे कोई प्रमादवश किसी दिन सन्ध्या न करे तो प्रार्थना करने पर उस पाप को वह क्षमा कर सकता है परन्तु चोरी अथवा असभ्य भाषणादि पापों को वह कदापि क्षमा नहीं करता; उसका दण्ड अवश्य देता है, यद्यपि परमात्मा में इतनी उदारता है कि वह अपराधों को क्षमा भी कर सकता है परन्तु हमको उसके समक्ष सदैव निरपराध होकर जाना चाहिये, जब हम उस परमात्मा के नियमों को पालन करते हुए उससे क्षमा की प्रार्थना करते हैं तभी वह हमारे ऊपर दया कर सकता है, अन्यथा नहीं ॥७॥

सप्तम मण्डल में ८७ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य अष्टाशीतितमस्य सूक्तस्य-१–७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः–१, २, ३, ६, निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की भक्ति कथन की जाती है ॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥१॥

पदार्थः—(**वसिष्ठ**) हे सर्वोत्तम गुण वाले विद्वान् ! आप (**वरुणस्य**) सर्वाधार परमात्मा (**मीळहुषे**) जो भरण-पोषण करने वाला है, उसके लिए (**प्रेष्ठाम्**) प्रेममयी (**शुन्ध्युवम्**) अविद्या के नाश करने वाली (**मतिम्**) बुद्धि को (**प्र, भरस्व**) धारण करें। (**यः**) जो परमात्मा (**यजत्रम्**) प्राकृतयज्ञ करने वाले (**सहस्रामघम्**) अनन्त प्रकार के बल को देने वाले (**वृषणम्**) वृष्टि करने वाले (**बृहन्तम्**) सब से बड़े (**ईं, अर्वाञ्चम्**) इस प्रत्यक्षसिद्ध सूर्य को जो (**करते**) उत्पन्न करता है तुम एकमात्र उसी की उपासना करो ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे स्नातक विद्वानो ! तुम उसकी उपासना करो जिसने सूर्य-चन्द्रमा का निर्माण किया है, और जो इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का कारण है, जिसके भय से अग्न्यादि तेजस्वी पदार्थ अपने-अपने तेज को धारण किये हुए हैं,जैसा कि "भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥"

(कठ० ६, ३ ।) उसके भय से अग्नि तपती है और उसीके भय से सूर्य प्रकाश करता है, विद्युत् और वायु इत्यादि शक्तियाँ उसी के बल से परिभ्रमण करती हैं। 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' (ऋग् मं० १० सू० १९०। ३) जिसने सूर्यचन्द्रादि पदार्थों को रचा है उसी धाता सब के निर्माता परमात्मा की उपासना पूर्व मन्त्र में कथन की गयी है ॥१॥

अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२॥

पदार्थः—(अध) अब (नु) शीघ्र (अस्य) उक्त परमात्मा के (संदृशम्) साक्षात्कार को (जगन्वान्) अनुभव करता हुआ (वरुणस्य, अग्नेः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा के (अनीकम्) स्वरूप को (मंसि) प्राप्त करता हूं (अश्मन्) [अश्नुते व्याप्नोति सर्वमिति अश्मा परमात्मा, जो व्यापक परमात्मा है उसका नाम यहां अश्मा है,] हे अश्मन् परमात्मन् ! (अधिपाः) सबके स्वामिन् ! (अन्धः) सर्वाधिष्ठान ! (ऊं) और (यत्, स्वः) जो आपका आनन्दस्वरूप है वह (मा) मुझको (अभि) भली भांति (वपुः) उस स्वरूप की (दृशये) प्राप्ति के (निनीयात्) योग्य बनायें ॥३॥

भावार्थः—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप मेरी चित्तवृत्ति को निर्मल करके अपने स्वरूपप्राप्ति के योग्य बनायें ॥२॥

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥३॥

पदार्थः—(यत्) जब हम (वरुणः, च) परमात्मा की (नावं) इच्छा पर (आ, रुहाव) आरूढ़ होते हैं और (यत्) जब (समुद्रम्) कर्मों के अधिष्ठाता परमात्मा के (मध्यं) स्वरूप का (ईरयाव) अवगाहन करते हैं और (यत्) जब (अपां) कर्मों के (स्नुभिः) प्रेरक परमात्मा की (प्रेंखे) इच्छाओं में (चराव) विचरते हैं तब (प्र,) प्रकर्षता से (शुभे) उस मङ्गलवासना में (कं) ब्रह्मानन्द को (ईंखयावहै) अनुभव करते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोग का वर्णन किया है कि जब पुरुष अपनी इच्छाओं को ईश्वराधीन कर देता है वा यों कहो कि जब निष्काम कर्मों को करता हुआ उनके फल की इच्छा नहीं करता तब परमात्मा के भावों में विचरता हुआ पुरुष एक प्रकार के अपूर्व आनन्द को अनुभव करता है ॥३॥

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।

स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः॥४॥

पदार्थः—(वरुणः) सर्वपूज्य परमात्मा (वसिष्ठं) उत्तमगुण वाले विद्वान् को (नावि) कर्मों के आधार पर (आधात्) स्थिर करता है। (ह) निश्चय करके (ऋषिं) ऋषि (चकार) बनाता है और (महोभिः) उत्तम साधनों द्वारा (स्वपाः) सुन्दर कर्मों वाला बनाता है, (विप्रः) मेधावी परमात्मा (स्तोतारं) स्तुति करने वाला बनाता है और (अह्नां) उक्त विद्वान् के दिनों को (सुदिनत्वे) अच्छे दिनों में परिणत करता है तथा ((उषसः) प्रातःकाल के प्रकाशों को और (द्यावः) दिन के प्रकाश को (नु) अच्छी तरह (यात्) प्राप्त करता हुआ (ततनन्) विस्तार करता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा जिस पुरुष के शुभ कर्म देखता है उसको उत्तम विद्वान् बनाता है और कर्मानुसार ही परमात्मा ऋषि, विप्र, ब्राह्मणादि पदवियें प्रदान करता है। इस मन्त्र में वर्णव्यवस्था भी गुणकर्मानुसार कथन की गई है। यही भाव 'तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणं' ऋग् अ० ८ अ० ६ व० ४ "तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्" ऋ० ८।७।११।५ इत्यादि मन्त्रों में भी है कि कर्मानुसार परमात्मा की कामना से ही ब्राह्मणादि पदवियें प्राप्त होती हैं। उपनिषद में भी कर्मानुसार ही ऊंच, नीच व्यवस्था कथन की है। जैसा कि "एष एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते, एष-मेवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते" कौ० ३।८ परमात्मा कर्मों द्वारा ही ऊंच नीच अवस्था को प्राप्त कराता है यही व्यवस्था उक्त मन्त्र में कथन की है ॥४॥

क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित्।

बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (त्यानि) वह (नौ) हमारी (सख्या) मैत्री (क्व) कहां (बभूवुः) है, (यत्) जो (पुरा) पूर्वकाल में (अवृकं) हिंसारहित थी (सचावहे) उसकी हम सेवा करें (चित्) और (ते) तुम्हारे (सहस्रद्वारं) अनन्त ऐश्वर्य वाले (गृहं) स्वरूप को (जगम) प्राप्त हों, जो (बृहन्तं, मानम्) सीमारहित है (स्वधावः, वरुण) हे अनन्तैश्वर्ययुक्त परमात्मन्! हम आपके उक्त स्वरूप को प्राप्त हों ॥५॥

भावार्थः—जो जिज्ञासु सब कर्मों को हिंसारहित करता है और पर-मात्मा के साथ निष्पापादि गुणों को धारण करके उसकी मैत्री को उप-लब्ध करता है वह उसके अनन्त ऐश्वर्ययुक्त स्वरूप को प्राप्त होता है।

तात्पर्य यह है कि जब तक जिज्ञासु अपने आपको उसकी कृपा का पात्र नहीं बनाता तब तक वह उसकी स्वरूपप्राप्ति का अधिकारी नहीं बन सकता ॥५॥

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥६॥

पदार्थः—(वरुण) हे परमात्मन् ! (ते) तुम्हारे साथ (प्रियः, सन्) प्यार करता हुआ (यः) जो पुरुष (नित्यः) सर्वदा (ते) तुम्हारे साथ (सखा, आपिः) सखिभाव रखता हुआ (आगांसि) पाप (कृणवत्) करता है, (यक्षिन्) हे यजनीय परमात्मन् ! वह (एनस्वन्तः) पापों में (मा) मत प्रविष्ट हो, (विप्रः) हे सर्वज्ञ परमात्मन् ! (स्तुवते) स्तुति करने वाले उस पुरुष के लिए (वरूथं) वरणीय सर्वोपरि अपने स्वरूप को (यंधि) आप प्रकाश करें ताकि हम लोग आपके ब्रह्मानन्द का (भुजेम) भोग करें ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष कुछ भी परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखता है वह यदि स्वभाववश कभी पाप में भी पड़ जाता है तो परमात्मा की कृपा से फिर भी उन पापों से निकल सकता है क्योंकि परमात्मा के आराधन का बल उसे पापप्रवाह से निकाल सकता है । इसी अभिप्राय से कहा है कि परमात्मा परमात्मपरायण पुरुषों के लिए अवश्यमेव शुभस्थान देते हैं ॥६॥

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्य१स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(ध्रुवासु, त्वासु, क्षितिषु) इस दृढ़ और नित्य पृथिवी में (क्षियन्तः) निवास करते हुए (अस्मत्पाशं) हम लोगों के बन्धनों को (वरुण) सर्वपूज्य परमात्मा (वि) अवश्य (मुमोचत) मुक्त करें (अदितेः) इस अखण्डनीय मातृभूमि के (उपस्थात) अङ्क में रहते हुए हम लोगों को (अवः) आप रक्षा करें और विद्वान् लोगों से हम सदैव (वन्वानाः) भजन करते हुए यह प्रार्थना करें कि (यूयं) आप लोग सदैव (स्वस्तिभिः) कल्याणप्रद वाणियों से (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में जो पृथिवी को नित्य कथन किया है इससे यह तात्पर्य है कि यह संसार मिथ्या नहीं क्योंकि ध्रुव पदार्थ मिथ्या नहीं होता किन्तु दृढ़ होता है ॥७॥

सप्तम मण्डल में ८८वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोननवतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः १–४ आर्षी-गायत्री। ५ पादनिचृज्जगती॥ स्वरः १-४षड्जः ५ निषादः॥

अब इस सूक्त में परमात्मा जीव को ऐश्वर्यप्राप्ति का उपदेश करते हैं॥

मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्। मृळा सुक्षत्र मृळय॥१॥

पदार्थः—(वरुण) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! (मृन्मयं) मृत्तिका के (गृहं) घर आप हमको मत दें (राजन्) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्, हम मिट्टी के गृहों में (मोषु) मत निवास करें (मृळय)हे जगदीश्वर आप हम को सुख दें (सुक्षत्र) हे सब के रक्षक परमात्मन्, (मृळय) आप हम पर सदैव दया करें॥१॥

भावार्थः—परमात्मा ने उक्त ऐश्वर्य का उपदेश किया है कि हे जीवो, तुम सदैव अपने जीवन के लक्ष्य को ऊंचा रक्खा करो और तुम यह प्रार्थना किया करो कि हम मिट्टी के घरों में मत रहें किन्तु हमारे रहने के स्थान अति मनोहर स्वर्णजटित सुन्दर हों तथा उनमें परमात्मा हमको सब प्रकार के ऐश्वर्य दें॥१॥

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः। मृळा सुक्षत्र मृळय॥२॥

पदार्थः—(यद्) जो मैं (दृतिः) धौंकनी के (न) समान (ध्मातः) दूसरों की वा ुरूप बुद्धि से प्रेरित किया गया (एमि) अपनी जीवनयात्रा करता हूँ वह यात्रा (स्फुरन्निव) केवल श्वासोच्छ्वासरूप है उसमें जीने का कुछ प्रयोजन नहीं (अद्रिवः) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्, (मृळ) आप हमारी रक्षा करें (सुक्षत्र) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, (मृळय) आप हमको सुख दें॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों फलों से विहीन हैं वे पुरुष लोहनिर्माता की धोंकनी के समान केवल श्वासमात्र से जीवित प्रतीत होते हैं, वास्तव में वे पुरुष चर्मनिर्मित (दृतिः) चमड़े की खाल के समान निर्जीव हैं। इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह सदैव उद्योगी और कर्मयोगी बनकर सदैव अपने लक्ष्य के लिए कटिबद्ध रहे, अपुरुषार्थी होकर जीना केवल चर्मपात्र के समान प्राणयात्रा करना है। इस अभिप्राय से इस मन्त्र में उद्योग=अर्थात् कर्मयोग का उपदेश किया है॥२॥

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे। मृळा सुक्षत्र मृळय॥३॥

पदार्थः—(समह) हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्, (क्रत्वः) सत्कर्मों के आचरण

से (दीनता) दीनता करके (प्रतीपं) मैं प्रतिकूल आचरण करता रहा, (मृळ) हे परमात्मन् आप मेरी रक्षा करें (सुक्षत्र) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, आप (मृळय) मुझे योग्य बनायें ताकि मैं कर्मों का अनुष्ठान कर सकूं ॥३॥

भावार्थः—पुरुष अपनी निर्बलता से शुभकर्मों को जानता हुआ भी उनका अनुष्ठान नहीं कर सकता, प्रत्युत अपनी दीनता से उनके विरुद्ध आचरण करता है, इसलिए इस मन्त्र में परमात्मा ने उपदेश किया है कि हे वैदिक धर्मानुयायी पुरुषो ! तुम उद्योगी बनने के लिए परमात्मा से सदैव प्रार्थना करो कि हे परमात्मन्, आप हमको आत्मिक बल दें ताकि हम कर्मानुष्ठानी बनकर अकर्मण्यतारूप दोष को दूर करके सत्कर्मी बनें ॥३॥

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।

मृळा सुक्षत्र मृळय ॥४॥

पदार्थः—(अपां) कर्मों के (मध्ये) मध्य में (जरितारं) वृद्धावस्था को प्राप्त (तस्थिवांसं) स्थित मुझको (तृष्णा, अविदत) तृष्णा व्याप्त हो गयी है (मृळ) हे परमात्मन् ! आप मुझको इससे सुखी करें (सुक्षत्र) हे सर्वरक्षक परमात्मन्, आप मुझे (मृळय) सुखी बनाएं ॥४॥

भावार्थः—कर्मों के मनोरथरूपी सागर में पड़ा-पड़ा मनुष्य बूढ़ा हो जाता है और कर्मों का अनुष्ठान नहीं कर सकता। जिस पर परमात्मदेव की कृपा होती है वही कर्मों का अनुष्ठान करके कर्मयोगी बनता है अन्य नहीं; वा यों कहो कि उद्योगी पुरुष को ही परमात्मा अपनी कृपा का पात्र बनाते हैं अन्य को नहीं। इसी अभिप्राय से परमात्मा ने इस मन्त्र में कर्मयोग का उपदेश किया है। कई एक लोग उक्त मन्त्र का यह अर्थ करते हैं कि समुद्र के जल में डूबता हुआ पुरुष इस मन्त्र में वरुण देवता की उपासना करता है, और यह कहता है कि "लवणोत्कटस्य समुद्रजलस्य पानानर्हत्वात्" कि मैं समुद्र के जल के क्षार होने के कारण इसे पी नहीं सकता। यह अर्थ सर्वथा वेद के आशय से बाह्य है,क्योंकि यहां जल में डूबने का क्या प्रकरण, यहां तो इससे प्रथम मन्त्र में कर्मों के प्रतिकूल आचरण का प्रकरण था इसलिए यहां भी यही प्रकरण है ॥४॥

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि ।

अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५॥

पदार्थः—(वरुण) हे परमात्मन्, (दैव्ये, जने) मनुष्यसमुदाय में (यत्, किञ्च) जो कुछ (इदं) यह (अभिद्रोहं) द्वेष का भाव (मनुष्याः) हम मनुष्य लोग (चरामसि) करते हैं और (अचित्ती) अज्ञानी होकर (यत्) जो (धर्मा) धर्मों को (युयोपिम) त्यागते हैं, (तस्मादेनसः) उन पापों से (देव) हे देव, (नः) हमको (मा, रीरिषः) मत त्यागिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उन पापों से क्षमा मांगी गई है जो अज्ञान से किये जाते हैं अथवा यों कहो कि जो प्रत्यवायरूप पाप हैं उनके विषय में यह क्षमा की प्रार्थना है। परमात्मा ऐसे पाप को क्षमा नहीं करता जिससे उसके न्यायरूपी नियम पर दोष आवे, किन्तु यदि कोई पुरुष परमात्मा के सम्बन्ध-विषयक अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं करता उस पुरुष के अपने सम्बन्धविषयक पाप परमात्मा क्षमा कर देता है। अन्य विषयक किये हुए पाप की क्षमा करने से परमात्मा अन्यायी ठहरता है ॥५॥

सप्तम मण्डल में ८९ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य नवतितमस्य सूक्तस्य १—७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–४ वायुः । ५–७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, २ ७, विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब वायुविद्या को जानने वाले विद्वान् का ऐश्वर्य वर्णन करने हैं ॥

प्र वी॑रया॒ शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तासः॑ ।
वह॑ वायो नि॒युतो॑ या॒ह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य ॥१॥

पदार्थः - (वायो) हे वायुविद्या के वेत्ता विद्वान् आप (सुतस्य) संस्कार किये हुए (अन्धसः) अन्नों के रसों को (मदाय) आह्लाद के लिये (पिब) पियें, और (नियुतः) अपने पद पर नियुक्त हुए (अच्छ) भली प्रकार (वह) सर्वत्र प्राप्त होओ तथा (याहि) विना रोकटोक के सर्वत्र जाओ, क्योंकि (प्र) भली भांति (वीरया) वीरता के लिये (वाम्) तुम को (अध्वर्युभिः) वैदिक लोगों ने (मधुमन्तः) मीठे (सुतासः) सुन्दर-सुन्दर (शुचयः) पवित्र (दद्रिरे) उपदेश दिये हैं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे वायु आदि तत्त्वों की विद्या को जानने वाले विद्वान् पुरुषो ! आप वैदिक पुरुषों से उपदेश लाभ करके सर्वत्र भूमण्डल में अव्याहत गति होकर विचरें ॥१॥

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥२॥

पदार्थः—(वायो) हे वायुविद्यावेत्ता विद्वन्, (शुचिपाः) सुन्दर पदार्थों को पान करने वाले (तुभ्यं) तुम्हारे लिए (सोमं) सोम रस (शुचिं) जो पवित्र है उसका (यः) जो (ते) तुम्हारे लिए (आनट्) देता है (तं) उसको मैं (मर्त्येषु) मनुष्यों में (प्रशस्तं) उत्कृष्ट बनाता हूँ (जातः जातः) जन्म-जन्म में (अस्य) उसको (वाजी) बहुत बल वाला (जायते) उत्पन्न करता हूँ और जो (ईशानाय) ईश्वर के लिए (प्रहुतिं) ऐश्वर्य अर्पण करता है उसको मैं (कृणोषि) ऐश्वर्यशाली बनाता हूँ ॥२॥

भावार्थः—जो लोग विद्वानों को धन देते हैं वह सर्वदा ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं और जो लोग ईश्वरार्पण कर्म करते हैं अर्थात् निष्काम कर्म करते हैं, परमात्मा उनको सदा ऐश्वर्यशाली बनाता है ॥२॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥३॥

पदार्थः—(यं) जिस पदार्थविद्यावेत्ता पुरुष को (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वीलोक ने (राये) ऐश्वर्य के लिए उत्पन्न किया है और (देवं) जिस दिव्यशक्तिसम्पन्न पुरुष को (धिषणा) स्तुतिरूप (देवी) दिव्य शक्ति (धाति) धारण करती है (वायुं) उस पदार्थविद्यावेत्ता विद्वान् को (नि युतः) जो पदार्थ विद्या के लिये नियुक्त किया गया है (सश्चत) तुम सेवन करो (उत) और (निरेके) दरिद्रता को दूर करने के लिए (अध) और (श्वेतं) पवित्र (वसुधितिं) धन को (स्वाः) उस आत्मभूत विद्वान् के लिए तुम उत्पन्न करने का यत्न करो ॥३॥

भावार्थः—स्वभावोक्ति अलंकार द्वारा इस मंत्र में परमात्मा यह उपदेश करते हैं कि मानो प्रकृति ने ही ऐसे पुरुष को उत्पन्न किया है जो संसार की दरिद्रता का नाश करता है ऐसा पुरुष जिस देश में उत्पन्न होता है उस देश में अनैश्वर्य और दरिद्रता का गन्ध भी नहीं रहता ॥३॥

उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥४॥

पदार्थः—जो लोग उक्त वायुविद्यावेत्ता विद्वान् की संगति में रहते हैं उनके (उषसः) प्रभातवेलाओं सहित (सुदिनाः) सुन्दर दिन (अरिप्राः) निष्पाप (उच्छन्) व्यतीत होते हैं और वे (दीध्यानाः) ध्यान करते हुए (उरु) सर्वोपरि (ज्योतिः)

ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म को जान लेते हैं और (प्रदिवः) द्युलोक (आपः) जलों की (सस्रुः) वृष्टि करते हैं तथा विद्वान् लोग (तेषाम्) उनको (अनु वव्रुः) सुन्दर उपदेश करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो, जो लोग वायुवत् सर्वत्र गतिशील विद्वानों की संगति में रहते हैं उनके लिये सूर्योदय काल सुन्दर प्रतीत होते हैं और उनके लिए सुवृष्टि और सम्पूर्ण ऐश्वर्य उपलब्ध होते हैं। बहुत क्या, योगी जनों की संगति करने वाले पुरुष ध्यानावस्थित होकर उस परम ज्योति को उपलब्ध करते हैं जिसका नाम परब्रह्म है ॥४॥

अब विद्युद्विद्यावेत्ता और वायुविद्यावेत्ता दोनों प्रकार के विद्वानों के गुण वर्णन करते हैं ॥

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।

इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) हे विद्युत् और वायुविद्या को जानने वाले विद्वानो, (वाम्) आप लोगों को (ईशानाय) जो ईश्वर की विद्या जानने वाले हैं अभी चारों ओर से (पृक्षः) ऐश्वर्य (सचन्ते) संगत होते हैं और आपके बनाये हुए (रथम्) यान (वीरवाहम्) वीरता को प्राप्त करने वाले होते हैं और (ते) वे (सत्येन) सत्य (मनसा) मन से (दीध्यानाः) दीप्त हुए (स्वेन युक्तासः) ऐश्वर्य के साथ जुड़े हुए (क्रतुना) यज्ञों द्वारा (वहन्ति) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! विद्युत् विद्या के जानने वाले तथा वायु आदि सूक्ष्म तत्त्वों के जानने वाले विद्वान् जिन यानों को बनाते हैं वे यान उत्तम से उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त कराते हैं और वीर लोगों को नभोमण्डल में ले जाने वाले एक मात्र वही यान कहला सकते हैं, अन्य नहीं ॥५॥

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।

इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥६॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) हे विद्युत् और वायु आदि तत्वों की सूक्ष्म विद्या जानने वाले विद्वानो ! तुम (ईशानासः) ईश्वरपरायण लोगों को ऐश्वर्यसम्पन्न करो (ये) जो लोग (गोभिः) गौओं द्वारा (अश्वेभिः) अश्वों द्वारा (वसुभिः) धनों द्वारा (हिरण्यैः) दीप्तिमान् वस्तुओं द्वारा (स्वर्णं दधते) स्वर्णादि रत्नों को धारण करते हैं और

(सूरयः) वे शूरवीर लोग (विश्वं) सम्पूर्ण (आयुः) आयु को प्राप्त हों और (अर्वद्भिः वीरैः) वीर संतानों से (पृतनासु) युद्धों में शत्रुओं को (सह्युः) परास्त करें ॥६॥

भावार्थः—विद्युत् आदि विद्याओं की शक्तियों को जानने वाले विद्वान् ही प्रजाओं को ऐश्वर्यसम्पन्न बना सकते हैं, ऐश्वर्यसम्पन्न होकर ही प्रजा पूर्ण आयु को भोग सकती है, ऐश्वर्यसम्पन्न लोग ही युद्धों में पर-पक्षों को परास्त करते हैं। परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! तुम सबसे पहले अपने देश को ऐश्वर्यसम्पन्न करो ताकि तुम्हारी प्रजायें वीर सन्तान उत्पन्न करके शत्रुओं को परास्त करें ॥६॥

अब परमात्मा सूक्ष्म विद्यावेत्ता विद्वानों द्वारा प्रजा की रक्षा तथा कल्याण का उपदेश करते हैं ॥

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—हे लोगो, (वाजयन्तः) बल की इच्छा करते हुए तुम (स्ववसे) अपनी रक्षा के लिए यह प्रार्थना करो कि (वयं) हम लोग (हुवेम) विद्वानों को अपने यज्ञों में बुलायें और यह कहें कि (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (नः) हमारी (सदा) सदा के लिये (पात) रक्षा करें परन्तु (अर्वन्तः) कर्मयोगियों के (न) समान (श्रवसः) अन्नादि पदार्थों को (भिक्षमाणाः) चाहते हुए और (इन्द्रवायू) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी दोनों प्रकार के विद्वानों की (सुष्टुतिभिः) सुन्दर स्तुतियों द्वारा (वसिष्ठाः) वसिष्ठ हुए आप लोग विद्वानों से कल्याण की प्रार्थना करें ॥७॥

भावार्थः—जो लोग वेदवेत्ता विद्वानों से उपदेश-लाभ करते हैं वे ही बल तथा ऐश्वर्यसम्पन्न होकर अपना और अपने देश का कल्याण कर सकते हैं, अन्य नहीं ॥७॥

सप्तम मण्डल में ९०वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य एकनवतितमस्य सूक्तस्य—१-७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३ वायुः २, ४,-७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब उक्त विद्वानों से प्रकारान्तर से विद्याग्रहण करने का उपदेश करते हैं ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥१॥

पदार्थः—(पुरा) पूर्व काल में (ये) जो (देवाः) विद्वान् (वृधासः) ज्ञानवृद्ध और (अनवद्यासः) दोषरहित (आसन्) थे, वे (कुवित्) बहुत (अङ्ग) शीघ्र (नमसा) नम्रता से (वायवे) शिक्षा के (मनवे) लाभ के लिये (बाधिताः) स्वसन्तानों की रक्षा के लिये (सूर्येण) सूर्योदय के (उषसम्) उषा काल को लक्ष्य में रख कर (अवासयन्) अपने यज्ञ आदि कर्मों को प्रारम्भ करते थे ॥१॥

भावार्थः—जो लोग आलस्य आदि दोषरहित और ज्ञानी हैं, वे उषा काल में उठकर अपने यज्ञादि कर्मों का प्रारम्भ करते हैं। मंत्र में जो भूत-काल की क्रिया दी है वह "व्यत्ययो बहुलं" इस नियम के अनुसार वर्तमान काल की बोधिका है। इसलिये वेदों से प्रथम किसी अन्य देव के होने की आशंका इससे नहीं हो सकती। अन्य युक्ति यह कि "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्" "देवाभागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते" इत्यादि मन्त्रों में पूर्व काल के देवों की सूचना जैसे दी गई है इसी प्रकार उक्त मन्त्र में भी है, इसलिये कोई दोष नहीं।

तात्पर्य यह है कि वैदिक सिद्धान्त में सृष्टि प्रवाहरूप से अनादि है इसलिये उस में भूत काल का वर्णन करना कोई दोष की बात नहीं ॥१॥

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) हे कर्मयोग और ज्ञानयोगसम्पन्न विद्वानो ! (उशन्ता) आप हमारे कल्याण की इच्छा करते हुए (दूता) शुभ मार्ग दिखलाने वाले दर्शक के (न) समान (दभाय) हमारे कल्याण के लिये (गोपाः) आप हमारे रक्षक बनें (शरदश्च पूर्वीः) और अनंत काल तक (पाथः) हमारे शुभ मार्ग की ओर (मासश्च) शुभ समयों की आप रक्षा करें। (सुस्तुतिः) हमारी स्तुति (वाम्) आप लोगों को (इयाना) प्राप्त होती हुई (मार्डीकम्) सुख की (ईट्टे) याचना करती है (च) और (नव्यं) नवीन (सुवितं) धन की याचना करती है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानों को अपना नेता बनाते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं और उनको नवीन नवीन धनादि वस्तुओं की सदैव प्राप्ति होती है ॥२॥

पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥३॥

पदार्थः—(सुमेधाः) ज्ञानयोगी पुरुष (पीवोऽन्नान्) पुष्ट से पुष्ट अन्नों को लाभ करते हैं (रयिवृधः) और ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं (श्वेतः) और उत्तम कर्मों को (सिसक्ति) सेवन करते हैं (अभिश्रीः) शोभा (नियुतां) जो मनुष्य के लिये नियुक्त की गई है उसको प्राप्त होते हैं तथा (ते, समनसः)वे वशीकृत मनवाले (वायवे) विज्ञान के लिये अर्थात् ज्ञान योग के लिये (तस्थुः) स्थिर होते हैं। (विश्वेन्नरः) ऐसे सम्पूर्ण मनुष्य (स्वपत्यानि) शुभ कर्मों को (चक्रुः) करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष ज्ञानयोगी बनकर बुद्धिरूपी श्री को उत्पन्न करते हैं वे संयमी पुरुष ही कर्मयोगी बन सकते हैं, अन्य नहीं ॥३॥

यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) हे कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषो ! तुम लोग हमारे यज्ञों में आकर (इदम्) इस (बर्हिः) आसन पर (आसदतम्) बैठो और (यावत्) जब तक (तन्वः) हमारे शरीर में (तरः) स्फूर्ति है तब तक और (यावत्) जब तक (ओजः) ब्रह्मचर्य का प्रभाव है और (यावन्नरः, चक्षसः) हम ज्ञानी हैं (दीध्यानाः) दीप्ति वाले हैं तब तक आप (अस्मे) हमारे (सोमं) स्वभाव को (शुचिं) पवित्र बनायें क्योंकि (शुचिपा) आप हमारे शुभ कर्मों की रक्षा करने वाले हैं इसलिये (पातं) आप हमारे यज्ञों में आकर हमको पवित्र करें ॥४॥

भावार्थ जब तक मनुष्य के शरीर में कर्म करने की शक्ति रहती है और जब तक ब्रह्मचर्य के प्रभाव से उत्पन्न हुआ ओज रहता है और जब तक सत्य के समझने की शक्ति रहती है तब तक उसे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुषों से सदैव यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे भगवन्, आप मेरे समक्ष आकर मुझे सत्कर्मों का उपदेश करके साधु स्वभाव वाला बनाइये ॥४॥

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) ["इदङ्करणादित्याग्रयणः" (नि० १०, ८, ९) अर्थात् सब कर्मों में जो व्याप्त हो उसे इन्द्र कहते हैं; 'वातीतिवायुः' जो सर्व विषय को जानता है वह वायु है ।] हे कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषो ! (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (सरथं) अपने कर्मयोग और ज्ञानयोग के मार्ग को लक्ष्य रखते हुए (यातं) हमारे सामने आयें।

(स्पार्हवीराः) आप सर्वप्रिय हैं और (नियुवाना) उपदेश के मार्ग में नियुक्त किये गये हैं और (नियुतः) जो तुम्हारा योगमार्ग है उसका आकर हमें उपदेश करो! (वाम्) तुम्हारे लिए ही निश्चय करके (मध्वः) मीठे पदार्थ का (इदम्) यह (अग्रम्) सार भेंट किया जाता है, आप इसे ग्रहण करें (अथ) और (प्रीणाना) प्रसन्न हुए आप (अस्मे) हम लोगों को (विमुमुक्तम्) पापरूपी बन्धनों से छुड़ायें ॥५॥

भावार्थः—यजमान कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वानों से यह प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् ! आप हमारे यज्ञों में आकर हमको कर्मयोग तथा ज्ञानयोग का उपदेश करें, ताकि हम उद्योगी तथा ज्ञानी बन कर निरुद्योगिता और अज्ञानरूपी पापों से छूट कर मोक्ष फल के भागी बनें ॥५॥

या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुषो ! (वाम्) तुम लोगों को, (याः) जो आप (विश्ववाराः) सबके वरणीय हो, (याः) जो लोग (शतम्) सैकड़ों वार (सहस्रं) सहस्रों वार (नियुतः) नियुक्त हुए (सचन्ते) सेवन करते हैं वे संगति को प्राप्त होते हैं इस लिये (नरा) वैदिक मार्ग के नेता लोगो ! (अर्वाक्) हमारे सन्मुख (आभिः) सुन्दर मार्गों से (यातं) आओ और (मध्वः, प्रतिभृतस्य) आपके निमित्त जो मीठा रस रक्खा गया है इसे आकर (पातं) पीओ ॥६॥

भावार्थः—जो लोग कर्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषों की सैकड़ों और सहस्रों वार संगति करते हैं वे लोग उद्योगी और ब्रह्मज्ञानी बन कर जन्मके धर्म अर्थ काम मोक्ष रूपी चारों फलों को प्राप्त होते हैं॥६॥

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्रवायू) हे ज्ञानयोगी और कर्मयोगी पुरुषो ! हम (अर्वन्तः) जिज्ञासुओं के (न) समान (श्रवसः) ज्ञानकी (भिक्षमाणाः) भिक्षा मांगते हुए (सुस्तुतिभिः, वसिष्ठाः) आपके स्तुतिपरायण हुए अपनी रक्षा के लिये (वाजयन्तः) आपसे बलकी याचना करते हैं और(हुवेम) [ह्वेञ् शब्दार्थक धातु होने से यहां याच्ञाविषयक शब्दार्थ है,] हम यह दान मांगते हैं कि (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (नः) हमारी (सदा) सदैव (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—जो लोग ज्ञान और विज्ञान के भिक्षु बनकर ज्ञानी और

विज्ञानी लोगों से सदैव ज्ञानयोग और कर्मयोग की भिक्षा मांगते हैं पर-मात्मा उनको अभ्युदय और निश्रेयस इन दोनों ऐश्वर्य्यों से परिपूर्ण करता है ॥७॥

सप्तम मण्डल में ९१ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वानवतितमस्य सूक्तस्य १–५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३–५ वायुः । २ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः १ निचृत् त्रिष्टुप् २, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब कर्मयोगी पुरुष को सोमरस पीने के लिये बुलाना कथन करते हैं ॥

आ वा॑यो भूष शुचिपा उप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार ।

उपो॑ ते॒ अन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॑र्व॒पेय॑म् ॥१॥

पदार्थः—(वायो) हे कर्मयोगिन् ["वाति=गच्छति स्वकर्मणाऽभिप्रेतं प्राप्नोतीति वायु:" जो कर्मों द्वारा अपने कर्तव्यों को प्राप्त हो उसको वायु कहते हैं "वायुर्वातिर्वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मणः" वायु शब्द गतिकर्म वाली धातुओं से सिद्ध होता है (निरुक्त दैवत काण्ड १०—३) इस प्रकार यहां वायु नाम कर्मयोगी का है।] आप आकर हमारे यज्ञ को (आभूषः) विभूषित कीजिये और (शुचिपाः) आप पवित्र वस्तुओं का पान करने वाले हैं (विश्ववारः) आप सबके वरणीय हैं (ते) तुम्हारे (सहस्रम् नियुतः) हजारों कर्म के प्रकार हैं (नः) हमारा (अन्धः) अन्नादि वस्तुओं से (मद्यम्) आह्लादक जो सोमरस है उसको (उप अयामि) मैं पात्र में रखता हूं (देव) हे दिव्यशक्ति वाले विद्वन्, (पूर्वपेयं) पहिले पीने योग्य इस को (दधिषे) तुम धारण करो ॥१॥

भावार्थः—यजमान लोग अपने यज्ञों में कर्मयोगी पुरुषों को बुलाकर उत्तमोत्तम अन्नादि पदार्थों के आह्लादक रस उनकी भेंट करके उनसे सदुपदेश ग्रहण करें। वायु शब्द से इस मन्त्र में कर्मयोगी का ग्रहण है। किसी वायुतत्व या किसी अन्य वस्तु का नहीं। यद्यपि वायु शब्द के अर्थ कहीं ईश्वर के, कहीं वायुतत्त्व के भी हैं तथापि यहां प्रसंग से वायु शब्द कर्मयोगी का बोधक है क्योंकि इसके उत्तर मन्त्र में "शचीभिः" इत्यादिक कर्मबोधक वाक्यों से कर्मप्रधान पुरुष का ही ग्रहण है और जहां "वायवा याहि दर्शते इमे सोमा अरं कृता" १।२।१ इत्यादि मन्त्रों में वायु शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है वहां ईश्वर का प्रसंग पूर्वोक्त सूक्तों की संगति से वायु शब्द ईश्वर का

प्रतिपादक है अर्थात् "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" १।१।१ इस ईश्वर-प्रकरण में पढ़े जाने के कारण वहां वायु शब्द ईश्वर का बोधक है क्योंकि "शन्नो मित्रः शं वरुणः" तैत्तिरीय ब्र. १ इस मन्त्र में वायु शब्द ईश्वर के प्रकरण में पढ़ा गया है, जिस प्रकार वहां ईश्वर प्रकरण है इसी प्रकार यहां विद्वानों से शिक्षालाभ करने के प्रकरण में पढ़े जाने के कारण वायु शब्द विद्वान् का बोधक होता है किसी अन्य वस्तु का नहीं ॥१॥

प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।

प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥२॥

पदार्थः—(अध्वर्यवः) यज्ञों के धारण करने वाले अध्वर्यु लोग (अध्वरेषु) यज्ञों में (सोमं) सोम रसको (अस्थात्) स्थिर करते हैं क्योंकि (इन्द्राय) कर्मयोगी, (वायवे) ज्ञानयोगी के (पिबध्यै) पिलाने के लिये और अध्वर्यु लोग (शचीभिः) कर्मों के द्वारा (देवयन्तः) प्रार्थना करते हुए (अग्रियम्) सारभूत इस सोमरस को (भरन्ति) धारण करते हैं (यत्) जो (मध्वं) मीठा है और (वाम्) तुम विद्वान् लोगों के निमित्त बनाया गया है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमान लोगो, तुम सुन्दर-सुन्दर पदार्थों के रस निकाल कर विद्वानों को तृप्त करो ताकि वे प्रसन्न होकर तुम को उपदेश दें ॥२॥

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।

नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३॥

पदार्थः—(वायो) हे ज्ञानयोगी विद्वन्! (इष्टये) यज्ञ के लिये (दुरोणे) यज्ञ-मंडपों में जाकर (नियुद्भिः) याज्ञिय लोगों द्वारा आह्वान किये हुए आप (यासि) जाकर प्राप्त होओ और वहां जाकर (वीरं) वीरतायुक्त पुरुष (गव्यं) गौएं (अश्व्यं) घोड़े (च) और (राधः) धन को (युवस्व) दें और (सुभोजसम्) सुन्दर-सुन्दर भोजन (रयिं) धनादि पदार्थ दें ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि यजमानों से आह्वान किये हुए विद्वान् लोग यज्ञ मण्डपों में जाकर जनता को गौएं, घोड़े और धनादि ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने का उपदेश करें ॥३॥

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।

घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४॥

पदार्थः—(ये) जो पुरुष (वायवे) कर्मयोगी विद्वानों पर विश्वास रखते हैं (इन्द्रमादनासः) ज्ञानयोगी विद्वान् का सत्कार करते हैं तथा (आदेवासः) विद्वान् पुरुषों का सत्कार करते हैं वे (अर्य्यः) शत्रुओं को (नितोशनासः) नाश करते हुए और (सूरिभिः) विद्वानों से (घ्नन्तः) अज्ञानों का नाश करते हुए यह कथन करते हैं कि (स्याम) हम लोग सत्यपरायण होकर (अमित्रान्) अन्यायकारी शत्रुओं को (युधा) युद्ध में (नृभिः) न्याय्यपथ पर दृढ़ रहने वाले मनुष्यों के द्वारा (सासह्वांसः) नाश करें ॥४॥

भावार्थः—जो सर्वव्यापक परमात्मा पर विश्वास रख कर अन्याय-कारियों के दमन के लिये उद्यत होते हैं वे सदैव विजयलक्ष्मी का लाभ करते हैं अर्थात् उनके गले में विजयलक्ष्मी अवश्यमेव जयमाला पहनाती है ॥४॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।

वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—(वायो) हे कर्मयोगिन् विद्वन्, (नः) हमारे (अध्वरं) इस अहिंसा-रूपयज्ञ में आप आएं (शतिनीभिः) अपने क्रियाकौशल के सैकड़ों प्रकार की शक्तियों को लेकर (सहस्रिणीभिः) सहस्रों प्रकार की शक्तियों को लेकर (उपयाहि) आएं (वायो) हे सर्व विद्या में गतिशील विद्वन्, (अस्मिन्) हमारे इस (सवने) पदार्थ-विद्या के उत्पन्न करने वाले यज्ञ में आकर आप (मादयस्व) आनन्द को लाभ करें और (यूयम्) आप विद्वान् लोग स्वस्तिवाचनों से (नः) हमको (सदा) सदैव (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने सैकड़ों और सहस्रों शक्तियों वाले कर्म्मयोगी विद्वानों के आवाहन करने का उपदेश किया है कि हे यजमानो, तुम अपने यज्ञों में ऐसे विद्वानों को बुलाओ जिनकी पदार्थविद्या में सैकड़ों प्रकार की शक्तियाँ हैं, उनको बुलाकर तुम उनसे सदुपदेश सुनो ॥५॥

सप्तम मण्डल में ९२ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य त्रिनवतितमस्य सूक्तस्य १—८ वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।

उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ज्ञानी विज्ञानी विद्वानो ! आप अन्यायकारी (वृत्रहणा) शत्रुओं को हनन करने वाले हैं, आप हमारे (नवजातम्) इस नवीन (स्तोमं) यज्ञ को (जुषेथां) सेवन करें (हि) जिस लिये (उभा, वां) तुम दोनों को (सुहवा) सुखपूर्वक बुलाने योग्य आप को (जोहवीमि) पुनः-पुनः मैं बुलाता हूँ । इसलिये (ता) आप दोनों (शुचिं) इस पवित्र यज्ञ को (सद्यः, उशते) कामनावाले यजमान के लिये शीघ्र ही (वाजं) बल के देने वाला (धेष्ठा) धारण करायें ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! आप यजमानों के यज्ञ को बल देने वाला तथा कलाकौशलादि विद्याओं से शीघ्र ही फल का देने वाला बनायें ।।१।।

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।

क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ।।२।।

पदार्थः—(हि) क्योंकि आप (सानसी) प्रत्येक पुरुष के सत्संग करने योग्य हैं और (शवसाना) ज्ञान, विज्ञान की विद्या के बल से सुशोभित (भूतं) हो और (साकंवृधा) स्वाभाविक बलवाले हो (शूशुवांसा) ज्ञानवृद्ध हो (भूरेः रायः) बहुत धन और (यवसस्य) ऐश्वर्य्य के (क्षयन्तौ) ईश्वर हो (स्थविरस्य) परिपक्व ज्ञान का जो (वाजस्य) बल है उसके स्वामी हो (घृष्वेः) अन्यायकारी दुष्टों के दमन के लिये (पृंक्तं) आकर आप हमारे यज्ञ को भोगो ।।२।।

भावार्थः—यजमानों को चाहिये कि वे अपने भौतिक तथा आध्यात्मिक यज्ञों में अनुभवी विद्वानों को बुलाकर उनसे शिक्षा ग्रहण करें और उनसे ज्ञान और विज्ञान की विद्याओं का काम करायें । यज्ञ का वास्तव में यही फल है कि उससे ज्ञान तथा विज्ञान की वृद्धि हो तथा विद्वानों की संगति और उनका सत्कार हो ।।२।।

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।

अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ।।३।।

पदार्थः—(वाजिनः) ब्रह्मविद्या के बल वाले ऋत्विग् लोग (यत्)जो (उपो, गुः) आपको आकर प्राप्त होते हैं और (विदथं) यज्ञ को ["विदन्ति जानन्ति देवान्यत्र स विदथो यज्ञः" "जिसमें देव=विद्वानों की संगति हो उसको विदथ=यज्ञ कहते हैं" विदथ इति यज्ञनामसु पठितं (निघं०)] नित्य प्राप्त होते हैं (विप्राः) मेधावी लोग (धीभिः) कर्म्मों द्वारा (प्रमतिमिच्छमानाः) बुद्धि की इच्छा करते हुए (काष्ठां, अर्वन्तः, न) जैसे कि बलवाला पुरुष अपने व्रत की पराकाष्ठा=अन्त को प्राप्त होता है, इस

प्रकार (नक्षमाणाः) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी विद्वान् अर्थात् जो कर्म्म तथा ज्ञान में व्याप्त हैं (जोहुवतः) सत्कारपूर्वक यज्ञ में बुलाये हुए (ते, नरः) संसार के नेता होते हैं ॥३॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमानो, तुम ऐसे विद्वानों को अपने यज्ञों में बुलाओ, जो कर्म्म और ज्ञान दोनों प्रकार की विद्या से व्याप्त हों और आत्मिक बल रखने के कारण दृढ़व्रती हों, क्योंकि दृढ़व्रती पुरुष ही अपने लक्ष्य को प्राप्त हो सकता है, अन्य नहीं ॥३॥

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।

इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे कर्म्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो, आपकी (ईट्टे) स्तुति (विप्रः) बुद्धिमान् लोग इसलिये करते हैं कि आप (वृत्रहणा) अज्ञान के हनन करने वाले हैं और (सुवज्रा) सुन्दर विद्यारूपी शस्त्र आप के हाथ में है। (प्रमतिमिच्छमानः) बुद्धि की इच्छा करते हुए और (रयिं) धन की इच्छा करते हुए तथा (यशसं) यश की इच्छा करते हुए जो (पूर्वभाजं) सब से प्रथम भजने योग्य अर्थात् प्राप्त करने योग्य है (गीर्भिः) सुन्दर वाणियों से तुम्हारी स्तुति विद्वान् लोग करते हैं। (देष्णैः) देने योग्य (नव्येभिः) नूतन धनों से (प्रतिरतं) हमको आप बढ़ाएं ॥४॥

भावार्थः—यश और ऐश्वर्य्य के चाहने वाले लोगों को चाहिये कि वे कर्म्मयोगी और ज्ञानयोगी पुरुषों को अपने यज्ञों में बुलाएं और बुलाकर उनसे सुमति की प्रार्थना करें, क्योंकि विद्वानों के सत्कार के विना किसी देश में भी सुमति उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी अभिप्राय से परमात्मा ने इस मन्त्र में विद्वानों से सुमति लेने का उपदेश किया है ॥४॥

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।

अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥

पदार्थः—विद्वानो ! (सोमसुता) सौम्यस्वभाव को उत्पन्न करने वाले ओषधियों को बनाने वाले (जनेन) मनुष्य द्वारा हम आपका सत्कार करते हैं, (यत्) जो आप (शूरसाता) वीरतारूपी यज्ञों के रचयिता हैं (तनूरुचा) केवल तनुपोषक लोगों के साथ (स्पर्धमाने) स्पर्धा करने वाले हैं (मही) बड़े-बड़े (मिथती) युद्धों में आप निपुण हैं (विदथे) आध्यात्मिक यज्ञों में (सं, सत्रा, हतं) अविद्यादिदोषरहित (अदेवयुम्) परमात्मा के स्वभाव को (देवयुभिः) ज्ञानी पुरुषों का संगति से आप प्राप्त हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश किया है कि हे विद्वान् पुरुषो, तुम लोग आहार-व्यवहार द्वारा सौम्यस्वभाव बनाने वाले विद्वानों का संग करो तथा जो पुरुष ज्ञानयोगी हैं उनकी संगति में रह कर अपने आप को परमात्मपरायण बनाओ ॥५॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥६॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे ज्ञान विज्ञान विद्याओं के ज्ञाता विद्वानो ! (नः) हमारे (इमां) इस (सोमसुतिं) विज्ञानविद्या के यन्त्रनिर्माणस्थान को (सौमनसाय) हमारे मन की प्रसन्नता के लिये (उपयातं) आकर दृष्टिगोचर करें (हि) क्योंकि (अस्मान्) हमको (आ) सब प्रकार से (नु, चित्) निश्चय करके (सुपरिमम्नाथे) आप अपनाते हैं और (वां) आपको हम लोग (वाजैः) आपके योग्य सत्कारों से (शश्वद्भिः) निरन्तर (ववृतीय) निमन्त्रित करते हैं ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे यजमानो ! आप लोग ज्ञान विज्ञान के ज्ञाता विद्वानों को अपनी विज्ञानशालाओं में बुलायें क्योंकि ज्ञान तथा विज्ञान से बढ़ कर मनुष्य के मन को प्रसन्न करने वाली संसार में कोई अन्य वस्तु नहीं, इसलिये तुम विद्वानों की सत्संगति से मन के सौमनस्य अर्थात् विज्ञानादि भावों को बढ़ाओ, यही मनुष्यजन्म का सर्वोपरि फल है ॥६॥

सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥७॥

पदार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन्, (सः) आप (नमसा) विनय से (समिद्धा) प्रसन्न हुए (इन्द्रं, मित्रं, वरुणं) श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक को (अच्छ, वोचेः) यह श्रेष्ठ उपदेश करो कि वे लोग यजमानों से पापकर्मों को (शिश्रथंतु) वियुक्त करें और (यत्) जो कुछ (सीं) हम ने (आगः) पापकर्म (चकृम) किये हैं (तत्) वह (सुमृळ) दूर कर और उनकी निवृत्ति हम (अर्यमा) न्यायकारी और (अदितिः) अखण्डनीय परमात्मा से न्यायपूर्वक चाहते हैं ॥७॥

भावार्थः—पापों की निवृत्ति पश्चात्ताप से होती है, परमात्मा जिस पर अपनी कृपा करते हैं वही पुरुष अपने मन से पापों की निवृत्ति के लिए प्रार्थना करता है, अर्थात् मनुष्य में परमात्मा की कृपा से विनीत भाव आता

है अन्यथा नहीं; यहां सञ्चित और क्रियमाण कर्मों की निवृत्ति से तात्पर्य है, प्रारब्ध कर्मों से नहीं ॥७॥

एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।

मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सर्वशक्तिमान् (विष्णुः) सर्वव्यापक (एताः, मरुतः) सर्व-रक्षक परमात्मा (नः) हमको (मा) मत (परिख्यन्) छोड़ें; (अग्ने) हे कर्मयोगिन् तथा ज्ञानयोगिन् विद्वन् ! (आशुषाणासः) आपकी संगति में रहते हुए हमको (युवोः) आपकी (इष्टीः) यह ज्ञानयज्ञ और आपकी संगति को हम लोग (सचाभ्यश्याम) कभी न छोड़ें तथा (वाजान्) आपके बलप्रद उपदेशों का हम कदापि त्याग न करें; और ईश्वर की कृपा से •(यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्ति वचनों से (नः) हमको (सदा) सदैव (पात) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात की शिक्षा है कि पुरुष को चाहिए कि वह सत्पुरुषों की संगति से बाहर कदापि न रहे और परमात्मा के आगे हृदय खोल कर निष्पाप होने की सदैव प्रार्थना किया करे, इसी से मनुष्य का कल्याण होता है । केवल अपने उद्योग के भरोसे पर ईश्वर और विद्वान् पुरुषों की उपेक्षा अर्थात्,उनमें उदासीन दृष्टि, कदापि न करे ॥८॥

सप्तम मण्डल में ९३ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य चतुर्नवतितमस्य सूक्तस्य–१–१२ वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः–१, ३, ८, १०, आर्षी निचृत् गायत्री २, ४, ५, ६, ७, ९, ११ आर्षी गायत्री। १२ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः १-११ षड्जः । १२ गान्धारः ॥

अब सद्गुणों के ग्रहण के लिये कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगियों का यज्ञ में आवाहन कथन करते हैं ॥

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।

अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! (वां) आपकी (इयं) यह (पूर्व्यस्तुतिः) मुख्यस्तुति (अभ्रात्) मेघमण्डल से (वृष्टिः, इव) वृष्टि के समान (अजनि) सद्भावों को उत्पन्न करती है (अस्य) इस (मन्मनः) स्तोता के हृदय को भी शुद्ध करती है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो लोग अपने विद्वानों के सद्गुणों को वर्णन करते हैं, वे मानो सद्गुणकीर्तनरूप वृष्टि से अंकुरों के समान प्रादुर्भाव को प्राप्त होते हैं ॥१॥

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनंतं गिरः ।

ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! आप (जरितुः) जिज्ञासु लोगों के (हवं) आह्वानों को (शृणुतं) सुनें, (ईशाना) ऐश्वर्यसम्पन्न आप (गिरः) उनकी वाणियों को (वनंत) संस्कृत अर्थात् शुद्ध करें और उनके (धियः) कर्मों को (पिप्यतं) बढ़ायें ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो, तुम अपने जिज्ञासुओं की वाणियों पर ध्यान दो और उनके कर्मों के सुधार के लिए उन को सदुपदेश दो, ताकि वे सत्कर्मी बन कर संसार का सुधार करें ॥२॥

अब उक्त विद्वानों से सद्गुणों का ग्रहण करना कथन करते हैं ॥

मा पापत्वायं नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।

मा नो रीरधतं निदे ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो, आप (नरा) शुभ मार्गों के नेता हैं; आपके सत्संग से (अभिशस्तये) शत्रु द्वारा दमन के योग्य हम (मा) मत हों और (नः) हम को (मा, रीरधतं) हिंसा के भागी न बनायें और (निदे) निन्दा के भागी मत बनायें (पापत्वाय) पाप के लिये हमारा जीवन (मा) मत हो ॥३॥

भावार्थः—विद्वानों से मिलकर जिज्ञासुओं को यह प्रार्थना करनी चाहिए कि आपके संग से हम में ऐसा बल उत्पन्न हो कि हमको शत्रु कभी दबा न सकें और हम कोई ऐसा काम न करें, जिससे हमारी संसार में निन्दा हो और हमारा मन कदापि पाप की ओर न जाय ॥३॥

इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे ।

धिया धेना अवस्यवः ॥४॥

पदार्थः—हम (इन्द्रे) कर्मयोगी (अग्ना) ज्ञानयोगी के लिए (नमः) नमस्कार करें और (बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे) हम उनके साथ बड़ी नम्रतापूर्वक बर्ताव

करें । (धिया धेनाः) अनुष्ठानरूपवाणी से हम उनसे (अवस्यवः) रक्षा की याचना करें ॥४॥

भावार्थः—जो लोग विद्वानों के साथ रह कर अपनी वाणी को अनुष्ठानमयी बनाते हैं अर्थात् कर्मयोगी बन कर उक्त विद्वानों की संगति करते हैं, वह संसार में सदैव सुरक्षित होते हैं ॥४॥

ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये ।

सबाधो वाजसातये ॥५॥

पदार्थः—(सबाधः) पीड़ित हुए (वाजसातये) यज्ञों में (विप्रासः) मेधावी लोग (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (इत्था) इस प्रकार (शश्वन्त) निरन्तर (ता, हि) निश्चय करके उक्त कर्मयोगी, ज्ञानयोगी की (ईळते) स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो लोग इस भाव से यज्ञ करते हैं कि उनकी बाधायें निवृत्त होवें; वे अपने यज्ञों में कर्मयोगी, ज्ञानयोगी विद्वानों को अवश्यमेव बुलायें ताकि उनके सत्संग द्वारा ज्ञान और कर्म से सम्पन्न होकर सब बाधाओं को दूर कर सकें ॥५॥

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।

मेधसाता सनिष्यवः ॥६॥

पदार्थः—(सनिष्यवः) अभ्युदय चाहने वाले (विपन्यवः) साहित्य चाहने वाले हम (प्रयस्वन्तः) अनुष्ठानी बनकर (ता, वां) कर्मयोगी और ज्ञानयोगी को (मेधसाता) अपने यज्ञों में (गीर्भिः) अपनी नम्र वाणियों से (हवामहे) बुलाते हैं ताकि वे आकर हमको सदुपदेश करें ॥६॥

भावार्थः—संसार में अभ्युदय और शोभन साहित्य उन्हीं लोगों का बढ़ता है, जो लोग अपने यज्ञों में सदुपदेष्टा कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों को बुलाकर सदुपदेश सुनते हैं ॥६॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।

मा नो दुःशंस ईशत ॥७॥

पदार्थः—(चर्षणीसहा) हे दुष्टों के दमन करने वाले (इन्द्राग्नी) कर्मयोगी ज्ञानयोगी विद्वानो ! आप (अवसा) ऐश्वर्य के साथ (आगतं) हमारे यज्ञों में आवें और हमारे (दुःशंसः) शत्रु (नः) हमको (मा, ईशत) न सतावें ॥७॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि याज्ञिक लोगो, तुम अपने यज्ञों में ऐसे विद्वानों को बुलाओ जो दुष्टों के दमन करने और ऐश्वर्य के उत्पन्न करने में समर्थ हों ॥७॥

मा कस्यं नो अरंरुषो धूर्तिः प्रणाङ् मर्त्यस्य ।

इन्द्राग्नी शर्मं यच्छतम् ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे कर्मयोगी, ज्ञानयोगी विद्वानो, (कस्य) किसी (अररुषो मर्त्यस्य) दुष्ट मनुष्य का भी (नः) हमको (धूर्तिः) अनिष्टचिन्तन करने वाला (मा प्रणक्) मत बनाएं और (शर्म) शमविधि (यच्छतं) दें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु जनो, तुम अपने विद्वानों से शमविधि की शिक्षा लो अर्थात् तुम्हारा मन किसी में भी दुर्भावना का पात्र न बने किन्तु तुम सब के कल्याण की सदैव इच्छा करो। इस भाव को अन्यत्र भी वर्णन किया है कि "मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" (यजु०) तुम सब को मित्रता की दृष्टि से देखो ॥८॥

गोमद्धिरंण्यवद्वसु यद्वामश्वांवदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥९॥

पदार्थः—(इन्द्राग्नी) हे कर्मयोगी, ज्ञानयोगी विद्वानो ! आपके सदुपदेश से हम (हिरण्यवत्) रत्न (अश्वावत्) अश्व (गोमत्) गौयें इत्यादि अनेक प्रकार के (यद्वसु) जो धन हैं उनकी प्राप्ति के लिए (ईमहे) यह प्रार्थना करते हैं कि (तद्, वनेमहि) उनको हम प्राप्त हों ॥९॥

भावार्थः—उक्त विद्वानों के सदुपदेश से हम सब प्रकार के धनों को प्राप्त हों ॥९॥

यत्सोम आ सुते नरं इन्द्राग्नी अजोहवुः ।

सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥१०॥

पदार्थः— हे (इन्द्राग्नी) कर्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! (नरः) यज्ञों के नेता ऋत्विगादि, (यत्) जब (सोमे) सोम औषधि के (सुते) बनने के समय (सपर्यवः) आपके उपासक (अजोहवुः) आपको बुलाएं तो आप वहां जाकर उनको सदुपदेश करें, और (सप्तीवन्तः) उन्हें अनेकविध धनों से सम्पन्न करें ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो, आप ऋत्विगादिक विद्वानों के यज्ञों में जाकर उनकी शोभा को अवश्यमेव बढ़ाएं ॥१०॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।
आङ्गूषैराविवासतः ॥११॥

पदार्थः—(वृत्रहन्तमा) हे अज्ञान के नाश करने वाले कर्म्मयोगी तथा ज्ञानयोगी विद्वानो ! आप (उक्थेभिः) परमात्मस्तुतिविधायक वेदमन्त्रों द्वारा (मंदाना) प्रसन्न होते हुए (चिदा) अथवा (गिरा) आपके आवाहनविधायक वाणियों से (आङ्गूषैः) जो उच्चस्वर से पढ़ी गई हैं उनसे आकर ज्ञानयज्ञ तथा कर्म्मयज्ञ को अवश्यमेव विभूषित करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में कर्मयोगी और ज्ञानयोगियों से अज्ञान के नाश करने की प्रार्थना का विधान है ॥११॥

ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप (इद्दुःशंसं) दुष्ट पुरुषों को, जो (दुर्विद्वांसं) विद्या का दुरुपयोग करते हैं उनको (रक्षस्विनं) जो राक्षसभावों वाले हैं (आभोगं) अन्य अधिकारियों से छीन कर जो स्वयं भोग करते हैं (हन्मना) उनको अपनी विद्या से (हतम्) नाश करो जिस प्रकार (उदधिम्) समुद्र विद्वानों की विद्या द्वारा (हन्मना, हतम्) यन्त्रों से मथा जाता है इस प्रकार आप अपने विद्याबल से राक्षसों का दमन करो ॥१२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो, आप राक्षसी वृत्ति वाले दुष्टाचारी पुरुषों को अपने विद्याबल से नाश करो क्योंकि अन्यायाचारी अधर्म्मात्माओं का दमन विद्याबल से किया जा सकता है अन्यथा नहीं; अतः आप इस संसार से पापपिशाच को विद्याबल से भगाओ ॥१२॥

सप्तम मण्डल में ९४ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य पञ्चनवतितमस्य सूक्तस्यः १–६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, २, ४, ५, ६ सरस्वती; ३ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः–१, पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६, आर्षी त्रिष्टुप् ३, ४, विराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब प्रसंगसंगति से सरस्वती देवी विद्या को वर्णन करते हैं, जिसकी प्राप्ति से पुरुष कर्मयोगी और ज्ञानयोगी बनते हैं ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

पदार्थः—(सरस्वती) [यह निघण्टु २। २३। ५७ वाणी के नामों में पढ़ा है, इस लिये सरस्वती यहां विद्या का नाम है। व्युत्पत्ति इसकी इस प्रकार है "सरो ज्ञानं विद्यतेऽस्या असौ सरस्वती" जो ज्ञान वाली हो उसका नाम सरस्वती है।]सरस्वती विद्या (धरुणम्) सब ज्ञानों का आधार है, (आयसी) ऐसी दृढ़ है कि मानो लोहे की बनी हुई है, (पूः) सब प्रकार के अभ्युदयों के लिये एक पुरी के सदृश है,(प्र, क्षोदसा) अज्ञानों के नाश करने वाले (धायसा) वेग से (सस्रे) अनवरत प्रवाह से संसार को सिञ्चन कर रही है, (एषा) यह ब्रह्मविद्यारूप (प्र, बाबधाना) अत्यन्त वेग से (रथ्या, इव) नदी के समान (याति) गमन करती और (महिना) अपने महत्त्व से (सिन्धुः) स्यन्दन करती हुई (विश्वा, अपः) सब जलों को ले जाने वाली (अन्याः) और है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो, ब्रह्मविद्यारूपी नदी सब प्रकार के अज्ञानादि पापपंकों को बहा ले जाती है और यही नदी भुवनत्रय को पवित्र करती अर्थात् अन्य जो भौतिक नदियें हैं वे किसी एक प्रदेश को पवित्र करती हैं और यह सब को पवित्र करने वाली है, इस लिए इसकी उन से विलक्षणता है। तात्पर्य यह है कि यह विद्यारूपी नदी आध्यात्मिक पवित्रता का संचार और भौतिक नदी बाह्य पवित्रता का संचार करती है ॥१॥

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥२॥

पदार्थः—(नदीनाम्) इन भौतिक नदियों के मध्य में (एका) एक ने (सरस्वती, अचेतत्) सरस्वतीरूप से सत्ता को लाभ किया, अर्थात् "सरांसि सन्ति यस्याः सा सरस्वती" जिस में बहुत-सी क्षुद्र नदियां मिलें उसका नाम सरस्वती है और जो (गिरिभ्यः) हिमालय से निकल कर (आ, समुद्रात्) समुद्र तक जाती है, वह सरस्वती (रायः, चेतन्ती) धन को देने वाली है, (शुचिः यती) पवित्ररूप से बहती है और वह (भुवनस्य) सांसारिक (नाहुषाय) मनुष्यों को (भूरेः) बहुत (घृतं) जल और (पयः) दूध से (दुदुहे) पूर्ण करती है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो! यह भौतिक नदियें केवल सांसारिक धनों को और संसार में सुखदायक जल तथा दुग्धादि पदार्थों को देती हैं, और विद्यारूपी सरस्वती आध्यात्मिक धन और ऐश्वर्य को देने वाली है। बहुत से टीकाकारों ने इस मन्त्र के अर्थ इस प्रकार किये हैं कि सरस्वती नदी नहुष राजा के यज्ञ करने के लिये संसार में आयी अर्थात्

जिस प्रकार यह जनप्रवाद है कि भगीरथ के तप करने से भागीरथी गंगा निकली यह भी इसी प्रकार का एक अर्थवादमात्र है, क्योंकि यदि यह भी भागीरथी के समान आती तो इसका नाम भी नाहुषी होना चाहिये था, अस्तु। इस प्रकार की कल्पित अनेक कथायें अज्ञान के समय में वेदार्थ में भर दी गयीं जिनका वेदों में गन्ध भी नहीं। क्योंकि नहुष शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि 'नह्यति कर्मसु इति नहुषस्तदपत्यं नाहुषः' इससे नाहुष शब्द का अर्थ यहां मनुष्य सन्तान है कोई राजाविशेष नहीं, इसी से निरुक्तकारने भी कहा है कि वेदों में शब्द यौगिक और योगरूढ़ हैं, केवल रुढ़ नहीं। इस बात को सायण ने भी अपनी भूमिका में माना है, फिर न मालूम क्यों यहां राजाविशेष अर्थ मान कर एक कल्पित कथा भर दी ॥२॥

अब प्रसंगसंगति से पूर्वोक्त आध्यात्मिक विद्यारूप सरस्वती का ज्ञानरूप से कथन करते हैं ॥

स वांवृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु।
स वाजिनं मघवंद्भ्यो दधाति वि सातयें तन्वं मामृजीत ॥३॥

पदार्थः—(सः) वह बोध (नर्यः) मनुष्यों के लिये और (योषणासु) स्त्रियों के लिये (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त हुआ है, और वह बोध (यज्ञियासु) यज्ञीय बुद्धिरूपी भूमियों में (वृषा) वृष्टि करने वाला है, और (शिशुः) अज्ञानादिकों को छेदन करने वाला है["श्यति अज्ञानादिकमिति शिशुः, शो तनूकरणे"](वृषभः) और आध्यात्मिक आनन्दों की वृष्टि करने वाला है, और वही (मघवद्भ्यः) याज्ञिक लोगों को (वाजिनं) बल (दधाति) देता है, वही (सातये) युद्ध के लिये (तन्वं) शरीर को (वि मामृजीत) मार्जन करता है ॥३॥

भावार्थः—सरस्वती विद्या से उत्पन्न हुआ प्रबोधरूप पुत्र स्त्रीपुरुषों को संस्कार करके देवता बनाता है और यज्ञकर्मा लोगों को याज्ञिक बनाता है। बहुत क्या जो युद्धों में आत्मत्याग करके शूर वीर बनते हैं उनको इतने शूरवीर साहसी और निर्भीक एकमात्र सरस्वती विद्या से उत्पन्न हुआ प्रबोधरूप पुत्र ही बनाता है, अन्य नहीं ॥३॥

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोपं श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥४॥

पदार्थः—(स्या, सरस्वती) वह सरस्वती (नः) हमारे लिये (जुषाणा) सेवन की हुई (अस्मिन्) इस ब्रह्मविद्यारूपी (यज्ञे) यज्ञ में (श्रवत्) आनन्द की वृष्टि करती

है (उत) और (मितज्ञुभिः) संयमी पुरुषों द्वारा (इयाना) प्राप्त हुई (सुभगा, राया) धन से मित्रों को वृद्धियुक्त करती है (चिदुत्तरा) उत्तरोत्तर सौन्दर्य्य को देने वाली (नमस्यैः) नमस्कार से और (सखिभ्यः) मित्रों को सदैव वृद्धियुक्त करती है ॥४॥

भावार्थः—सरस्वती विद्या यदि संयमी पुरुषों द्वारा अर्थात् सदाचारी पुरुषों द्वारा उपदेश की जाय तो पुरुष को ऐश्वर्य्यशाली बनाती है, सदा के लिये अभ्युदयसम्पन्न करती है ॥४॥

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥५॥

पदार्थः—(इमा) ये याज्ञिक लोग (जुह्वाना) हवन करते हुए (युष्मदा) तुम्हारी प्राप्ति में रत (नमोभिः) नम्र वाणियों के द्वारा तुम्हारा आवाहन करते हैं। (सरस्वति) हे विद्ये ! (प्रतिस्तोमं) इनके प्रत्येक यज्ञ को (जुषस्व) सेवन कर, हे विद्ये ! (तव प्रियतमे) तुम्हारे प्रियपन में (शर्म्मन्) सुख को (दधाना) धारण करते हुए (उप) निरन्तर (स्थेयाम) सदैव तुम्हारी (शरणं) शरण को (वृक्षं, न) आधार के समान हम आश्रयण करें ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक पुरुषो, तुम इस प्रकार विद्यारूप कल्पवृक्ष का सेवन करो जिस प्रकार धूप से सन्तप्त पक्षिगण आकर छायाप्रद वृक्ष का आश्रयण करते हैं एवं आप इस सरस्वती विद्या का सब प्रकार से आश्रयण करें ॥५॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(सरस्वति) हे ब्रह्मविद्ये ! (अयं) यह उपासक (वसिष्ठः) विद्यागुणसम्पन्न (ते) तुम्हारे (द्वारौ व्यावः) द्वारों को (सुभगे) हे ऐश्वर्य्य के देने वाली खोलता है। अर्थात् लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय के देने वाली वेद विद्ये! ब्रह्मवेत्ता पुरुष खोलता है, हे (शुभ्रे) कल्याणिनि ! तू (वर्ध) बढ़, (स्तुवते) जो पुरुष तुम्हारी स्तुति करते हैं उनके लिये तथा उनको (वाजान्, रासि) सम्पूर्ण प्रकार के बल दे और (यूयं) तू (स्वस्तिभिः) मंगल वाणियों से उनको सदा पवित्र कर ॥६॥

भावार्थः—जो लोग विद्या को चाहते हैं और प्रतिदिन विद्या में रत हैं उनके ब्रह्मविद्यारूप यज्ञ के दरवाजे खुल जाते हैं तथा वे सब प्रकार के सुखों को प्राप्त होते हैं ॥६॥

सप्तम मण्डल में ९५ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य षण्णवतितमस्य सूक्तस्य १–६ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३ सरस्वती । ४–६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिग्बृहती । २ आर्षी भुरिग्बृहती । ३ निचृत्पंक्तिः । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ आर्षीगायत्री ॥ स्वरः १–२ मध्यमः ३ पञ्चमः ४, ५, ६ षड्जः ॥

अब उक्त विद्या को नदी का रूपक बांध कर वर्णन करते हैं ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।

सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

पदार्थः—(नदीनां) नदियों में से जो प्रफुल्लित पुष्पित करने वाली है और (असुर्य्या) बलवाली है उस (वचः) वाणी को (वसिष्ठ) हे विद्वन्! (गायिषे) तू गायन कर, (बृहत्रोदसी) द्यु और पृथ्वी लोक में (सरस्वतीं, इत्) सरस्वती विद्या की ही तुम लोग (महय) पूजा करो और वह पूजा (सुवृक्तिभिः) निर्दोष (स्तोमैः) यज्ञों से करो ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वान् लोगो, आप के लिए पूजायोग्य एकमात्र सरस्वती विद्या है, उसकी पूजा करने वाला विद्वान् कदापि अवनति को प्राप्त नहीं होता किन्तु सदैव अभ्युदय को प्राप्त होता है। तात्पर्य्य यह है कि सत्कर्तव्य एकमात्र परमात्मा का ज्ञान है उसी का नाम (ब्रह्मविद्या) सरस्वती वा ज्ञान है क्योंकि विद्या, ज्ञान, सरस्वती ये तीनों पर्य्याय शब्द हैं, परमात्मा का ज्ञान तादात्म्यसम्बन्ध से परमात्मा में रहता है इसलिए वह परमात्मा का रूप है, इसलिये यहां जडोपासना का दोष नहीं आता ॥१॥

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।

सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थः—(शुभ्रे) हे पवित्र स्वभाव वाली विद्ये! (पूरवः) मनुष्य लोग तुम से (उभे) दो प्रकार के फल लाभ करते हैं (यत्ते) तुम्हारे वे दोनों (अन्धसी) दिव्य हैं अर्थात् एक अभ्युदय और दूसरा निश्रेयस। (सा) वह ब्रह्मविद्या (नः) हमारी (बोध्यवित्री) बोधन करने वाली है (मघोनां) ऐश्वर्य्य में से सर्वोपरि ऐश्वर्य्य (राधः) जो धनरूप है, हे विद्ये ! तू वह (चोद) हमको दे ॥२॥

भावार्थः—ब्रह्मविद्या से मनुष्यों को अभ्युदय और निःश्रेयस ये दोनों फल प्राप्त होते हैं। इस मन्त्र द्वारा प्रार्थना की गई है कि बोधन करने वाली ब्रह्मविद्या हमें धनरूप सर्वोपरि ऐश्वर्य्य प्रदान करे ॥२॥

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥३॥

पदार्थः—(भद्रा) प्राप्त करने योग्य (सरस्वती) विद्या (भद्रम्, इत्) कल्याण ही (कृणवत्) करे, जो विद्या (अकवारी) कुत्सित अज्ञानादि पदार्थों की विरोधिनी (चेतति) सबको जगाती है (वाजिनीवती) ऐश्वर्यवाली (गृणाना) और अविद्यान्धकार को नाश करने वाली है वह विद्या (जमदग्निवत्) जमदग्नि के समान (च) और (वसिष्ठवत्) सर्वोपरि विद्वान् के समान (स्तुवाना) स्तुति की हुई फलदायक होती है ॥३॥

भावार्थः—सरस्वती ब्रह्मविद्या जो सब ज्ञानों का स्रोत है वह यदि ऋषि-मुनियों के समान स्तुति की जाय अर्थात् उनके समान यह भी ध्यान का विषय बनाई जाय तो मनुष्य के लिये फलदायक होती है। जमदग्नि यहां कोई ऋषिविशेष नहीं किन्तु "जमन् अग्निरिव" जो जमन्=प्रकाश करता हुआ अग्नि के समान देदीप्यमान हो अर्थात् तेजस्वी और ब्रह्मवर्चस्वी हो उसको जमदग्नि कहते हैं;, एवम् वसिष्ठ यह नाम भी वेद में गुणप्रधान है व्यक्तिप्रधान नहीं, जैसा कि "धर्मादिकर्त्तव्येषु अतिशयेन वसतीति वसिष्ठः" जो धर्मादिकर्तव्यों के पालन करने में रहे अर्थात् जो अपने यम-नियमादिव्रतों को कभी भंग न करे, उसका नाम यहां वसिष्ठ है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष उक्त विद्वानों के समान विद्या को पूजनार्ह और सत्कर्तव्य समझता है वह इस संसार में कृतकार्य होता है अन्य नहीं ॥३॥

अब उक्त ब्रह्मविद्या के फलरूप ज्ञान का कथन करते हैं ॥

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
सरस्वन्तं हवामहे ॥४॥

पदार्थः—(जनीयन्तः) शुभ सन्तान की इच्छा करते हुए (पुत्रीयन्तः) पुत्रवाले होने की इच्छा करते हुए (सुदानवः) दानी लोग (अग्रवः) ब्रह्म की समीपता चाहने वाले (नु) आज (सरस्वन्तम्) सरस्वती के पुत्ररूपी ज्ञान को (हवामहे) आवाहन करते हैं ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम ब्रह्मज्ञान का आह्वान करो, जो विद्यारूपी सरस्वती माता से उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण प्रकार के अनिष्टों को दूर करने वाला है, परन्तु उसके पात्र वे पुरुष बनते हैं जो उदारता के भाव और वेदरूपी विद्या के अधिकारी हों, अर्थात्

जिनके मलविक्षेपादि दोष सब दूर हो गए हों और जो यम-नियमादि सम्पन्न हों, वे ही ब्रह्मज्ञान के अधिकारी होते हैं अन्य नहीं, या यों कहो कि जो अंग और उपांगों के साथ वेद का अध्ययन करते और यमनियमादिसम्पन्न होते हैं ।।४।।

अब ज्ञान को स्रोतरूप से वर्णन करते हैं ।।

ये ते॑ सरस्व ऊर्मयो॒ मधु॑मन्तो घृत॒श्चुतः॑ ।

तेभि॑र्नोऽवि॒ता भ॑व ।।५।।

पदार्थः—(सरस्वः) हे सरस्वः ["मतुवसोरुसंबुद्धौ छन्दसि"] (ये) जो (ते) तुम्हारी (ऊर्मयः) लहरें हैं (मधुमन्तः) वे बड़ी मीठी (घृतश्चुतः) और जिनमें से नाना प्रकार के स्रोत बह रहे हैं, ["घृतमिति उदकनामसु पठितं निघण्टौ"] (तेभिः) उनसे (नः) हमारे (अविता) तुम रक्षक (भव) बनो ।।५।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! ब्रह्मविद्यारूपी सरित् की लहरें अत्यन्त मीठी हैं, और आप विद्याप्राप्ति के लिए सदैव यह विनय किया करें कि वह विद्या अपने विचित्र भावों से आप की रक्षक बनें ।।५।।

पी॒पि॒वांसं॒ सर॑स्वत॒ः स्तनं॒ यो वि॒श्वद॑र्शतः ।

भ॒क्षी॒महि॑ प्र॒जामिष॑म् ।।६।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (सरस्वतः) ब्रह्मविद्या के (स्तनम्) उस स्तन को (पीपिवांसम्) जो कि अमृत से भरा हुआ है, और (यः) जो (विश्वदर्शतः) सब प्रकार के ज्ञानों को देने वाला है अर्थात् जिसको पीकर सब प्रकार की आँखें खुलती है, उसको पीकर (प्रजाम्, इषम्) प्रजा के सब ऐश्वर्य को (भक्षीमहि) हम भोगें ।

भावार्थः—जीव प्रार्थना करता है कि हे परमात्मन् ! मैं ब्रह्मविद्या के स्तन का पान करूं, जिस अमृत को पीकर पुरुष दिव्यदृष्टि हो जाता है और संसार के सब ऐश्वर्यों के भोगने योग्य बनता है ।।६।।

सप्तम मण्डल में ९६वां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ दशर्चस्य सप्तनवतितमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठ ऋषिः ।। १ इन्द्रः । २, ४–८ बृहस्पतिः । ३, ९ इन्द्रा-ब्रह्मणस्पती । १० इन्द्राबृहस्पती देवते ।। छन्दः १ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् ।। धैवतः स्वरः ।।

अथ प्रसङ्गसङ्गति से ब्रह्मणस्पति विद्या के पति परमात्मा का वर्णन करते हैं ॥

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥१॥

पदार्थः—(यत्र, यज्ञे) जिस यज्ञ में (देवयवः) देव=ईश्वर=परमात्मा को चाहने वाले (नरः) मनुष्य (मदन्ति) आनन्द को प्राप्त होते हैं और (नृषदने) जिस यज्ञ में (दिवः) द्युलोक से (पृथिव्याः) पृथिवी पर (गतम्) विद्वान् लोग विमानों द्वारा आते हैं, और जिस यज्ञ में (वयः) ब्रह्म के जिज्ञासु (प्रथमम्) सबसे पहले (मदाय) ब्रह्मानन्द के लिये आकर उपस्थित होते हैं, उस में (इन्द्राय)["इन्दतीतीन्द्रः परमात्मा"] परमात्मा की (सवनानि) उपसनायें (सुन्वे) करूं ॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम उपासनारूप यज्ञों में परस्पर मिल कर उपासना करो और द्युलोक द्वारा विमानों पर आये हुए विद्वानों का आप भली भांति सत्कार करें। यहां जो "सुन्वे" उत्तम पुरुष का एक वचन देकर जीव की ओर से प्रार्थना कथन की गयी है यह शिक्षा का प्रकार है, अर्थात् जीव की ओर से यह परमात्मा का वचन है। यही प्रकार 'अग्निमीळे पुरोहितम् (ऋक् १, १ १)' में परमात्मा की स्तुति करता हूँ इत्यादि मन्त्रों में भी दर्शाया गया है। इससे यह संदेह सर्वथा निर्मूल है कि यह वाक्य जीवनिर्मित है, ईश्वरनिर्मित नहीं; क्योंकि उपासना प्रार्थना के विषय में सर्वत्र जीव की ओर से प्रार्थना बतलायी गयी है ॥१॥

आ दैव्यां वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥२॥

पदार्थः—(सखायः) हे मित्र लोगो ! (बृहस्पतिः) ["बृहतां पतिः बृहस्पतिः" 'ब्रह्म वै बृहस्पतिः' (शतपथ कांड । ९-१०६) यहां बृहस्पति नाम ब्रह्म का है] (नः) वह परमात्मा हम लोगों की (दैव्या, अवांसि) रक्षा करें, हम लोग अपने यज्ञों में (अवृणीमहे) वरण करें अर्थात् उसको स्वामीरूप से स्वीकार करें (यथा) जिस प्रकार (मीळहुषे) विश्वम्भर के लिये (अनागाः) हम निर्दोष (भवेम) सिद्ध हों (यः) जो परमात्मा (नः) हमको (परावतः, पितेव) शत्रुओं से बचाने वाले पिता के समान (दाता) जीवनदाता है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम उस बृहस्पति की उपासना करो जो तुम को सब विघ्नों से बचाता है, और पिता के समान रक्षा करता है। इस मन्त्र में बृहस्पति शब्द परमात्मा के लिए आया है जैसा कि 'शं नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः' (यजुः ३६, ९) इस मंत्र में बृहस्पति शब्द परमात्मा के अर्थ में है ॥२॥

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥३॥

पदार्थः—(तम्, उ) उसी (ज्येष्ठम्) सबसे बड़े और (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद के पति परमात्मा को (नमसा, गृणीषे) नम्रता से ग्रहण करता हूँ, [यहां उत्तम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग व्यत्यय से है] (इन्द्रं, महि) उस परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्मा को (दैव्यः श्लोकः) यह दिव्य स्तुति (सिसक्तु) सेवन करे (यः) जो (देव-कृतस्य, ब्रह्मणः) ईश्वरकृत वेद का (राजा) प्रकाशक है, और वह परमात्मा (सुशेवम्) सब का उपास्यदेव है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया गया है कि वेद-प्रकाशक परमात्मा ही एकमात्र पूजनीय है, उसको छोड़कर ईश्वरत्वेन और किसी की उपासना नहीं करनी चाहिए ॥३॥

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (नः) हमारे (योनिम्) हृदय में (आ, सदतु) निवास करे (यः) जो परमात्मा (प्रेष्ठः) सबका प्रियतम (बृहस्पतिः) निखिल ब्रह्माण्डों का पति (विश्ववारः) सब का उपास्य देव (अस्ति) है, (सुवीर्यस्य) हमको जो ब्रह्मचर्यरूपी बल (रायः) और ऐश्वर्य की (कामः) इच्छा है (तम्) उसको (दात्) दे, और (सश्चतः) उपद्रवों में फंसे हुए (नः) हमको (अरिष्टान्) सुरक्षित करके (अति, पर्षत्) शत्रुओं से बचावे ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम उस परमदेव को अपने हृदयमन्दिर में स्थान दो जो सबका एकमात्र उपास्यदेव और इस निखिल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है ॥४॥

तमा नों अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।

शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥५॥

पदार्थः—(बृहस्पतिम्) सब का स्वामी (अनर्वाणम्) जो इन्द्रियअगोचर है (तं हुवेम) उसको हम ज्ञान द्वारा प्राप्त हों (शुचिक्रन्दम्) जिसके पवित्र स्तोत्र हैं (अर्कम्) जो स्वत:प्रकाश है (यजतम्) जो यजनार्ह है (अमृताय, जुष्टम्) जो अमृतमय है जिसको (अमृतासः) मुक्ति सुख के भजने वाले (पुराजाः) प्राचीन (इमे) इन देवों ने (पस्त्यानाम्, नः) गृहस्थ हम लोगों को (आधासुः) धारण कराया है ॥५॥

भावार्थः—जो परमात्मा स्वत:प्रकाश और जन्ममरणादि धर्मरहित है अर्थात् नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है उसको हम अपने शुद्ध अन्त:करण में धारण करें । तात्पर्य यह है कि जब मन मलविक्षेपादि दोषों से रहित हो जाता है तब उसे ब्रह्म की अवगति अर्थात् ब्रह्मप्राप्ति होती है, और ब्रह्म-प्राप्ति के अर्थ यहां ज्ञान द्वारा प्राप्ति के हैं, देशान्तर प्राप्ति के नहीं । इस बात को भली भांति निम्नलिखित मन्त्र में वर्णन किया गया है ॥५॥

यह ब्रह्मप्राप्ति नीचे के मंत्र से निरूपण की जाती है ॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।

सहश्चिद्यस्य नीळवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥६॥

पदार्थः—(तम्) उस (बृहस्पतिम्) परमात्मा को जो (सधस्थम्) जीव के अत्यन्त संनिहित है (नभः) और आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है (न, रूपम्) जिसका कोई रूप नहीं है उस (अरुषम्) सर्वव्यापक परमात्मा को (वसानाः) विषय करती हुई (शग्मासः) आनन्द को अनुभव करने वाली (अरुषासः) परमात्मपरायण (अश्वाः) शीघ्रगतिशील (सहवाहः) परमात्मा से जोड़ने वाली इन्द्रियवृत्तियां (वहन्ति) उस परमात्मा को प्राप्त कराती हैं, जो परमात्मा (सहः, चित्) बलस्वरूप है और (यस्य, नीळवत्) जिसका नीड अर्थात् घोंसले के समान यह ब्रह्माण्ड है ॥६॥

भावार्थः—श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनों से संस्कृत हुई अन्त:करण की वृत्तियां उस नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म को प्राप्त कराती हैं जो सर्वव्यापक और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि गुणों से रहित है और कोटानुकोटि ब्रह्माण्ड जिस के एक देश में जीवों के घोंसलों के समान एक प्रकार की तुच्छ सत्ता से स्थिर हैं ॥६॥

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

पदार्थः—(सः, हि) वह परमात्मा निश्चय (शुचिः) शुद्ध है (शतपत्रः) सर्वशक्तिमान् है (सः) वह परमात्मा (शुन्ध्युः) सबको शुद्ध करनेवाला है (हिरण्यवाशीः) स्वर्णमयी वाणी वाला है["वाशीतिवाङ्नामसु पठितम्" (निघण्टौ १,११)](इषिरः) सर्वप्रिय (स्वर्षाः) आनन्द का दाता (बृहस्पतिः) कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों का पति (स्वावेशः) सर्वाधार (ऋष्वः) दर्शनीय है, इस प्रकार का परमात्मा (सखिभ्यः) अपने भक्तों =जिज्ञासुओं के लिए (पुरु) बहुत (आसुतिम्) ऐश्वर्य (करिष्ठः) करता है ॥७॥

भावार्थः—उक्तगुणसम्पन्न परमात्मा अपने भक्तों को, आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों तापों को मिटा कर, अति ऐश्वर्य का प्रदान करता है ॥७॥

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥८॥

पदार्थः—(देवस्य) उक्त देव जो परमात्मा है उसकी (बृहस्पतिम्) महत्ता को (रोदसी, देवी) द्युलोक और पृथ्वी लोक रूपी दिव्यशक्तियाँ(वावृधतुः) बढ़ाती हैं। हे जिज्ञासु लोगो ! (महित्वा) उसके महत्त्व को (दक्षाय्याय) जो सर्वोपरि है उसको (सखायः) हे मित्र लोगो ! तुम भी (दक्षत) बढ़ाओ, और (ब्रह्मणे) जिस परमात्मा ने वेद को (सुतरा) इस भवसागर के तरने योग्य (सुगाधा) सुखपूर्वक अवगाहन करने योग्य (करत्) बनाया है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में द्युलोक और पृथिवी लोक को बृहस्पति परमात्मा के द्योतक वर्णन किया है, अर्थात् पृथिव्यादि लोक उसकी सत्ता का बोधन करते हैं। यहां जनित्री के ये अर्थ हैं कि इसका आविर्भाव (प्रकट) करते हैं और ब्रह्म शब्द के अर्थ जो यहां सायणाचार्य ने अन्न के किये हैं वह सर्वदा वेदाशय के विरुद्ध हैं क्योंकि इसी सूक्त में ब्रह्मणस्पति शब्द में ब्रह्म के अर्थ वेद के आ चुके हैं, फिर यहां अन्न के अर्थ कैसे ? यूरोप देश निवासी मोक्षमूलर भट्ट, मिस्टर विलसन, और ग्रिफिथ साहब ने भी इस मन्त्र के अर्थ यही किये हैं कि द्युलोक और पृथिवी लोक ने बृहस्पति को पैदा किया, यह अर्थ वैदिक प्रक्रिया से सर्वथा विरुद्ध है ॥८॥

इसका खण्डन हम निम्नलिखित मन्त्र में करेंगे॥

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः॥९॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे ईश्वर, (वां) तुम्हारी (इयम्) यह (सुवृक्तिः) दोष-रहित स्तुति जो कि (ब्रह्म, इन्द्राय) सर्वोपरि ऐश्वर्यंयुक्त (वज्रिणे) ज्ञानस्वरूप आपके लिए (अकारि) की गयी है वह (अविष्टम्) हमारी रक्षक हो और (धियः, जिगृतं, पुरन्धीः) हमारी सब भावनाओं को स्वीकार करे। (अर्यः) परमात्मा (वनुषाम्) प्रार्थनायुक्त हम लोगों के (अरातीः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नाश करें॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में ब्रह्मणस्पति शब्द उसी वेदपति परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसका वर्णन इस सूक्त के कई एक मन्त्रों में प्रथम भी आ चुका है।

ब्रह्मणस्पति के अर्थ वेद के पति के हैं अर्थात् आदिसृष्टि में ब्रह्मवेद-विद्या का दाता एक मात्र परमात्मा था इसी अभिप्राय से परमात्मा को (ब्रह्म) वेद का पति कथन किया गया है॥९॥

अब उक्त बृहस्पति परमात्मा की प्रार्थना द्वारा इस सूक्त का उपसंहार करते हैं

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥

पदार्थः—(बृहस्पते) हे सब के स्वामी परमेश्वर! (युवम्) आप (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यसम्पन्न हैं (च) और (दिव्यस्य, उत, पार्थिवस्य) द्युलोक और पृथ्वीलोक में होने वाले (वस्वः) रत्नों के (ईशाथे) ईश्वर अर्थात् देने वाले हैं, इससे (स्तुवते) स्तुति करने वाले अपने भक्त को (रयिम्) धन (धत्तम्) दीजिये, (चित्) और (यूयम्) आप (स्वस्तिभिः) मंगल वाणियों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करें॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो! तुम उस बृहस्पति सर्वोपरि ब्रह्म की उपासना करो जिसने द्युलोक और पृथिवीलोक के सब ऐश्वर्य्यों को उत्पन्न किया है, और उसी से सब प्रकार के धन और ऐश्वर्यों की प्रार्थना करते हुए कहो कि हे परमात्मा! आप मंगल वाणियों से हमारी सदैव रक्षा करें॥१०॥

सप्तम मण्डल में ९७ वां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ सप्तर्चस्य अष्टनवतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः॥ १—६ इन्द्रः, ७ इन्द्राबृहस्पती देवते॥ छन्दः—१, २, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ३ विराट्त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्॥ धैवतः स्वरः॥

अब उक्त परमात्मा सर्वशक्तिरूप से वर्णन किया जाता है॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम्।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन्॥१॥

पदार्थः—(अध्वर्यवः) हे ऋत्विग्! आप लोग (क्षितीनां वृषभाय) जो इन सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का स्वामी आनन्द की वृष्टि करने वाला परमात्मा है, उसकी (जुहोतन) उपासना करें, और (अरुणम्) आह्लादक पदार्थों से तथा (दुग्धम्) स्निग्ध-द्रव्यों से (अंशुम्) ओषधियों के खण्डों से हवन करें और (वेदीयान्) वेदीगत (गौरात्) शुभ्र पदार्थों का (अवपानम्) पान करें, ऐसा करने से (इन्द्रः) परमैश्वर्यवाला विद्वान् (विश्वाहा) सर्वदा (सुतसोमम्, इच्छन्) सुन्दर शील की इच्छा करता हुआ अपने उच्च लक्ष्य को (याति) प्राप्त होता है॥१॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे ऋत्विग् लोगो! आप निखिल संसार के पति परमात्मा की उपासना करो, और सुन्दर-सुन्दर पदार्थों से हवन करते हुए अपने स्वभाव को सौम्य बनाने की इच्छा करो। इस मन्त्र में परमात्मा ने सौम्य स्वभाव बनाने का उपदेश किया, अर्थात् जो विद्वान् शीलसम्पन्न होता है वही अपने लक्ष्य को प्राप्त होता है अन्य नहीं; इस भाव का यहां वर्णन किया गया है॥१॥

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान्॥२॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे विद्वन्! (यत्) जो तुम (दिवे, दिवे) प्रतिदिन (चारु, अन्नम्) श्रेष्ठ अन्न को धारण करते हो और (प्रदिवि) गतदिनों में भी तुमने श्रेष्ठ अन्न को ही धारण किया और (अस्य) सौम्य स्वभाव बनाने वाले सोम द्रव्य के (पीतिम्, इत्) पान को ही (वक्षि) चाहते हो (उत) और (हृदा) हृदय से (उत) और (मनसा) मन से (जुषाणः) परमात्मा का सेवन करते हुए और (उशन्) सबकी भलाई की इच्छा करते हुए तुम (प्रस्थितान्, पाहि, सोमान्) इन उपस्थित सोमपा लोगों को अपने उपदेशों द्वारा पवित्र करो॥२॥

भावार्थः—केवल सोम द्रव्य के पीने से ही शील उत्तम स्वभाव नहीं

बन सकता, इस लिए यह कथन किया है कि हे विद्वन् ! आप सौम्य स्वभाव का उपदेश करके लोगों में शान्ति फैलावें ॥२॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे विद्वन्, (जज्ञानः) तुमने पैदा होते ही (सहसे) बल के लिये (सोमम्) सौम्य स्वभाव बनाने वाले सोमरस का (पपाथ) पान किया और (ते) तुम्हारी माता ने (महिमानम्, उवाच) परमात्मा के महत्त्व का तुम्हारे प्रति उपदेश किया। तुमने (उरु, अन्तरिक्षम्) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (आपप्राथ) अपने विद्याबल से परिपूर्ण किया, तथा (देवेभ्यः) देवप्रकृतिवाले मनुष्यों के लिये (वरिवः) धनरूपी ऐश्वर्य (चकर्थ) उत्पन्न किया ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में इस बात का उपदेश किया गया है कि जो पुरुष प्रथम माता से शिक्षा उपलब्ध करता है तथा वैदिक संस्कारों द्वारा अपने स्वभाव को सुन्दर बनाता है वह सर्वोत्तम विद्वान् होकर इस संसार में अपने यश को फैलाता है और वेदानुयायी पुरुषों के ऐश्वर्य को बढ़ाता है ॥३॥

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।

यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (महतो, मन्यमानान्, योधयाः) युद्ध करनेवाले जो बड़े से बड़ा अपने को मानते हैं और (शाशदानान्) बड़े हिंसक हैं (तान्) उनको (बाहुभिः) हाथों से (साक्षाम) हनन करने में हम समर्थ हों, और (यत्, वा) अथवा (नृभिः) मनुष्यों करके (वृतः) आवृत हुआ (इन्द्र) युद्धविद्यावेत्ता विद्वान् (अभियुध्याः) हम से युद्ध करे (तम्) उस (सौश्रवसम्) बड़े प्रख्यात को (आजिम्) संग्राम में (त्वया) तुम्हारी सहायता से (जयेम) जीतें ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष न्यायशील होकर अन्यायकारी शत्रुओं को दमन करने का बल मांगते हैं उनको मैं अनन्त बल देता हूं, ताकि वे अन्यायकारी हिंसकों का नाश कर संसार में धर्म और न्याय का राज्य फैलावें ॥४॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।

यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रस्य) विद्वान् के (प्रथमा, कृतानि) पहले किये हुए वीर्यकर्मों को तथा (या) जिन (नूतना) नवीन कर्मों को (मघवा) ऐश्वर्यसम्पन्न विद्वान् ने (प्र, चकार) किया उनको (प्र, वोचम्) वर्णन करते हैं, (यदा) जब इसने (अदेवीः, मायाः) आसुरी प्रकृति को (असहिष्ट, इत्) दृढ़रूप से सह लिया अर्थात् उसके वशीभूत न हुआ तब (केवलः, सोमः) केवल सोम अर्थात् शील (अस्य, अभवत्) इसका सहायक हुआ ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विद्वानो ! जो पुरुष आसुरी माया के बन्धन में नहीं आता उसके बल और यश को सम्पूर्ण संसार वर्णन करता है और उसकी दृढ़ता और परमात्मपरायणता उसको आपत् समय में भी सहायता देती है। इसलिये तुम ऐसा व्रत धारण करो कि छल, कपट, दम्भ के कदापि वशीभूत न होओ। इस दृढ़ता के लिये मैं तुम्हारा सहायक होऊँगा॥५॥

जिस परमात्मा की कृपा से पूर्वोक्त विद्वान् उक्त ऐश्वर्य को प्राप्त होता है, अब सूक्त की समाप्ति में उसका वर्णन करते हैं ॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।

गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६॥

पदार्थः— हे परमात्मन् ! (तव, इदम्, विश्वम्) तुम्हारा जो यह संसार है यह (अभितः) सब ओर से (पशव्यम्) प्राणीमात्र का हितकर है, क्योंकि (यत् पश्यसि) आप इसके प्रकाशक हैं (चक्षसा) और अपने तेज से (सूर्यस्य) सूर्य्य के भी प्रकाशक हैं। (इन्द्र) ["इन्दतीतीन्द्रः, इदि परमैश्वर्ये"] हे परमात्मन्! तुम (एकः) अकेले ही (गवाम्, असि) सब विभूतियों के आधार हो और (गोपतिः) सब विभूतियों के पति हो। (ते) तुम्हारा (प्रयतस्य) दिया हुआ (वस्वः) ऐश्वर्य (भक्षीमहि) हम भोगें ॥६॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक हैं और आपका यह संसार प्राणीमात्र के लिए सुखदायक है, जो कुछ हम इसमें दुःखदायक देखते हैं वह सब हमारे ही अज्ञान का फल है ॥६॥

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(बृहस्पते) हे सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामिन् ! (च) और (इन्द्र) हे परमैश्वर्ययुक्त परमात्मन् ! (युवम्) आप (दिव्यस्य, वस्वः) द्युलोक के ऐश्वर्य के (उत,

पार्थिवस्य) और पृथिवी के ऐश्वर्य्य के (ईशाथे) ईश्वर हो, हम आप से प्रार्थना करते हैं कि (स्तुवते, कीरये) अपने भक्त के लिये (रयिम्) धन को (धत्तम्) दें (चित्) और (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) मंगल वाणियों से (सदा) सर्वदा (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—यहां परमात्मा में जो द्विवचन दिया है वह इन्द्र और बृहस्पति के भिन्न-भिन्न होने के अभिप्राय से नहीं, किन्तु उत्पत्ति और स्थिति इन दो शक्तियों के अभिप्राय से अर्थात् स्वामित्व और प्रकाशकत्व इन दो शक्तियों के अभिप्राय से है, व्यक्तिभेद के अभिप्राय से नहीं। इसी अभिप्राय से आगे जाकर यूयम् यह बहुवचन दिया। तात्पर्य्य यह है कि एक ही परमात्मा को यहां बृहस्पति और इन्द्र इन नामों से गुणभेद से वर्णन किया जैसा कि एक ही ब्रह्म का "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० २।१) यहां सत्यादि नामों से एक ही वस्तु का ग्रहण है एवम् यहां भी भिन्न-भिन्न नामों से एक ही ब्रह्म का ग्रहण है, दो का नहीं ॥७॥

सप्तम मण्डल में ९८ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकोनशततमस्य सूक्तस्य १–७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ १–३, ७ विष्णुः । ४–६ इन्द्रा विष्णू देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७, निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का ज्ञाता परमेश्वर ही है, यह बताते हैं ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१॥

पदार्थः—(मात्रया) प्रकृति के पञ्च तन्मात्रारूप (तन्वा) शरीर से (वृधानः) वृद्धि को प्राप्त (ते) तुम्हारी (महित्वम्) महिमा को हे (विष्णो) विभो ! (न) नहीं (अश्नुवन्ति) प्राप्त कर सकते; हे व्यापक परमात्मन् (ते) तुम्हारे (उभे) दोनों लोकों को हम (विद्म) जानते हैं जो (पृथिव्याः) पृथिवी से लेकर (रजसी) अन्तरिक्ष तक हैं। हे (देव) दिव्य शक्तिमन् परमात्मन् ! (त्वं) तुम ही (अस्य) इस ब्रह्माण्ड के (परं) पार को (वित्से) जानते हो, अन्य नहीं ॥१॥

भावार्थः—जीव केवल प्रत्यक्ष से लोकों को जान सकता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का ज्ञाता एकमात्र परमात्मा है। तन्मात्रा कथन करना यहां प्रकृति के सूक्ष्म कार्य्यों का उपलक्षणमात्र है ॥१॥

न ते॑ विष्णो॒ जाय॑मानो॒ न जा॒तो देव॑ महि॒म्नः पर॒मन्त॑माप ।

उद॑स्तभ्ना॒ नाक॑मृ॒ष्वं बृ॒हन्तं॑ दा॒धर्थ॒ प्राचीं॑ क॒कुभं॑ पृथि॒व्याः ॥२॥

पदार्थः—(विष्णो) हे व्यापक परमेश्वर, (ते) तुम्हारे (महिम्नः) महत्व के (परं, अन्तं) सीमा को, (जायमानः) वर्त्तमानकाल में (जातः) भूतकाल में भी ऐसा कोई (न) नहीं हुआ जो आपके अंत को, (आप) प्राप्त हो सका । आप ने (नाकं) द्युलोक को (उदस्तम्नाः) स्थिर रखा है और आप की (महत्त्वं, ऋष्वं) महिमा दर्शनीय है तथा (बृहन्तं) सब से बड़ा है और (पृथिव्याः) पृथिवी लोक की (प्राचीं, ककुभं) प्राच्यादि दिशाओं को आप (दाधर्थ) धारण किये हुए हैं ॥२॥

भावार्थः—भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनों कालों में किसी की शक्ति नहीं जो परमात्मा के महत्त्व को जान सके इसी कारण उसका नाम अनन्त है; जिसको "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (तै० २ । १ ।) इस वाक्य ने भी भलीभांति वर्णन किया है । उसी ब्रह्म का यहां विष्णु नाम से वर्णन है । केवल यहां ही नहीं किन्तु "य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा (ऋ. मं. १।१५४।४") में यह कहा है कि जिस एक अद्वैत अर्थात् असहाय परमात्मा ने सत्वरजस्तम इन तीनों गुणों के समुच्चयरूप प्रकृति को धारण किया हुआ है उस व्यापक ब्रह्म का नाम यहां विष्णु है । "विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचं (ऋ. मं. १। १५४।१) । तद् विष्णोःपरमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः (ऋ. मं. १।सू. २२।२०) । इदं विष्णुर्विचक्रमे (ऋ. १।२२। १७॥) इत्यादि शतशः मन्त्रों में उस व्यापक विष्णु के स्वरूप को वर्णन किया है । फिर न जाने वेदों में आध्यात्मिकवाद की आशंका करने वाले किस आधार पर यह कहा करते हैं कि वेदों में एक ईश्वरवाद नहीं ॥२॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तं सू॑यव॒सिनी॒ मनु॑षे दश॒स्या ।

व्य॑स्तभ्ना॒ रोद॑सी विष्णवे॒ते दा॒धर्थ॑ पृथि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॑ ॥३॥

पदार्थः—(विष्णो) हे व्यापक परमात्मन्, (पृथिवीमभितः) पृथिवी के चारों ओर से (मयूखैः) अपने तेजरूप किरणों से (रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक को (दाधर्थ) आपने धारण किया हुआ है जो दोनों लोक (इरावती) ऐश्वर्य्य वाले (धेनुमती) सब प्रकार मनोरथों को पूर्ण करने वाले (सुयवसिनी) सर्वोपरि सुन्दर (मनुषे) मनुष्य के लिये (दशस्या) ऐश्वर्य्य देने के लिये आपने उत्पन्न किये हैं (वि, अस्तम्नाः) उन दोनों को आप अपनी शक्ति से धारण कर रहे हो ॥३॥

भावार्थः—यहां द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों उपलक्षणमात्र हैं। वास्तव में परमात्मा ने सब लोक-लोकांतरों को ऐश्वर्य्य के लिए उत्पन्न किया है और इस ऐश्वर्य्य के अधिकारी सत्कर्म्मी पुरुष हैं। जो लोग कर्म्मयोगी हैं उनके लिये द्युलोक तथा पृथिवीलोक के सब मार्ग खुले हुए हैं।

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे अधिकारी जनो, आप के लिये यह विस्तृत ब्रह्माण्डक्षेत्र खुला है। आप इस में कर्म्मयोग द्वारा अव्याहतगति अर्थात् विना रोक-टोक के सर्वत्र विचरें ॥३॥

उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।

दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४॥

पदार्थः—(उरुम्) इस विस्तृत (लोकम्) लोक को परमात्मा ने (यज्ञाय) यज्ञ के लिये (चक्रथुः) उत्पन्न किया है और उसी ने (सूर्य्यम् उषासमग्नि) उषा काल की ज्योतिवाले अग्निरूप सूर्य्य को (जनयन्ता) रचा है आप (पृतनाज्येषु) युद्धों में (दासस्य) कपटी लोगों को जो (वृषशिप्रस्य) दम्भ से काम लेते हैं उनके (मायाः) कपट को (जघ्नथुः) नाश करें। (नरा) हे नेता भगवन्! [नरा शब्द यहां नेता के अभिप्राय से आया है द्विवचन यहां व्यत्यय से अविवक्षित है] ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा प्रार्थनाकर्त्ताओं के द्वारा इसको प्रकट करते हैं कि न्यायाभिलाषी पुरुषो, तुम मायावी पुरुषों की माया के नाश करने के लिए प्रार्थनारूपी भाव को उत्पन्न करो, फिर यह सत्कर्म्म स्वयं प्रबल हो करके फल देगा ॥४॥

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।

शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्राविष्णू) हे न्याय और वज्ररूप शक्ति वाले परमात्मन्, आप (दृंहिताः) दृढ़ से दृढ़ (शम्बरस्य) मेघ के समान फैले हुए शत्रु के (नवनवतिं) निन्यानवे (च) और उस (वर्चिनः) मायावी पुरुष के (शतं) सैकड़ों (च) और (सहस्रं) हजारों (पुरः) दुर्गों को (श्नथिष्टं) नाश करें तथा (साकं) शीघ्र ही (अप्रत्यसुरस्य) उसके उभरने से प्रथम उसके (वीरान्) सैनिकों को (हथ) हनन करो ॥५॥

भावार्थः—मायावी शत्रु को दमन करने के लिए न्यायशील पुरुषों को परमात्मा उपदेश करते हैं कि तुम लोग अन्यायकारी शत्रुओं के सैकड़ों हजारों दुर्गों से मत डरो क्योंकि (माया) अन्याय से जीतने की इच्छा करने वाला असुर स्वयं अपने पाप से आप मारा जाता है और उसके लिये आकाश

से वज्रपात होता है जैसा कि अन्यत्र भी कहा है कि "प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र" (मं. ७।१०४ मं. १९) हे परमात्मा, तुम अन्यायकारी मायावी के लिए आकाश से वज्रपात करो। इस प्रकार न्याय की रक्षा के लिए वीर पुरुषों के प्रति यहां परमात्मा का उपदेश है ॥५॥

इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।

ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥६॥

पदार्थः—(बृहन्तोरुक्रमा) हे अनन्तशक्ते परमात्मन्! (इयं) यह (मनीषा) बुद्धि (बृहती) जो न्याय की रक्षा के लिये सब से बड़ी है (तवसा) बल देकर (वर्धयन्ती) बढ़ाती है इस लिये (विष्णो) हे परमात्मन्! (वां) आपकी यह (स्तोमं) स्तुति हम (ररे) करते हैं ताकि (विदथेषु) यज्ञों और (वृजनेषु) युद्धों में, (इन्द्र) हे परमात्मन्! (इषः) हमारे ऐश्वर्य्य को आप (पिन्वतं) बढ़ाएं ॥६॥

भावार्थः—जो ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाली इस वाणी को सेवन करते हैं अर्थात् (ब्रह्मयज्ञ) ईश्वरोपासना (और वीरयज्ञ) अन्याय के दमन करने के लिए वीरता करना, इस प्रकार भक्तिभाव और वीरभाव इन दोनों का अनुष्ठान करते हैं वे सब प्रकार की विपत्तियों को नाश कर सकते हैं ॥६॥

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।

वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(शिपिविष्ट) हे तजोमय परमात्मन्! आप (हव्यं) हमारी प्रार्थना को (जुषस्व) स्वीकार करें जो (वषट्) बड़ी नम्रतापूर्वक की गई है। (विष्णो) हे व्यापक परमात्मन्! (ते) तुम्हारे (आस) समक्ष वे प्रार्थनाएं (आ, कृणोमि) करता हूँ और (मे) मेरी (गिरः) ये वाणियें (सुष्टुतयः) जिनमें भले प्रकार से आपका वर्णन किया गया है (त्वां) आपके यश को (वर्धन्तु) बढ़ाएं और (यूयं) आप (सदा) सदैव (स्वस्तिभिः) मङ्गल कार्यों से (पात) हमारी रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—शिपिनाम यहां तेजोरूप किरणों का है "शिपयो रश्मयः" (निरु० ५।८॥) अर्थात् ज्योतिःस्वरूप परमात्मा हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करे और हमको सदैव उन्नति के मार्ग में ले जाय। यहां पहले (त्वां) एक वचन आकर भी (यूयं) फिर आदरार्थ बहुवचन है ॥७॥

सप्तम मण्डल में ९९वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य शततमस्य सूक्तस्य–१–७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ विष्णुर्देवता ॥ छन्दः १, २, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वर ॥

अब परमात्मा सुमति अर्थात् शुभ नीति का उपदेश करते हैं ॥

नू मर्तो॑ दयते सनि॒ष्यन्यो विष्ण॑व उरुगा॒याय॒ दाश॑त् ।

प्र यः स॒त्राचा॒ मन॑सा॒ यजा॑त ए॒ताव॑न्तं॒ नर्य॑मा॒विवा॑सात् ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो पुरुष (उरुगायाय) अत्यन्त भजनीय (विष्णवे) व्यापक परमात्मा की (सनिष्यन्) प्राप्ति के लिए इच्छा (दाशत्) करते हैं (नु) शीघ्र ही वे मनुष्य उसको (दयते) प्राप्त होते हैं। और जो (सत्राचा) शुद्ध मन से (यजात) उस परमात्मा की उपासना करता है वह (एतावन्तं, नर्यं) उक्त परमात्मा का जो सब प्राणिमात्र का हित करनेवाला है (आविवासात्) अवश्यमेव प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—परमात्मप्राप्ति के लिए सब से प्रथम जिज्ञासा अर्थात् प्रबल इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए। तदनन्तर जो पुरुष निष्कपट भाव से परमात्म-परायण होता है, उस पुरुष को परमात्मा का साक्षात्कार अर्थात् यथार्थज्ञान अवश्यमेव होता है ॥१॥

त्वं वि॑ष्णो सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्या॒मप्र॑युतामेवयावो म॒तिं दाः ।

पर्चो॒ यथा॑ नः सुवि॒तस्य॒ भूरे॒रश्वा॑वतः पुरुश्च॒न्द्रस्य॑ रा॒यः ॥२॥

पदार्थः—(एवयावः) हे सर्वकामनाप्रद (विष्णो) व्यापक परमेश्वर! (त्वं) आप हमें (विश्वजन्यां) सब संसार का हित करनेवाली (अप्रयुताम्) दोषरहित (सुमतिं) नीति (दाः) दें। और (पुरुश्चन्द्रस्य) सब प्रकार के ऐश्वर्यों का (रायः) साधन जो धन है और (भूरेः, अश्वावतः) जिस में अनेक प्रकार की शक्तियें हैं और जो (सुवितस्य) सुविधा से प्राप्त हो सकता है (यथा) जिस प्रकार (पर्चः) उसकी प्राप्ति हो वैसी (नः) हमको आप बुद्धि दें ॥२॥

भावार्थः—शुभ नीति और सुनीति उसका नाम है जिससे संसार भर का कल्याण हो। इस मन्त्र में परमात्मा ने इस नीति के उत्पन्न करने के लिए जिज्ञासु द्वारा प्रार्थना कथन करके उपदेश किया है। वास्तव में शुभ नीति ही धर्म, देश और जाति की उन्नति का सर्वोपरि साधन है ॥२॥

त्रिर्दे॒वः पृ॑थि॒वीमे॒ष ए॒तां वि च॑क्रमे श॒तर्च॑सं महि॒त्वा ।

प्र विष्णु॑रस्तु त॒वस॒स्तवी॑यान्त्वे॒षं ह्य॑स्य॒ स्थवि॑रस्य॒ नाम॑ ॥३॥

पदार्थः—(देवः) दिव्यशक्तियुक्त उक्त परमात्मा (एतां) इस (पृथिवीं) पृथ्वी को (त्रिः) तीन प्रकार से (विचक्रमे) रचता है (शतर्चसं) जिस पृथ्वी में सैंकड़ों प्रकार की (अर्चिः) ज्वालाएं हैं (महित्वा) जिसका बहुत विस्तार है और इस (स्थविरस्य) प्राचीन पुरुष का नाम इसीलिए (विष्णुः) विष्णु है क्योंकि (तवसः) यह तेरा स्वामी है, इसलिए इसका नाम विष्णु है अथवा यह सर्वव्यापक होने से सर्वस्वामी है, इसलिये इसका नाम विष्णु है ॥३॥

भावार्थः—तीन प्रकार से पृथ्वी को रचने के अर्थ ये हैं कि प्रकृति के सत्वादि गुणोंवाले परमाणुओं को परमात्मा ने तीन प्रकार से रखा, तामस भाववाले परमाणु पृथ्वी पाषाणादिरूप से, राजस नक्षत्रादिरूप से और दिव्य अर्थात् द्युलोकस्थ पदार्थों को सात्विक भाव से, ये तीन प्रकार की गतियें हैं इसीका नाम 'त्रेधा निदधे पदम्' है। इसी भाव को "इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्" (मं० १।२२।१७।) में वर्णन किया है जो कई एक लोग इसके अर्थ ये करते हैं कि विष्णु ने वामनावतार को धारण करके तीन पैर से पृथ्वी को नापा। इसका उत्तर यह है कि इसी विष्णुसूक्त में "तद विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः" (मं० १।२२।२०) में इस पद को चक्षु की निराकार ज्योति के समान निराकार माना है ॥३॥

अब ईश्वर स्वयं कथन करते हैं कि विचक्रमे के अर्थ निर्माण अर्थात् रचने के हैं ॥

वि चंक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्रांय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासों अस्य कीरयो जनांस उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥

पदार्थः—(विष्णुः) व्यापक परमेश्वर ने (मनुषे) मनुष्य के (क्षेत्राय) अभ्युदय (दशस्यन्) देने के लिये (पृथिवीम्, एतां) इस पृथ्वी को (विचक्रमे) रचा जिससे (अस्य) इस परमात्मा के (कीरयः) कीर्त्तन करने वाले (जनासः) भक्त लोग (ध्रुवासः) दृढ़ हो गए क्योंकि (उरुक्षितिं) इस विस्तृत क्षेत्ररूप पृथ्वी को (सुजनिमा) सुन्दर प्रादुर्भाववाले ब्रह्माण्डपति परमात्मा ने (चकार) रचा है ॥४॥

भावार्थः—जिस पृथ्वी में (सुजनिमा) सुन्दर आविर्भाववाले प्राणिजात हैं उनका कर्त्ता जो परमात्मा है उसने इस सम्पूर्ण विश्व को रचा है। विष्णु के अर्थ यहां "यज्ञो वै विष्णुः" (श० प०) ॥ 'तस्साद यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" (यजु० ३१-७) ॥ इत्यादि प्रमाणों से व्यापक परमात्मा के हैं। यही बात विष्णु सूक्तों में सर्वत्र पायी जाती है। इस भाव

को वेद ने अन्यत्र भी वर्णन किया है कि "द्यावाभूमी जनयन्देव एकः" (यजु०) एक परमात्मा ने सब लोक-लोकान्तरों को रचा है ।।४।।

अब निम्नलिखित मन्त्र में वेद स्वयं विष्णु के अर्थ ईश्वर के करते हैं ।।

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ।।५।।

पदार्थः—(शिपिविष्ट) हे तेजोमय परमात्मन्! ["शिपयो रश्मयः" (निरु० ५।८)] (यत्) जिस लिये (ते) तुम्हारा (अर्यः) अर्य यह नाम है, [ऋच्छति गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यर्यः जो सर्वव्यापक हो उसको अर्य कहते हैं] (तं, त्वा) ऐसे तुम्हारी (गृणामि) मैं स्तुति करता हूँ। तुम (तवसं) सर्वोपरि वृद्धियुक्त हो (अस्य) इस (रजसः) रजोगुणयुक्त ब्रह्माण्ड के (पराके) मध्य में (अतव्यान्) निरन्तर गमन करने वाले लोक-लोकान्तरों में भी आप (क्षयन्तं) निवास कर रहे हैं और सब प्रकार के (वयुनानि) ज्ञानों के (विद्वान्) आप जाननेवाले हैं। इसीलिये मैं आपकी (प्रशंसामि) प्रशंसा करता हूँ ।।५।।

भावार्थः—विष्णु, अर्य, व्यापक ये तीनों एक ही पदार्थ के नाम हैं। विष्णु को इस मन्त्र में अर्य कहा है और अर्य परमात्मा का मुख्य नाम है इस विषय में प्रमाण यह है कि "राष्ट्री । अर्यः । नियुत्वान् । इनइन इति-चत्वारीश्वरनामानि ।।" (निघं ३।२२।।) राष्ट्री, अर्य, नियुत्वान्, इनइन ये चारों ईश्वर के नाम हैं ।।५।।

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ।।६।।

पदार्थः—(विष्णो)हे व्यापक परमेश्वर! (किं ते) क्या तुम्हारा वह रूप कथन करने योग्य है जिसको तुम स्वयं (शिपिविष्टः अस्मि) कि मैं तेजोमय हूँ, यह अपनी वेदवाणी में कथन करते हो, अर्थात् वह स्वयं सिद्ध है; किसी के कथन की अपेक्षा नहीं रखता। और (यत्) जो (अन्यरूपः) दूसरा रूप (समिथे) संग्राम में (बभूथ) होता है (एतत्, वर्पः) इस रूप को (अस्मत्) हम से (मा) मत (अपगूहः) छिपा ।।६।।

भावार्थः—परमात्मा स्वप्रकाश तेजोमय रूप सृष्टि की रचना और पालने से सबको प्रसिद्ध है अर्थात् उसकी विचित्र रचना से प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी पुरुष जानता है कि यह विविध रचना किसी सर्वज्ञ तेजोमय परमात्मा के बिना कदापि नहीं हो सकती ।।६।।

वषट्ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—(शिपिविष्ट) हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मन् ! (तन्मे हव्यं) आप हमको ऐसा विश्वास दें जिससे हम सदैव आपके वशवर्ती बने रहें और आप हमारी भक्ति को (जुषस्व) सेवन करें (आस) आपके समक्ष हम (वषट्) श्रद्धा (कृणोमि) प्रकट करते हैं (मे) हमारी (गिरः, सुष्टुतयः) प्रार्थनारूप वाणियें (वर्धन्तु) आपके यश को फैलावें । (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) मंगलमय वाणियों से (पात) हमारी सदैव रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—इस छठे अध्याय के अन्त में प्रकाशरूप सर्वव्यापक परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि आप हमको अत्यन्त उन्नतिशील बनायें और सदैव हमारी रक्षा करें ॥७॥

सप्तम मण्डल में सौवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

—: ❀ :—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ षडर्चस्य एकोत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—६ वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय-ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

अब प्रसंगसंगति से ईश्वर की ऐश्वर्यवर्धक वर्षा ऋतु का वर्णन करते हैं ॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (तिस्रः, वाचः) ज्ञानप्रद, कर्मप्रद, उपासनाप्रद इन तीनों वाणियों को (प्रवद) कहिये (याः) जो वाणियें (ज्योतिः, अग्राः) अपने प्रकाश से सर्वोपरि हैं, और (एतत्, ऊधः) नभोमण्डलरूप इस स्तनमण्डल से (मधुदोघम्) अमृतरूपी ओषधियों को (दुह्रे) दुहती हैं, और (सः) वह पर्जन्य (वत्सं, कृण्वन्) विद्युत् को वत्स बनाता हुआ और (ओषधीनां, गर्भम्) नाना प्रकार की ओषधियों में गर्भ धारण करता हुआ (सद्यो, जातः) तत्काल उत्पन्न हुआ (वृषभः) [वर्षणाद्-वृषभः] मेघ (रोरवीति) अत्यन्त शब्द करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार से परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि विद्युत् शक्ति को वत्स और आकाशस्थ मेघमण्डल को ऊधस्थानी बनाकर ऋत्विजों को ऋचारूपी हस्तों द्वारा दोग्धा बनाया है, तात्पर्य यह है कि वर्षाऋतु में ऋत्विजों को उद्गाता आदिकों के उच्चस्वरों से वेद मन्त्रों को गायन करना चाहिये ताकि वृष्टि सुखप्रद और समय सुख-प्रद प्रतीत हो ॥१॥

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।

स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो ईश्वर (ओषधीनाम्) सम्पूर्ण ओषधियों को (यः) और जो (अपाम्) जलों को (वर्धनः) बढ़ाता है (यः, देवः) और जो दिव्य ईश्वर (विश्वस्य, जगतः, ईशे) सकल जगत् को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला है (सः) सो ईश्वर (त्रिधातु, शरणम्) विचित्र गृहों में (शर्म) सुख को (अस्मे) हमको (यंसत्) दे। और (त्रिवर्तु) तीनों ऋतुओं में (स्वभिष्टि, ज्योतिः) सुन्दर अभीष्ट ऐश्वर्य को दे ॥२॥

भावार्थः—जो परमात्मा उक्त वर्षादि ऋतुओं में ओषधियों को बढ़ाता है और जो सब ओषधियों में रसों का आविष्कार करने वाला है वह परमात्मा इस त्रिधातु शरीर में सुख दे और सब प्रकार के ऐश्वर्य्य प्राप्त कराये ॥२॥

अब पर्जन्य को धेनुरूप से वर्णन करते हैं ॥

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

पदार्थः—(त्वत्) एक तो मेघ (स्तरीः) नवप्रसूता धेनु के समान (उ) निश्चय करके (भवति) होता है और (सूते) जल को वर्षाता है (त्वत्) अन्य (एषः) यह (यथाऽवशम्) स्वेच्छापूर्वक (तन्वम्) शरीर को (चक्रे) बना लेता है (पितुः) पितारूप

द्युलोक से (माता, पयः, प्रति, गृभ्णाति) मातारूप पृथिवी जल को ग्रहण करती है (तेन) और उससे (पिता, वर्धते) द्युलोक वृद्धि को प्राप्त होता है (तेन) और उससे (पुत्रः) प्राणिसंघरूप पुत्र भी बढ़ता है ॥३॥

भावार्थः—वर्षाऋतु में मेघ नवप्रसूता गौ के समान अपने दुग्धरूपी पयःपुञ्ज से संसार को परिपूर्ण कर देता है, वा यों कहो कि द्यु पिता और पृथिवी मातास्थानी बनकर वर्षाऋतु में नाना प्रकार की सम्पत्ति उत्पन्न करते हैं और जो यहां पितास्थानी द्युलोक का बढ़ना कथन किया गया है वह उसके ऐश्वर्य के भाव से है कुछ आकार-वृद्धि के अभिप्राय से नहीं ॥३॥

यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि त॒स्थुस्ति॒स्रो द्याव॑स्त्रे॒धा स॒स्रुराप॑: ।

त्रय॒: कोशा॑स उप॒सेच॑नासो॒ मध्व॑: श्चोतन्त्य॒भितो॑ विर॒प्शम् ॥४॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस परमात्मा में (विश्वानि, भुवनानि) सम्पूर्ण भुवन (तस्थुः) स्थिर हैं; (तिस्रो, द्यावः) जिस में भूर्भुवः स्वः ये तीनों लोक स्थिर हैं; (त्रेधा, सस्रुः आपः) [आप्यते प्राप्यत इति अपः कर्म, अप इति कर्मनामसु पठितं निघण्टौ २, १ तस्यायमित्यापः] जिसमें तीन प्रकार से कर्म गति करते हैं, अर्थात् संचित, प्रारब्ध, और क्रियमाण; (त्रयः, कोशासः) जिस में ३ कोश हैं वह कोश कैसे हैं (उपसेचनासः) उपसिञ्चन करने वाले हैं, वह परमात्मा (मध्वः, श्चोतन्ति अभितः, विरप्शम्) सब प्रकार से आनन्द की वृष्टि करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस परमात्मा में अन्नमय प्राणमय और मनोमय इन तीनों कोशों वाले अनन्त जीव निवास करते हैं और निखिल ब्रह्माण्ड उसी में स्थिर हैं उसी परमात्मा की सत्ता से जीव संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध तीन प्रकार के कर्मों की वृष्टि करता है। वह परमात्मा मेघ के समान आनन्दों की वृष्टि करता है। इस मन्त्र में रूपकालंकार से परमात्मा को मेघवत् वृष्टिकर्ता वर्णन किया गया है ॥४॥

इ॒दं वच॑: प॒र्जन्या॑य स्व॒राजे॑ हृ॒दो अ॒स्त्वन्त॑रं॒ तज्जु॑जोषत् ।

म॒यो॒भुवो॑ वृ॒ष्टय॑: सन्त्व॒स्मे सु॑पिप्प॒ला ओष॑धीर्दे॒वगो॑पाः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अस्मे) हमारे लिए (मयः, भुवः, वृष्टयः, सन्तु) वृष्टियें आनन्द के बरसाने वाली हों। (सुपिप्पलाः) और सुन्दर फलों वाली ओषधियें हों (देवगोपाः) और उनके विद्वान् लोग प्रयोग करने वाले हों (इदं, वचः) वह वाणी (पर्जन्याय, स्वराजे) स्वतन्त्र राजा जो प्रजा के ऊपर पर्जन्य की तरह वृष्टि करने वाला हो उसके प्रति कथन करनी चाहिये, और फिर यह कथन करना चाहिये, (हृदः,

अस्तु, अन्तरम्) तुम्हारे हृदयगत यह वाणी हो (तत् जुजोषत) और इस को सेवन करो ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उद्गातादि लोगो! तुम लोग अपने सम्राट् के हृदय में इस बात को बलपूर्वक भर दो कि जिस प्रकार वृष्टिकर्त्ता मेघ हम पर वृष्टि करके नाना प्रकार की ओषधियें उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार परमात्मा इस संसार में आनन्द की वृष्टि करता है इसी प्रकार हे राजन्, आप अपनी प्रजा के लिए न्यायनियम से सुख की वृष्टिकर्त्ता हों ॥५॥

स रे॑तो॒धा वृ॑ष॒भः शश्व॑तीनां॒ तस्मि॑न्ना॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च।
तन्म॑ ऋ॒तं पा॑तु श॒तशा॑रदाय यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥६॥

पदार्थः—(सः) वह परमात्मा (रेतोधाः) प्रकृतिरूप बीज के धारण करने वाला है, (शश्वतीनाम्) अनन्त प्रजाओं में (वृषभः) [वर्षिता निरु. १, ८।] सुख की वृष्टि करने वाला है (तस्मिन्) उसी परमात्मा में (जगतः, तस्थुषः, च) स्थावर और जंगम संसार के सब जीव विराजमान हैं (तत्) वह ब्रह्म (शतशारदाय) सैकड़ों वर्षों तक (मा) हमारी (ऋतम्) सच्चाई की (पातु) रक्षा करे, हे परमात्मन्! (यूयम्) आप (स्वस्तिभिः) मंगल कार्यों द्वारा (सदा) सदैव (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥६॥

भावार्थः—जिस परमात्मा में चराचर सब जीव निवास करते हैं और जो प्रकृतिरूपी बीज धारण किये हुए हैं अर्थात् जिस से तीनों गुणों की साम्यावस्थारूप प्रकृति और जीवरूप प्रकृति सदा भिन्न होकर विराजमान हैं उसी एकमात्र परमात्मा से अपने सदाचार और सत्यता की प्रार्थना करनी चाहिये ॥६॥

सप्तम मण्डल में १०१वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य द्व्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—३ वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ याजुषी विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब श्लेषालंकार से परमात्मा और मेघ का वर्णन करते हैं ॥

प॒र्जन्या॑य॒ प्र गा॑यत दि॒वस्पु॒त्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑। स नो॒ यव॑समिच्छतु ॥१॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् लोगो ! तुम (पर्जन्याय) तृप्तिजनक जो परमात्मा हैं उनका (प्र, गायत) गायन करो (सः, नः, यवसम्, इच्छतु) वह हमारे लिये ऐश्वर्य दे जो (दिवः पुत्राय) द्युस्थजनों को नरक से बचाता और (मीढुषे) आनन्द को वर्षाता है ।।१।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम तृप्तिजनक वस्तुओं का वर्णन करो जिस से तुम में ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए उद्योग उत्पन्न हो ।।१।।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ।।२।।

पदार्थः—(यः) जो परमात्मा (ओषधीनाम्, गर्भम्) ओषधियों का उत्पत्तिस्थान है और (अर्वताम्, गवाम्, कृणोति) गमनशील विद्युदादि पदार्थों को रचता है तथा (पुरुषीणाम्, पर्जन्यः) जो मनुष्यों की बुद्धियों का तृप्तिजनक है ।।२।।

भावार्थः—जिस सर्वतृप्तिकारक परमात्मा ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों को रच कर ओषधियों को उत्पन्न किया और जिसने मनुष्यों की बुद्धि की तृप्ति करने के लिए अपने अनन्त ज्ञान को मनुष्यों के लिए दिया, उसकी उपासना प्रत्येक मनुष्य को करनी चाहिये ।।२।।

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ।।३।।

पदार्थः—(आस्ये) उस सर्वोपरि मुख्य परमात्मा में (मधुमत्तमं) अतिशय आह्लाद करने वाले (हविः) हवि को (जुहोत) हवन करो और (तस्मै, इत्) उसी से ही प्रार्थना करो कि वह (नः) हमको (इळां, संयतं) परिपूर्ण ऐश्वर्य (करत्) दें ।।३।।

भावार्थः—एक मात्र वही परमात्मा ऐश्वर्यों के लिए प्रार्थनीय है, अन्य नहीं ।।३।।

सप्तम मण्डल में १०२वां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ दशर्चस्य त्र्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य १—१० वसिष्ठः ऋषिः ।। मण्डूका देवताः ।। छन्दः—१ आर्षी अनुष्टुप् । २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९ विराट्त्रिष्टुप् ।। स्वरः १ गान्धारः । २—१० धैवतः ।।

अब श्लेषालंकार से ब्राह्मणों का देवव्रत और प्रावृषेण्यों का प्रावृट् को विभूषित करना कथन करते हैं ।।

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ।।१।।

पदार्थः—(ब्राह्मणाः) [ब्रह्मण इमे ब्राह्मणाः] ब्रह्म वेद के साथ सम्बन्ध रखने वाले (व्रतचारिणः) व्रती (संवत्सरं, शशयानाः) एक वर्ष के अनन्तर (पर्जन्यजिन्विताम्) तृप्तिकारक परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाली (वाचम्) वाणी को (प्रावादिषुः) बोलने लगे (मण्डूकाः) [वेदानां मण्डयितारः] वेदों का मण्डन करने वाले [मण्डयन्तीति मण्डूकाः] ॥१॥

भावार्थः—वृष्टिकाल में वेदपाठका व्रत करने वाले ब्राह्मण वेदपाठका व्रत करते हैं और उस समय में प्रायः उन सूक्तों को पढ़ते हैं जो तृप्तिजनक हैं। दूसरे पक्ष में इस मन्त्र का यह भी अर्थ है कि वर्षा ऋतु के मण्डन करने वाले जीव वर्षा ऋतु में ऐसी ध्वनि करते हैं मानो एक वर्ष के अनन्तर उन्होंने अपने मौनव्रत को उपार्जन करके इसी ऋतु में बोलना प्रारम्भ किया है। तात्पर्य यह है कि इस मन्त्र में परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि जिस प्रकार क्षुद्र जन्तु भी वर्षा काल में आह्लादजनक ध्वनि करते हैं अथवा यों कहो कि परमात्मा के यश को गायन करते हैं, एवं, हे वेदज्ञ लोगो ! तुम भी वेद का गायन करो। मालूम होता है कि श्रावणी का उत्सव जो भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र मनाते हैं वह वेदपाठ से ईश्वर के महत्त्वगायन का उत्सव था ॥१॥

दि॒व्या आपो॑ अ॒भि यदे॑नमाय॒न्दृतिं॒ न शुष्कं॑ सर॒सी शया॑नम् ।
गवा॒मह॒ न मा॒युर्व॒त्सिनी॑नां म॒ण्डूका॑नां व॒ग्नुरत्रा॒ समे॑ति ॥२॥

पदार्थः—(अत्र) इस वर्षा काल में (मण्डूकानाम्) वर्षाकाल को मण्डन करने वाले जीवों का (वग्नुः) शब्द (समेति) भली-भांति से वर्षा ऋतु को सुशोभित करता है (न) जैसे कि (वत्सिनीनाम्) प्रमारूपवृत्तियों के साथ मिली हुई (गवाम्) इन्द्रियों का (मायुः) ज्ञान यथार्थ होता है, और(न) जिस प्रकार (दृतिम्, शुष्कम्) सूखा हुआ जलपात्र फिर हरा-भरा हो जाता है इसी प्रकार (दिव्याः, आपः, यत्, एनम्) द्युलोक में होने वाले जल जब (अभि) चारों ओर से इस मण्डूकगण को (सरसी, शयानम्) सूखे तालाब में सोते हुए को (आयन्) प्राप्त होते हैं तो यह भी उस पात्र के समान फिर पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाता है ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में यह बोधन किया है कि वर्षाकाल के साथ मेंडकादि जीवों का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसा इन्द्रियों का इन्द्रियों की वृत्तियों के साथ। जैसे इन्द्रियों की यथार्थ ज्ञानरूप प्रमादि वृत्तियें इन्द्रियों को मण्डन करती हैं इसी प्रकार ये वर्षाऋतु को मण्डन करते हैं।

दूसरी बात इस मन्त्र से यह स्पष्ट होती है कि मण्डूकादिकों का जन्म मैथुनी सृष्टि के समान मैथुन से नहीं होता, किन्तु प्रकृतिरूप बीज से ही वे फिर उत्पन्न हो जाते हैं। इससे अमैथुनी सृष्टि होने का नियम भी परमात्मा ने इस मन्त्र में दर्शा दिया ॥२॥

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥३॥

पदार्थः—(यत्, ईम्) जब (प्रावृषि, आगतायाम्) वर्षाऋतु के आने पर (तृष्यावतः, उशतः, एनान्) तृषा से जल को चाहने वाले इन जन्तुओं पर (अभि, अवर्षीत्) वृष्टि होती है तब (अख्खलीकृत्य) सुन्दर शब्दों को करते हुए (पितरम्, न, पुत्रः) जैसे पुत्र पिता के पास जाता है वैसे ही (अन्यः, अन्यम्, उपवदन्तम्, एति) शब्द करते हुए दूसरे के पास जाते हैं ॥३॥

भावार्थः—वर्षाऋतु में जीव ऐसे आनन्द से विचरते हैं और अपने भावों को अपनी चेष्टा तथा वाणियों से बोधन करते हुए पुत्रों के समान अपने वृद्ध पितरों के पास जाते हैं। इस मन्त्र में स्वभावोक्ति अलंकार से वर्षा के जीवों की चेष्टा का वर्णन किया है और इसमें यह भी शिक्षा दी है कि जैसे क्षुद्र जन्तु भी अपने वृद्धों के पास जाकर अपने भाव को प्रकट करते हैं इस प्रकार तुम भी अपने वृद्धों के पास जाकर अपने भावों को प्रकट करो ॥३॥

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥४॥

पदार्थः—(यत्) जब (अपाम, प्रसर्गे) वृष्टि होती है तब (एनोः) इनमें से (अन्यः, मण्डूकः) एक जलजन्तु (अन्यम्, अनुगृभ्णाति) दूसरे के समीप जाकर बैठता है और (अमन्दिषाताम्) दोनों हर्षित होते हैं तथा (यत्) जब (अभिवृष्टः) यह अभिषिक्त होता है तब यह (पृश्निः, कनिष्कन्) चित्रवर्णवाला कूदता हुआ (हरितेन, वाचम, सम्पृंक्ते) दूसरे स्फूर्ति वाले के साथ वाणी को संयोजित करता है ॥४॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम प्रकृतिसिद्ध वर्षा आदि ऋतुओं में नूतन-नूतन भावों को ग्रहण करनेवाले जल-जन्तुओं से शिक्षा लाभ करो कि वे जिस प्रकार हर्षित होकर उद्योगी बनते हैं, इसी प्रकार तुम भी उद्योगी बनो ॥४॥

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५॥

पदार्थः—(यत्) जो कि (अन्यः, शिक्षमाणः) एक शिक्षा पाने वाला जलजन्तु (शाक्तस्य, इव) शक्तिमान् अर्थात् शिक्षा को पाये हुए की तरह दूसरे जलजन्तु के शब्द को सीख कर बोलता है वैसे ही (तत्, एषाम्) तब इनके शब्दों को (सर्वं, समृधा, इव, पर्वं) सम्पूर्ण अविकल अंगों वाले होकर (अधि, अप्सु) जलों के मध्य में (यत्, सुवाचः) जो सुन्दर वाणी है उसको (वदथन) बोलो ॥५॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार जलजन्तु भी एक-दूसरे की चेष्टा से शिक्षालाभ करते हैं और एक ही प्रकार की भाषा सीखते हैं इस प्रकार तुम भी परस्पर शिक्षालाभ करते हुए एक प्रकार की भाषा से भाषण करो ॥५॥

उक्त वाणी के एकत्व को निम्नलिखित मन्त्र से भलीभांति वर्णन करते हैं ॥

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥६॥

पदार्थः—(एषाम्) इन जलजन्तुओं में (एकः, गोमायुः) एक तो गौ के समान स्वर से बोलता है और (एकः, अजमायुः) दूसरा कोई अजा के समान स्वर वाला है, और (पृश्निः, एकः) कोई-कोई विचित्र वर्णवाला और (एकः, हरितः) कोई हरित वर्ण का है, तथा (पुरुत्रा) बहुत से भेदवाले छोटे-बड़े (विरूपाः) अनेक रूपवाले होकर भी (समानं, नाम, बिभ्रतः) एक नाम को धारण करते हुए (वाचम्, वदन्तः) और एक ही वाणी को बोलते हुए (पिपिशुः) प्रकट होते हैं ॥६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि जिस प्रकार जन्तु भी स्वर-भेद, आकारभेद और वर्णभेद रखते हुए जातिभेद और वाणीभेद नहीं रखते इस प्रकार हे मनुष्यो ! तुमको प्राकृत जन्तुओं से शिक्षा लेकर भी वाणी का एकत्व और जाति का एकत्व दृढ़ करना चाहिए। जो पुरुष वाणी के एकत्व को और जाति के एकत्व को दृढ़ नहीं रख सकता वह अपने मनुष्यत्व को भी नहीं रख सकता ॥३॥

इस भाव को अब प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥७॥

पदार्थः—(यत्, मण्डूकाः) जो कि मण्डूक भी (संवत्सरस्य, तत्, ग्रहः) वर्ष के उपरान्त होनेवाले दिन में (प्रावृषीणम्, बभूव) जिस दिन कि प्रथम वर्षा होती है (पूर्णं, सरः, न, अभितः, वदन्तः) पूर्ण सर की कामना से चारों ओर बोलते हुए (परि, स्थ) इधर-उधर स्थित होते हैं इसी प्रकार (ब्राह्मणासः) हे ब्राह्मणो ! तुम भी (अतिरात्रे) रात्रि के अनन्तर ब्रह्ममुहूर्त्त में (सोमे, न) जिस समय सौम्यवृद्धि होती है उस समय वेदध्वनि मे परमेश्वर के यज्ञ को वर्णन करते हुए वर्षाऋतु के उत्सव को मनाओ ॥७॥

भावार्थः—उक्त मन्त्र में परमात्मा ने वर्षाकाल में वैदिकोत्सव के मनाने का उपदेश किया है कि हे मनुष्यो ! तुम वर्षाऋतु में प्रकृति के विचित्र दृश्य को देखकर वैदिक सूक्तों से उपासना करो और सोमादि यज्ञों द्वारा ब्रह्मोत्सवों को मनाओ । विचित्र बात है कि जिस जाति के धर्म पुस्तक में यह उपदेश था उस जाति में इस भाव को छोड़ कर अन्य सब प्रकार के उत्सव वर्षाऋतु में मनाये जाते हैं किन्तु वैदिकोत्सव कोई नहीं मनाया जाता, इससे हानिप्रद बात और क्या हो सकती है ॥७॥

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वंतः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवंति गुह्या न केचित् ॥८॥

पदार्थः—(सोमिनः, ब्राह्मणासः) सौम्यचित्त वाले ब्राह्मण (परिवत्सरीणम्) वर्ष के उपरान्त (ब्रह्म, कृण्वन्तः) ब्रह्म के यश को प्रकाशित करते हुए (वाचम्, अक्रत) वेदवाणी का उच्चारण करते हैं। (केचित्, गुह्याः, अध्वर्यवः) कोई एकान्त स्थल में बैठे व्रत करते हुए ब्राह्मण (घर्मिणः सिस्विदानाः) उष्णता से सिक्तशरीर होकर भी (न, आविर्भवन्ति) बहिर्भूत नहीं होते ॥८॥

भावार्थः—वेदव्रती ब्राह्मण ब्रह्म के यश के गायन करने के लिए एकान्त स्थान में बैठें और वे शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहते हुए तितिक्षु और तपस्वी बनकर अपने व्रत को पूर्ण करें ॥८॥

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनंत्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९॥

पदार्थः—(एते, नरः) यह पूर्वोक्त ब्राह्मण (देवहितिं, द्वादशस्य, ऋतुम्) परमेश्वर से विधान की गयी द्वादश मास में होने वाली ऋतु की (जुगुपुः) रक्षा करें (न, प्रमिनन्ति) व्यर्थ न जाने दें (संवत्सरे) वर्ष के उपरान्त (प्रावृषि, आगतायाम्) वर्षाकाल आने पर (तप्ताः, घर्माः) तपस्वी और तितिक्षु ब्राह्मण (विसर्गम्, अश्नुवते) व्रत धारण करते हैं ॥९॥

भावार्थः—वर्षाकाल में ब्राह्मण लोग तप करें अर्थात् संयमी बनकर वेदपाठ करें। यहां व्रत से उसी व्रत का विधान है जिसका "अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" (यजु० १।५।।) इत्यादि मन्त्रों से वर्णन किया गया है। इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि वैदिक समय में ईश्वरार्चन केवल वैदिक सूक्तों के द्वारा ही किया जाता था अर्थात् जो सूक्त ईश्वर के यश को वर्णन करते हैं उनके पढ़ने का नाम ही उस समय ईश्वरार्चन था। जो ईश्वर के प्रतिनिधि बनाकर इस समय में मृण्मय देव पूजे जाते हैं, मालूम होता है उस समय भारतवर्ष में यह प्रथा न थी, हां इतना अवश्य हुआ कि जिन-जिन ऋतुओं में वैदिक यज्ञ होते थे वा प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर वर्षादि ऋतुओं में वैदिक उत्सव किये जाते थे उनके स्थान में अब अन्य प्रकार के उत्सव और पूजन होने लग पड़े। इस बात का प्रमाण निम्न-लिखित मन्त्र में दिया जाता है ॥९॥

गोमा॑युरदाद॒जमा॑युरदा॒त्पृश्नि॑रदा॒द्धरि॑तो नो॒ वसू॑नि ।
गवां॑ म॒ण्डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ ॥१०॥

पदार्थः—(गोमायुः) सुन्दर शब्दों वाले वर्षाकालोद्भव जन्तु और (अजमायुः) प्रकृत्यनुसारी शब्दों वाले (पृश्निः) विचित्र वर्णों वाले (हरितः) हरित वर्णों वाले ये सब अपनी रचना से (नः) हमको (अदात्) शिक्षा दें। (गवां, मण्डूकाः) अपनी शिक्षा द्वारा विद्यारूपी चमत्कार को बढ़ाने वाले जीव (शतानि, ददतः) सैकड़ों प्रकार की हमको शिक्षा दें और परमात्मा (वसूनि) ऐश्वर्य और (आयुः) आयु को (प्र, तिरन्ते) बढ़ावें और (सहस्रसावे) [सहस्राणि सहस्रप्रकारकाणि औषधानि सूयन्ते ऽस्मिन्निति सहस्रसावः वर्षाकालः श्रावणमासो वा] अनन्तप्रकार की औषधियें जिसमें उत्पन्न होती हैं उस वर्षाकाल वा श्रावणमास को सहस्रसाव कहते हैं। उस काल में परमात्मा हमको उक्तप्रकार के जीवों से अनन्तप्रकार का शिक्षालाभ कराये और हमारे ऐश्वर्य और आयु को बढ़ाये ॥१०॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम वर्षाकाल से अनन्त प्रकार की शिक्षा का लाभ करो और अपने ऐश्वर्य और आयु की वृद्धि की प्रार्थना करो, यद्यपि केवल प्रार्थना से ऐश्वर्य और आयुवृद्धि नहीं होती तथापि जिसके हृदय में आयुवृद्धि और ऐश्वर्यवृद्धि का भाव उत्पन्न होता है वह उसकी प्राप्ति के लिए यत्न अवश्य करता है। इस नियम के अनुसार परमात्मा ने जीवों को प्रार्थना का उपदेश, प्रधानरूप से दिया है, अस्तु॥१०॥

सप्तम मण्डल में १०३वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य चतुरुत्तरशततमस्य सूक्तस्य १–२५ वसिष्ठ ऋषिः॥ देवताः १–७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ ८, १६, १९–२२, २४ इन्द्रः। ९, १२, १३ सोमः। १०, १४ अग्निः। ११ देवाः। १७–ग्रावाणः। १८ मरुतः। २३[1] वसिष्ठः। २३[2] पृथिव्यन्तरिक्षे॥ छन्दः—१, ४, ६, ७ विराड्जगती। २ आर्चीजगती। ३, ५, १८, २१ निचृज्जगती। ८, १०, ११, १३, १४, १५, १७ निचृत्त्रिष्टुप्। ९ आर्चीत्रिष्टुप्। १२, १६ विराट् त्रिष्टुप्। १९, २०, २२ त्रिष्टुप्। १३ आर्ची भुरिग्जगती। २४ याजुषी विराट्त्रिष्टुप्। २५ पादनिचृदनुष्टुप्॥ स्वरः—१–७, १८, २१, २३, निषादः। ८-१७, १९, २०, २२, २४—धैवतः। २५ गान्धारः॥

अब इस मण्डल की समाप्ति करते हुए परमात्मा के दण्ड और न्याय का रक्षोघ्नसूक्त द्वारा वर्णन करते हैं॥

इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जतं॒ न्य॑र्पयतं वृषणा तमो॒वृधः॑।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्रिणः॑ ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्रासोमा) हे दण्ड और न्यायरूप शक्तिद्वयप्रधान परमात्मन्! आप (रक्षः) [‘रक्ष्यते यस्मात्तद्रक्षः’ जिन अनाचारियों से न्यायनियमानुसार रक्षा की आवश्यकता पड़े उनका नाम यहां राक्षस है।] राक्षसों को (तपतम्) तपाओ, दमन करो (उब्जतम्) मारो (न्यर्पयतम्) नीचता को प्राप्त करो। (वृषणा) हे कामनाओं की वर्षा करनेवाले परमात्मन्! (तमोवृधः) जो माया से बढ़नेवाले हैं उनको (परा, शृणीत) चारों तरफ से नाश करो, (अचितः) जो ऐसे जड़ हैं, जो समझाने से भी नहीं समझते उनको (न्योषतम्) भस्मीभूत कर डालो (हतम्) नाश करो (नुदेथाम्) दूर करो, (अत्रिणः) जो अन्याय से भक्षण करनेवाले हैं उनको (नि, शिशीतम्) घटाओ॥१॥

भावार्थः—हे परमात्मन्! जो राक्षसी वृत्ति से प्रजा में अनाचार फैलाते हैं आप उनका नाश करें। यहां राक्षस कोई जातिविशेष नहीं किन्तु जिनसे प्रजा में शान्ति और न्यायनियम का भंग होता है उन्हीं का नाम यहां राक्षस है। तात्पर्य यह है कि परमात्मा ने जीवों की प्रार्थना द्वारा इस बात को प्रकट किया है कि दुष्ट दस्युओं के नाश करने का भाव आप अपने हृदय में उत्पन्न किया करें, जब आपके शुद्ध हृदय में यह प्रबल प्रवाह उत्पन्न होगा तो पापपङ्करूपी दस्युदल उसमें अवश्य बह जायगा॥१॥

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।

ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्रासोमा) हे दण्ड और न्यायरूप शक्तिद्वयप्रधान परमात्मन् ! (अघशंसम्) जो पापमार्ग को अच्छा बतलाता है अथवा ईश्वराज्ञाविरुद्ध कामों की प्रशंसा करता है, (सम, अघं) जो पापयुक्त है उसका (अभि) निरादर करो। (तपुः) जो दूसरों को दुःख देनेवाले हैं वह (ययस्तु) परिक्षीण हो जायें जैसे कि (चरुः, अग्निवान्, इव) चरु सामग्री अग्नि पर भस्मीभूत हो जाती है। (ब्रह्मद्विषे) जो वेद के द्वेषी हैं (क्रव्यादे) तथा जो हिंसक हैं (घोरचक्षसे) जो क्रूर प्रकृतिवाले हैं (किमीदिने) हर एक बात में शक करनेवाले हैं उनमें (अनवायम्, द्वेषो, धत्तम्) हमारा निरन्तर द्वेषभाव उत्पन्न कराइये ॥२॥

भावार्थः—जो लोग वेदद्वेषी और अघायु पुरुषों के दमन करने का भाव नहीं रखते वह परमात्मा का आज्ञा का यथावत् पालन नहीं कर सकते इसलिये परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे पुरुषो ! तुम पापात्मा धर्मानुष्ठानविहीन धर्मद्वेषी पुरुषों से सदैव ग्लानि करो और जो केवल कुतर्कपरायण होकर अहर्निश धर्मनिन्दा में तत्पर रहते हैं उनको भी द्वेषबुद्धि से अपने से दूर करो।

तात्पर्य यह है कि वैदिक लोगों को चाहिए कि वे सत्कर्मी और धर्मरत पुरुषों का सन्मान करें, औरों का नहीं ॥२॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।

यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रासोमा) हे उक्तशक्तिद्वयप्रधान परमात्मन् ! (दुष्कृतः) जो वेदविरुद्ध कर्म करने वाले दुराचारी हैं उनको (वव्रे) महादुःखों से आवृत (अनारम्भणे) जिसमें कोई आलम्बन नहीं है ऐसे (तमसि,अन्तः) घोर नरक में (प्र, विध्यतम्) प्रविष्ट कर ऐसा ताड़न कीजिये (यथा) जिससे कि (अतः) इस यातना से (एकश्चन, पुनः, न, उदयत्) फिर एक भी दुष्कर्म न करे तथा (तत्) वह प्रसिद्ध (वाम्) आपका (मन्युमत्, शवः) मन्युयुक्त बल (सहसे, अस्तु) राक्षसों के नाश करने वाला हो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा के मन्यु का वर्णन किया है जैसा कि अन्यत्र भी कहा है कि 'मन्युरसि मन्युम्मयि धेहि' कि आप मन्युस्वरूप हैं मुझे भी मन्यु प्रदान करें। मन्यु के अर्थ यहां परमात्मा की दमनरूप शक्ति

के हैं। जैसा कि 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' (कठ,—६।२) हे परमात्मन्! आपकी दमनरूप शक्ति से वज्र उठाये हुए के समान भय प्रतीत होता है। इसमें सन्देह नहीं कि दुष्टों के दमन के लिए परमात्मा भयरूप है इसी अभिप्राय से कहा है कि 'भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः' उसके दमनरूप शक्ति के नियम में आकर सब सूर्य चन्द्रादि भ्रमण करते हैं। इस भाव को इस सूक्त में वर्णन किया है ॥३॥

अब इस भाव को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं ॥

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम् ।
उत्त॑क्षतं स्व॒र्यं१ पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थः ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रासोमा) हे न्यायकारिन् परमात्मन्! (अघशंसाय) जो वेदविरुद्ध कर्मों की प्रशंसा तथा आचरण करता है उस राक्षस के लिये (दिवः) द्युलोक से तथा (पृथिव्याः) पृथ्वी से (तर्हणम्, वधम्) अतितीक्ष्ण शस्त्रों को (सं, वर्तयतम्) उत्पन्न करिये, (पर्वतेभ्यः) तथा आकाश में मेघों से बिजली के समान (स्वर्यम्, उत्तक्षतम्) उत्तापक शस्त्रों को उन्नत करिये (येन) जिससे (वावृधानम्) बढ़े हुए (रक्षः) राक्षस (निजूर्वथः) नष्ट हो जायें ॥४॥

भावार्थः—जिस प्रकार मेघों से बिजली उत्पन्न होकर पृथ्वीतल पर गिरती है इस प्रकार अन्यायकारी शत्रुओं के लिए परमात्मा अनेकविधि अस्त्र-शस्त्रों को उत्पन्न करके उनका हनन करता है ॥४॥

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्पर्य॑ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः ।
तपु॑र्वधेभिर॒जरे॑भिर॒त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने विध्यतं॒ यन्तु॑ निस्व॒रम् ॥५॥

पदार्थः—(इन्द्रासोमा) हे न्यायकारी परमात्मन्! (युवम्) आप (अग्नितप्तेभिः) अग्नि से तपाये हुए (तपुर्वधेभिः) तापों के नाशने वाले (अजरेभिः) जोकि बड़े दृढ़ हैं ऐसे (अश्महन्मभिः) वज्रों से (दिवस्परि) अन्तरिक्षस्थल से (वर्तयतम्) शत्रुओं को आच्छादन करो और (अत्रिणः) अन्याय से भक्षण करने वालों को (पर्शाने) दोनों ओर से घेर कर (निविध्यतम्) ऐसी ताड़ना करो जिससे कि (निस्वरम्) शब्दहीन होकर (यन्तु) भाग जायें ॥५॥

भावार्थः—भाव यह है कि परमात्मा अन्यायकारी दुष्टों के दमन करने के अनेक प्रकार कथन करते हैं ॥५॥

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥६॥

पदार्थः—(इन्द्रासोमा) हे परमात्मा, (इयं, मतिः) इस मेरी प्रार्थना से (वाम्) आप (विश्वतः) सब शत्रुओं को (परिभूतु) वश में लाकर सुमार्ग की ओर प्रेरणा करें जिस प्रकार (कक्ष्या) कक्षबन्धनी रज्जु (वाजिना, अश्वा, इव) बलयुक्त अश्वों को वश में लाकर इष्ट मार्ग में ले आने के योग्य बनाती है। (यां वाचम्) जिस वाणी से (वां) आप को (मेधया) अपनी बुद्धि के अनुसार (परिहिनोमि) मैं प्रेरित करता हूँ (इमा, ब्रह्माणि) यह स्तुतिरूप वाणी (नृपती, इव) जिस प्रकार राजभक्त प्रजा की वाणी राजा को प्रसन्न करती है उसी प्रकार (जिन्वतम्) आपको प्रसन्न करे ॥६॥

भावार्थः—मन्त्र में "इमा ब्रह्माणि" के अर्थ वैदिक वाणियों के हैं। जिस प्रकार वेद की वाणियें राजा को कर्म में और अपने स्वधर्म में प्रेरणा देती हैं वा यों कहो कि जिस प्रकार प्रजा की प्रार्थनायें राजा को दुष्ट-दमन के लिए उद्यत करती हैं इसी प्रकार आप हमारी प्रार्थनाओं से दुष्ट दस्युओं का दमन करके प्रजा में शान्ति का राज्य फैलावें ॥६॥

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्रसोमा) हे विद्युच्छक्तिप्रधान और सौम्यस्वभावप्रधान अर्थात् दण्डशक्ति और सौम्यस्वभावप्रधान परमात्मन् ! आप (दुष्कृते) दुष्कर्मी पुरुष के लिए (मा, सुगम, भूत्) सुखकारी मत हों और जो (नः) हम सदाचारी पुरुषों के काम में (कदाचित्) कभी (द्रुहा) दुष्टता से (अभिदासति) बाधा डालता है, (भंगुरावतः) जो क्रूर तथा (द्रुहः) दुष्ट कर्म करनेवाले जो (रक्षसः) राक्षस हैं उनको (तुजयद्भिः) जो कि अतिपीड़ा देने वाले हैं (एवैः) ऐसी शक्तियों से (हतम्) नाश करें। आप इस प्रार्थना को (प्रति स्मरेयाम्) स्वीकार करें ॥७॥

भावार्थः—दुष्टाचारी अन्यायकारियों के प्रति दण्ड देने का विधान इस मन्त्र में किया गया है। तात्पर्य यह है कि जो पुरुष क्रूरप्रकृति हैं वह यथायोग्य दण्ड के अधिकारी होते हैं, क्षमा के नहीं ॥७॥

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे विद्युद्शक्तिप्रधान परमात्मन्! (पाकेन) शुद्ध (मनसा) मनसे (चरन्तम्) आचरण करते हुए (मा) मुझको (यः) जो (अनृतेभिः, वचोभिः) झूठ बोल कर (अभिचष्टे) दूषित करता है वह (काशिना, संगृभीताः) मुट्ठी में भरे हुए (आपः, इव) जल के समान (असन्, अस्तु) असत् हो जाय क्योंकि वह (असतः, वक्ता) झूठ का बोलने वाला है॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में शुद्ध मन से आचरण करने की अत्यन्त प्रशंसा की है कि जो पुरुष कायिक, वाचिक और मानस तीनों प्रकार से शुद्धभाव और सत्यवादी रहते हैं उनके सामने कोई असत्यवादी ठहर नहीं सकता। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपनी सच्चाई पर सदा दृढ़ रहना चाहिये॥८॥

ये पा॑कशं॒सं वि॒हर॑न्त॒ एवै॒र्ये वा॑ भ॒द्रं दू॒षय॑न्ति स्व॒धाभि॑:।
अह॑ये वा॒ तान् प्र॒ददा॑तु॒ सोम॒ आ वा॑ दधातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्थे॑॥९॥

पदार्थः—(ये, पाकशंसं, विहरन्ते) जो राक्षस अर्थात् अन्यायकारी लोग सच्चे धर्म की प्रशंसा करने वाले पुरुष को आक्षिप्त-दूषित करते हैं (एवैः) ऐसे ही कामों से (ये, वा) जो पुरुष (स्वधाभिः) अपने साहसरूपबल से (भद्रम्) भद्र पुरुष को (दूषयन्ति) दूषित करते हैं (तान्) उनको (सोमः) परमात्मा (अहये) हिंसकों को (प्रददातु) दे (वा) यद्वा (निर्ऋतेः, उपस्थे) असत्यवादियों की संगति में (आदधातु) रक्खे॥९॥

भावार्थः—जो लोग अपने साहस से सद्धर्मपरायण पुरुषों को दूषित करते हैं उनको परमात्मा हिंसकों के वशीभूत करता है अथवा पापात्मा पुरुषों के मध्य में फेंक देता है, जिससे वे स्वयं पापी बन कर अपने कर्मों से आप ही नष्ट भ्रष्ट हो जायें। इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि परमात्मा उसे दण्ड देने के अभिप्राय से पापात्मा पुरुषों के वशीभूत करता है ताकि वे दण्ड भोग कर स्वयं शुद्ध हो जायें। परमात्मा को सबका सुधार करना अपेक्षित है। नाश करना इस अभिप्राय से कहा गया है कि परमात्मा उसके कुकर्म और कुवृत्तियों का नाश करता है, आत्मनाश नहीं॥९॥

यो नो॒ रसं॒ दिप्स॑ति पि॒त्वो अ॑ग्ने॒ यो अश्वा॑नां॒ यो गवां॒ यस्त॒नूना॑म्।
रि॒पु: स्ते॒नः स्ते॑य॒कृद्द॒भ्रमे॑तु॒ नि ष ही॑यतां त॒न्वा३॒ तना॑ च॥१०॥

पदार्थः—(अग्ने) हे तेजःस्वरूप परमात्मन्! (यः) जो राक्षस (नः) हमारे (पित्वः) अन्न के (रसम्) रसको (दिप्सति) नष्ट करना चाहता है और (यः) जो

(अश्वानाम्) घोड़ों के तथा (यः, गवाम्) जो गौओं के तथा (यः तनूनाम्) जो हमारे शरीर के रस अर्थात् बल को नष्ट करना चाहता है वह (रिपुः) अहिताभिलाषी (स्तेनः) चोर तथा (स्तेयकृत्) छिप कर हानि करने वाला (दभ्रम्, एतु) नाश को प्राप्त हो (सः) और वह दुष्ट (तन्वा) अपने शरीर से तथा (तना) दुष्कर्मी सन्तानों से (नि, हीयताम्) नष्ट हो जाये ॥१०॥

भावार्थः—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप ऐसे राक्षसों को सदैव नाश को प्राप्त करें जो धर्मचारी पुरुषों के बल वीर्य और ऐश्वर्य को छिप कर वा चोरी वा किसी कुनीति से नाश करते हैं ॥१०॥

परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११॥

पदार्थः—(सः) वह अन्यायकारी पुरुष (तन्वा) शरीर से (तना) सन्तानों से (परः, अस्तु) हीन हो जाय (च) और (तिस्रः पृथिवीः) तीनों लोकों से (अधः, अस्तु) नीचे हो जावे और (देवाः) हे भगवन् ! (अस्य, यशः) इसका यश (विश्वाः, प्रतिशुष्यतु) सब प्रकार से नष्ट हो जाय (यः) जो राक्षस (नः) सदाचारी हम लोगों को (दिवा) प्रत्यक्ष (नक्तम्) तथा अप्रत्यक्ष में (दिप्सति) हानि पहुँचाता है ॥११॥

भावार्थः—जो लोग सदाचारी लोगों को दुःख पहुंचाते हैं वे तीनों लोकों से अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल के सुखों से वञ्चित हो जाते हैं । वा यों कहो कि भूतकाल में उनका ऐतिहासिक यश नष्ट हो जाता है और वर्तमान काल में अशान्ति उत्पन्न होकर उनके शान्त्यादि सुख नाश को प्राप्त हो जाते हैं और भविष्य में उनका अभ्युदय नहीं होता; इस प्रकार वे तीनों लोकों से परे हो जाते हैं अर्थात् वञ्चित रहते हैं ॥११॥

वास्तव में कौन सत्यवादी और असत्यवादी है अब इसका निर्णय करते हैं ॥

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥

पदार्थः—(सत्, च) जो सच्चे तथा (असत्, च) जो झूठे (वचसी) वचन (पस्पृधाते) परस्पर विरुद्ध कहे जाते हैं उनको (चिकितुषे, जनाय) विद्वान् लोग (सुविज्ञानम्) सहज में ही समझ सकते हैं (तयोः,यत् सत्यम्) उन दोनों में जो सत्य है तथा (यतरत्) जो (ऋजीयः) सरल अर्थात् सीधे स्वभाव से कहा गया है (तत्, इत्) उसी की (सोमः) परमात्मा (अवति) रक्षा करता है और (असत्, हन्ति) जो कपट भाव से कहा गया झूठा वचन है उसका त्याग करता है ॥१२॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि अपनी ओर से वे देव और असुर दोनों ही सत्यवादी बन सकते हैं अर्थात् देवता कहेगा कि मैं सत्यवादी हूं और असुर कहेगा कि मैं सत्यवादी हूं परन्तु यह बात वास्तव में ठीक नहीं, क्यों कि विद्वान् इसका निर्णय कर सकता है कि अमुक सत्यवादी और अमुक असत्यवादी है। सत्य भी दो प्रकार का होता है जैसा कि "ऋतञ्च सत्यञ्चा-भीद्धात्तपसोऽध्यजायत"। (ऋग् १०। १९०। १॥)

इस मन्त्र में वर्णन किया है अर्थात् वाणी के सत्य को ऋत कहते हैं और भाविक सत्य को अर्थात् वस्तुगत सत्य को सत्य कहते हैं। देवता वे लोग कहलाते हैं जो वाणीगत सत्य तथा वस्तुगत सत्य के बोलने और माननेवाले होते हैं अर्थात् सत्यवादी और सत्यमानी लोगों का नाम वैदिक परिभाषा में देव और सदाचारी है; इनसे विपरीत असत्यवादी असत्यमानी लोगों का नाम असुर और राक्षस है ॥१२॥

न वा उ सोमो॑ वृजिनं हिनोति न क्ष॒त्रियं॑ मिथु॒या धा॒रय॑न्तम् ।

हन्ति॒ रक्षो॒ हन्त्यास॒द्वद॑न्तमु॒भाविन्द्र॑स्य॒ प्रसि॑तौ शयाते ॥१३॥

पदार्थः—(सोमः) परमात्मा (वृजिनम्) पापी को (न, वा, उ) उतना नहीं (हिनोति) दण्ड देता है तथा (मिथुया, धारयन्तम् क्षत्रियम्) व्यर्थ साहस रखने वाले क्षत्रिय को भी उतना नहीं दण्ड देता जितना कि (रक्षः, हन्ति) राक्षसों को (तथा (असत्, वदन्तम् हन्ति) झूठ बोलने वाले को नष्ट करता है; (उभौ) ये दोनों (इन्द्रस्य, प्रसितौ) इन्द्र=उस ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा के बन्धन में (शयाते) बंधकर दुःख पाते हैं ॥१३॥

भावार्थः—पापी पुरुष पाप से पश्चात्ताप करने पर अथवा ईश्वर के सम्बन्ध में सन्ध्यावन्दनादि कर्मों के समय पर न करने से प्रत्यवायरूपी दोषों से मुक्त भी हो सकता है; एवम् साहसी क्षत्रिय प्रजारक्षा के भाव से छोड़ा जा सकता है, पर राक्षस=अन्यायकारी, असत्यवादी=मिथ्याभाव प्रचार करने वाला और मिथ्या आचार करने वाला पाप से कदापि निर्मुक्त नहीं हो सकता।

तात्पर्य यह है कि परमात्मा में दया और न्याय दोनों हैं, दया केवल उन्हीं पर करता है जो दया के पात्र हैं या यों कहो कि जिन के पाप आत्मा वा परमात्मा सम्बन्धी हैं और जो लोग दूसरों की वञ्चना करते हैं वे अन्याय करते हैं उनको परमात्मा कदापि क्षमा नहीं करता अर्थात् यथायोग्य दण्ड देता है, इस प्रकार परमात्मा न्यायशील है ॥१३॥

अब जीव के शपथरूप से ईश्वर के आगे अनन्य-
भक्ति का कथन किया जाता है ॥

यदि॑ वा॒हमनृ॑तदेव॒ आस॒ मोघं॑ वा दे॒वाँ अ॑प्यू॒हे अ॑ग्ने ।
किम॒स्मभ्यं॑ जातवेदो हृणीषे द्रोघ॒वाच॑स्ते निर्ऋ॒थं स॑चन्ताम् ॥१४॥

पदार्थः—(यदि वा) यदि मैं (अनृतदेवः) झूठे देवों के माननेवाला (आस) हूँ अथवा (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! (मोघं) वा मिथ्या (देवान्) देवताओं की (अप्यूहे) कल्पना करता हूँ तभी निस्सन्देह अपराधी हूँ; जब ऐसा नहीं तो (किमस्मभ्यं) हमको क्यों (जातवेदः) हे सर्वव्यापक परमात्मन्, आप (हृणीषे) हमारे विपरीत हैं (द्रोघवाचः) मिथ्यावादी और मिथ्या देवताओं के पूजने वाले (ते) तुम्हारे (निर्ऋथं) दण्ड को (सचन्ताम्) सेवन करें ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रार्थना के भाव से मिथ्या देवों की उपासना का निषेध किया है अर्थात् ईश्वर से भिन्न किसी अन्य देव की उपासना का यहां बलपूर्वक निषेध किया है, और जो लोग भिन्न-भिन्न देवताओं के पुजारी हैं उनको राक्षस वा ईश्वर के दण्ड के पात्र बतलाया है।

तात्पर्य यह है कि एक ईश्वर को छोड़ कर अन्य किसी की पूजा ईश्वरत्वेन कदापि नहीं करनी चाहिये, इस भाव का उपदेश इस मन्त्र में किया है ॥१४॥

अ॒द्या मु॑रीय॒ यदि॑ यातु॒धानो॒ अस्मि॒ यदि॒ वायु॑स्त॒तप॒ पूरु॑षस्य ।
अधा॒ स वी॒रैर्द॒शभि॒र्वि यू॑या॒ यो मा॒ मोघं॒ यातु॑धा॒नेत्याह॑ ॥१५॥

पदार्थः—(अद्य) आजही (मुरीय) मृत्यु को प्राप्त होऊं (यदि) यदि मैं (यातुधानः) दण्ड का भागी (अस्मि) होऊं (यदि वा) अथवा (पूरुषस्य) पुरुष की (आयुः ततप) आयु को तपाने वाला होऊं (अध) तब (वीरैः दशभिः) दश वीर सन्तान से (वियूयाः) वियुक्त वह पुरुष हो (यः) जो (मा) मुझे (मोघं) वृथा ही (यातुधानेति) तू यातुधान है ऐसा (आह) कहता है ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र से पूर्व के मन्त्र में मिथ्या देवों के पुजारियों को (यातुधाना) राक्षस वा दण्ड के भागी कथन किया गया है; उसी प्रकरण में वेदानुयायी आस्तिक पुरुष शपथ खाकर कहता है कि यदि मैं भी ऐसा हूं तो मेरा जीना सर्वथा निष्फल है—इससे मर जाना भला है। इस मन्त्र में परमात्मा ने इस बात की शिक्षा दी है कि जो पुरुष संसार का उपकार नहीं

करता और सच्चे विश्वास से संसार में आस्तिकभाव का प्रचार नहीं करता उसका जीना पृथ्वी के लिये एकमात्र भार है; उससे कोई लौकिक वा पारलौकिक उपकार नहीं ॥१५॥

यो मायांतुं यातुंधानेत्याहु यो वां रक्षाः शुचिंरस्मीत्याहं ।
इन्द्रस्तं हंन्तु महता वधेन विश्वंस्य जन्तोरंधमस्पंदीष्ट ॥१६॥

पदार्थः—(यः) जो राक्षस (मा) मुझको (अयातुं) अदण्डच को (यातुधानेत्याह) राक्षस कहता है (वा) और (यः) जो (रक्षाः) राक्षस होकर (शुचिरस्मि) मैं पवित्र हूं ! (इत्याह) ऐसा कहता है, (इन्द्रः) परमात्मा (तं) उस साधु को असाधु कहने वाले को और अपने आप को असाधु होकर साधु कहने वाले को (महता, वधेन) तीक्ष्ण शस्त्र से (हन्तु) नष्ट करे; (विश्वस्य) संसार के ऐसे (जन्तोः) जन्तुओं से जो (अधमः) अधम है परमात्मा उसका (पदीष्ट) नाश करे ॥१६॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे जीवो ! तुम में से जो पुरुष सदाचारियों को मिथ्या ही दूषित करते हैं और स्वयं दम्भी बनकर सदाचारी, सत्यवादी और सत्यमानी बनते हैं न्यायकारी राजाओं का काम है कि ऐसे पुरुषों को यथायोग्य दण्ड दें ॥१६॥

प्र या जिगांति खर्गलेव नक्तमप दुहा तन्वं१ गूहंमाना ।
वव्राँ अंनंताँ अव सा पंदीष्ट ग्रावांणो घ्नन्तु रक्षसं उपब्दैः ॥१७॥

पदार्थः—(या) जो कोई राक्षसी वृत्ति वाली स्त्री (जिगाति) रात-दिन भ्रमण करती है (खर्गलेव) निशाचर जीवों के समान (तन्वं) अपने शरीर को (गूहमाना) छिपाए रहती है वह (वव्रान्, अनन्तान्) अनन्त अधोगतियों को (अव, सा, पदीष्ट) प्राप्त हो और (ग्रावाणः) वज्र उसको (उपब्दैः) शब्दायमान होकर (घ्नन्तु) नाश करें, क्योंकि (रक्षसः) वह भी राक्षसों से सम्बन्ध रखती है ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में राजधानी की रक्षा के लिए इस बात का उपदेश किया गया है कि जो स्त्री गुप्तचरी होकर रात को विचरती है और अपना भेद किसी को नहीं देती अथवा स्त्रियों के आचरण बिगाड़ने के लिए ऐसा रूप धारण करती है उसको भी राक्षसों की श्रेणी में गिनना चाहिये; उसको राजा यथायोग्य दण्ड दे ॥१७॥

वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८॥

पदार्थः—(मरुतः) हे ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुषो! आप (विक्षु) प्रजाओं में (वितिष्ठध्वं) विशेषरूप से स्थिर हों और (रक्षसः) राक्षसों के पकड़ने की (इच्छत) इच्छा करें और (गृभायत) पकड़ कर (सं, पिनष्टन) भली-भांति नाश करें । (ये) जो राक्षस (वयः) पक्षियों के (भूत्वी) समान बनकर (नक्तभिः) रात में (पतयन्ति) गमन करते हैं और (ये, वा) जो (देवे) देवताओं के (अध्वरे) यज्ञ में (रिपः) हिंसा को (दधिरे) धारण करते हैं, उनको आप नष्ट करें ॥१८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे ज्ञानयोगी तथा कर्मयोगी पुरुषो ! आप लोग आकाश मार्ग में जाकर प्रजा को पीड़ा देने वाले अन्त-रायकारी राक्षसों को क्रियाकौशल द्वारा विमानादि यान बनाकर नाश करें। इस मन्त्र में परमात्मा ने प्रजा की रक्षा के लिए पुरुषों को संबोधन करके अन्यायकारी राक्षसों के हनन का उपदेश किया है ॥१८॥

अब प्रजा को परमात्मा यह आदेश करता है कि तुम ऐसी प्रार्थना करो ॥

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे परमात्मन् ! आप द्युलोक से राक्षसों के मारने के लिये (अश्मानम्) वज्र को (प्रवर्तय) फेंकें जो (सोमशितम्) विज्ञानी विद्वानों से बनाया गया हो । (मघवन्) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन्, न्यायशील साधु पुरुषों की (सं शिशाधि) भलीभांति रक्षा करें और (प्राक्तात्) पूर्व दिशा से (अपाक्तात्) पश्चिम से (अधरात्) दक्षिण से (उदक्तात्) उत्तर से (रक्षः) अन्यायकारी राक्षसों को (पर्वतेन) वज्र से (जहि) मारें ॥१९॥

भावार्थः—पर्वत के अर्थ यहां उस शस्त्र के हैं जिसमें पोरी के समान बहुत से पर्व पड़ते हों । निघण्टु में पर्वत मेघप्रकरण में भी पढ़ा गया है ।

जो लोग पर्वत के अर्थ पहाड़ समझ लेते हैं वह अत्यन्त भूल करते हैं । हां, वैदिक समय के बहुत पीछे पर्वत के अर्थ लौकिक भाषा में पहाड़ के भी बन गए । यहां प्रकरण शस्त्र का है इसलिए इस के अर्थ शस्त्र के होने चाहिएं, अन्य नहीं ॥१९॥

एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२०॥

पदार्थः—(दिप्सवः) जो हिंसक (अदाभ्यम्) अहिंसनीय (इन्द्रम्) परमात्मा को भी (दिप्सन्ति) अपने अज्ञान से हनन करते हैं (श्वयातवः) जो श्वानों की-सी वृत्ति वाले (पतयन्ति) स्वयं गिरते हैं और औरों को गिराते हैं (त्ये) ऐसे (उ) निश्चय (एते) इन सब दुष्टों के लिये (शिशीते) परमात्मा तीक्ष्ण (अशनि)शस्त्रों को (सृजत्) रचता है (यातुमद्भ्यः) दुराचारी (पिशुनेभ्यः) कपटियों को (नूनम्, वधम्) निश्चय मारता है ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह सब कथन किया है कि दुष्टाचारी अन्याय-कारी प्रजा को दुःख देते हैं उन्हीं के लिए परमात्मा ने तीक्ष्ण शस्त्रों को रचा। तात्पर्य यह है कि परमात्मा उपद्रवी और दुष्टाचारियों को दमन करके संसार में शान्ति का राज्य फैलाना चाहता है ॥२०॥

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः ॥२१॥

पदार्थः—(इन्द्रः) ऐश्वर्यशाली परमात्मा (हविर्मथीनाम्) जो सत्कर्मरूपी यज्ञों में विघ्न करने वाले हैं तथा (अभि, आविवासताम्) हानि करने की इच्छा से जो सन्मुख आने वाले (यातूनाम्) राक्षस हैं उनका (पराशरः) नाशक है। (शक्रः) परमात्मा (परशुः, यथा, वनम्) परशु जैसे वन को (पात्रा, इव, भिन्दन्) और मुद्गर जैसे मृन्मय पात्र को तोड़ता है उसी प्रकार (अभि, इत्, उ) निश्चय करके चारों ओर से (रक्षसः) राक्षसों को मारने में (सतः, एति) उद्यत रहता है ॥२१॥

भावार्थः—परमात्मा असत्कर्मी राक्षसों के मारने के लिए सदैव वज्र उठाये उद्यत रहता है। इसी अभिप्राय से उपनिषद् में कहा है कि "महद्भयं वज्रमुद्यतमिव' परमात्मा वज्र उठाये पुरुष के समान अत्यन्त भयरूप है।

यद्यपि परमात्मा शान्तिमय, सर्वप्रिय और सर्वव्यापक है जिसमें निराकार और क्रोधरहित होने से वज्र का उठाना असम्भव है तथापि उनके न्यायनियम ऐसे बने हुए हैं कि उसकी अनन्तशक्तियां दण्डनीय दुष्टाचारी राक्षसों के लिए सदैव वज्र उठाये रहती हैं। इसी अभिप्राय से मुदगरादि सदैव काम करते हैं, कुछ परमात्मा के हाथों से नहीं ॥२१॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥

पदार्थः—(उलूकयातुम्) जो बड़ा समुदाय बनाकर तथा (शुशुलूकयातुम्) छोटे-छोटे समुदाय बनाकर न्यायकारियों पर अभिघात करते हैं (श्वयातुम्) जो गमनशील हैं तथा जो (कोकयातुम्) विभक्त होकर अभिघात करते हैं (सुपर्णयातुम्) तथा जो निरपराधों को सताते हैं और जो (गृध्रयातुम्) चक्रवर्ती होने की इच्छा से न्यायकारियों को दमन करना चाहते हैं कि उनको,(इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् परमात्मन्! (जहि) नष्ट करो; (दृषदा, इव) तथा शिला के समान शस्त्रों से (प्र मृण) पेषण करो और (रक्ष) न्यायकारियों को बचाओ ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा ने अन्यायकारी मायावी और नाना-प्रकार से न्यायकारियों पर आघात करने वाले दुष्टों से बचने के लिये प्रार्थना का उपदेश किया है। यद्यपि प्रार्थना केवल वाणीमात्र से सफल नहीं होती तथापि जब हार्दिक भाव से प्रार्थना की जाती है तो उससे उद्योग उत्पन्न होकर मनुष्य अवश्यमेव कृतकार्य होता है ॥२२॥

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥

पदार्थः—(या किमीदिना) जो [किमिदम् किमिदम् इति वादिनः] ईश्वर के ज्ञान में संशय करनेवाले अर्थात् ये क्या है ये क्या है ऐसा संशय उत्पन्न करनेवाले और (यातुमावतां, मिथुना) राक्षसों के यूथ=जत्थे (अपोच्छतु) वे हम से दूर हो जायें (मा, नः, रक्षः, अभिनट्) ऐसे राक्षस हम पर आक्रमण न करें, और (पृथिवी) भूमि (पार्थिवात्, अंहसः) पार्थिव पदार्थों की अपवित्रता से (नः) हमारी (पातु) रक्षा करे (दिव्यात्) द्युभवपदार्थों से (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अस्मान्, पातु) हमारी रक्षा करे ॥२३॥

भावार्थः—तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों प्रकार के तापों से हम सर्वथा वर्जित रहें, अर्थात् पार्थिव शरीर में कोई आधिभौतिक ताप न हो और अन्तरिक्ष से हमें कोई आधिभौतिक ताप न व्यापे और मानस तापों के मूलभूत अन्यायकारी राक्षसों का विध्वंस होने से हमें कोई मानस ताप न व्याप्त हो, और जो पृथिवी तथा अन्तरिक्ष

से रक्षा का कथन है वह तापनिवृत्ति के अभिप्राय से औपचारिक है, मुख्य नहीं ॥२३॥

इन्द्र॑ ज॒हि पु॒मांसं॑ यातु॒धान॑मु॒त स्त्रियं॑ मा॒यया॒ शाश॑दानाम् ।
विग्री॑वासो॒ मूर॑देवा ऋदन्तु॒ मा ते दृ॑श॒न्त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ॥२४॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मन् ! (पुमांसं यातुधानं, जहि) अन्यायकारी दण्डनीय राक्षस को आप नष्ट करें (उत) और (मायया) वंचना करके (शाशदानाम्, स्त्रियम्) वैदिक धर्म को हानि पहुँचाती है ऐसी स्त्री को (जहि) नष्ट करदें (मूरदेवाः) हिंसारूपी क्रिया से क्रीड़ा करने वाले (विग्रीवासः, ऋदन्तु) ज्ञानेन्द्रिय-रहित हों जायें ताकि (ते) वे सब (उच्चरन्तम्, सूर्यम् मा दृशन्) ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश को न देख सकें ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में यह कथन किया है कि जो लोग मायावी और हिंसक होते हैं वे शनैः-शनैः ज्ञानरहित होकर ऐसी मुग्धावस्था को प्राप्त हो जाते हैं कि फिर उनको सत्य और झूठ का विवेक नहीं रहता, हे पर-मात्मन् ! ऐसे दुराचारियों को आप ऐसी मोहमयी निशा में सुलायें कि वह संसार में जागृति को प्राप्त होकर न्यायकारी सदाचारियों को दुःख न दें ॥२४॥

प्रति॑ चक्ष्व॒ वि च॒क्ष्वेन्द्र॑श्च सोम जागृतम् ।
रक्षो॑भ्यो व॒धम॑स्यतम॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ ॥२५॥

पदार्थः—(इन्द्र, च, सोम, च) हे विद्युच्छक्तिप्रधान तथा ऐश्वर्यप्रधान पर-मात्मन् ! (प्रतिचक्ष्व, विचक्ष्व) आप उपदेश करें तथा विविधरूप से उपदेश करें ताकि हम (जागृतम्) आपकी जागृति से उद्बुद्ध होकर (रक्षोभ्यः, वधम्) राक्षसों को मारें और (अस्यतम्, अशनिम्, यातुमद्भ्यः) दण्डनीय राक्षसों के लिए वज्रप्रहार करें ॥२५॥

भावार्थः—यह रक्षोघ्न सूक्त है जिसके अर्थ ये हैं कि जिसमें राक्षसों का हनन हो उसका नाम रक्षोघ्न है। वास्तव में इस सूक्त में अन्यायकारी राक्षसों के हनन करने के लिए अनन्त प्रकार कथन किये गए हैं और वेदा-नुयायी आस्तिकों के वैदिक यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए रक्षा के अनेकशः उपाय वर्णन किये हैं जिनको पढ़ कर और जिनके अनुष्ठान से

पुरुष वास्तव में आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक इन तीन तापों से रहित हो सकता है। सच तो यह है कि आज कल वेदाभिमानी आर्य जाति अपने संकटों की निवृत्ति के लिए अनेक प्रकार के संकटमोचनों का पाठ करती है यदि वह रक्षोघ्नादि सच्चे संकटमोचन सूक्तों का पाठ और अनुष्ठान करे तो इसके संकट निवृत्त होने में तनिक भी सन्देह नहीं ॥२५॥

सप्तम मण्डल में १०४वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ।